पंचसंग्रह

संक्रम आदि करणत्रय प्ररूपणा अधिकार

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

[संक्रम आदि करणत्रय-प्ररूपणा अधिकार]

(मूल, शब्दार्थ, विवेचन युक्त)

हिन्दी व्याख्याकार

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी

श्री मिश्रीमल जी महाराज

दिशा निदेशक

मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी म० रजत

सम्प्रेरक

मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

सम्पादक

देवकुमार जैन

प्रकाशक

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान, जोधपुर

- श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत
  पचसग्रह (७)
  (सक्रम आदि करणत्रय-प्ररूपणा अधिकार)

- हिन्दी व्याख्याकार
  स्व० मरुधरकेसरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज

- दिशा निदेशक
  मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी म० 'रजत'

- सयोजक-सप्रेरक
  मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

- सम्पादक
  देवकुमार जैन

- प्राप्तिस्थान
  श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
  पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

- प्रथमावृत्ति
  वि० स० २०४२ श्रावण, अगस्त १९८५

लागत से अल्पमूल्य १५/-पन्द्रह रुपया सिर्फ

- मुद्रण
  श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निदेशन मे
  शक्ति प्रिंटर्स, आगरा

प्रकाशकीय

जैनदर्शन का मर्म समझना हो तो 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अत्यावश्यक है। कर्मसिद्धान्त का सर्वांगीण तथा प्रामाणिक विवेचन 'कर्मगन्थ' (छह भाग) मे बहुत ही विशद रूप से हुआ है, जिनका प्रकाशन करने का गौरव हमारी समिति को प्राप्त हुआ। कर्मग्रन्थ के प्रकाशन से कर्मसाहित्य के जिज्ञासुओ को बहुत लाभ हुआ तथा अनेक क्षेत्रो से आज उनकी माग बराबर आ रही है।

कर्मगन्थ की भाँति ही 'पचसगह' गन्थ भी जैन कर्मसाहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमे भी विस्तारपूर्वक कर्म-सिद्धान्त के समस्त अगो का विवेचन हुआ है।

पूज्य गुरुदेव श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमल जी महाराज जैनदर्शन के प्रौढ विद्वान और सुन्दर विवेचनकार थे। उनकी प्रतिभा अद्‌भुत थी, ज्ञान की तीव्र रुचि अनुकरणीय थी। समाज मे ज्ञान के प्रचार-प्रसार मे अत्यधिक रुचि रखते थे। यह गुरुदेवश्री के विद्यानुराग का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि इतनी वृद्ध अवस्था मे भी पचसग्रह जैसे जटिल और विशाल गन्थ की व्याख्या, विवेचन एव प्रकाशन का अद्‌भुत साहसिक निर्णय उन्होने किया और इस कार्य को सम्पन्न करने की समस्त व्यवस्था भी करवाई।

जैनदर्शन एव कर्मसिद्धान्त के विशिष्ट अभ्यासी श्री देवकुमार जी जैन ने गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे इस गन्थ का सम्पादन कर प्रस्तुत किया है। इसके प्रकाशन हेतु गुरुदेवश्री ने प्रसिद्ध साहित्य-कार श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को जिम्मेदारी सौंपी और वि० स० २०३९ के आश्विन मास मे इसका प्रकाशन-मुद्रण प्रारम्भ कर दिया

गया। गुरुदेवश्री ने श्री सुराना जी को दायित्व सोंपते हुए फरमाया—'मेरे शरीर का कोई भरोसा नही है, इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर लो।' उस समय यह बात सामान्य लग रही थी। किसे ज्ञात था कि गुरुदेवश्री हमें इतनी जल्दी छोडकर चले जायेगे। किंतु क्रूर काल की विडम्बना देखिये कि ग्रन्थ का प्रकाशन चालू ही हुआ था कि १७ जनवरी १९८४ को पूज्य गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से सर्वत्र एक स्तब्धता व रिक्तता-सी छा गई। गुरुदेव का व्यापक प्रभाव समूचे सघ पर था और उनकी दिवगति से समूचा श्रमणसघ ही अपूरणीय क्षति अनुभव करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस महाकाय ग्रन्थ पर इतना श्रम किया और जिसके प्रकाशन की भावना लिये ही चले गये, वह ग्रन्थ अब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रधान शिष्य मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी महाराज के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है। श्रीयुत सुराना जी एव श्री देवकुमार जी जैन इस ग्रन्थ के प्रकाशन-मुद्रण सम्बन्धी सभी दायित्व निभा रहे है और इसे शीघ्र ही पूर्ण कर पाठको के समक्ष रखेगे, यह दृढ विश्वास है।

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध सस्थान अपने कार्यक्रम मे इस ग्रन्थ को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करवाने मे प्रयत्नशील है।

आशा है जिज्ञासु पाठक लाभान्वित होगे।

मन्त्री

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध सस्थान

जोधपुर

आमुख

जैनदर्शन के सम्पूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा स्वतन्त्र शक्ति है। अपने सुख-दु ख का निर्माता भी वही है और उसका फल-भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वय मे अमूर्त है, परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान वनकर अशुद्धदशा मे ससार मे परिभ्रमण कर रहा है। स्वय परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दुख के चक्र मे पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म-मृत्यु के प्रवाह मे बह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है, वही दीन-हीन, दु खी, दरिद्र के रूप मे ससार मे यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है ?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को ससार मे भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है—कम्म च जाई मरणस्स मूल। भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरश सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध विचित्र घटनाचक्रो मे प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनो ने इस विश्ववैचित्र्य एव सुख-दुख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है, वहाँ जैनदर्शन ने समस्त सुख-दु ख एव विश्ववैचित्र्य का कारण मूलत जीव एव उसके साथ सबद्ध कर्म को है। कर्म स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नही है, वह स्वय मे पुद्गल है, जड है। किन्तु राग-द्वेप-वशवर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने वलवान और शक्तिसम्पन्न वन जाते हैं कि कर्ता को भी अपने बन्धन मे बाध लेते हे। मालिक को भी नौकर की तरह नचाते है। यह कर्म की वडी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनो का

यह मुख्य बीज कर्म क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? इसके विविध परिणाम कैसे होते हैं ? यह बडा ही गम्भीर विषय है। जैनदर्शन मे कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमो मे और उत्तर-वर्ती ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। वह प्राकृत एव सस्कृत भाषा मे होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकडो मे कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यो ने गूँथा है, कण्ठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए वह अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थो मे कर्मग्रन्थ और पचसग्रह इन दोनो ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमे जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा मे है और इनकी सस्कृत मे अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। गुजराती मे भी इनका विवेचन काफी प्रसिद्ध हे। हिन्दी भापा मे कर्मग्रन्थ के छह भागो का विवेचन कुछ वर्प पूर्व ही परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे प्रकाशित हो चुका हे, सर्वत्र उनका स्वागत हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे पचसग्रह (दस भाग) का विवेचन भी हिन्दी भापा मे तैयार हो गया और प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया, किन्तु उनके समक्ष एक भी नही आ सका, यह कमी मेरे मन को खटकती रही, किन्तु निरुपाय ! अव गुरुदेवश्री की भावना के अनुसार ग्रन्थ पाठको के समक्ष प्रस्तुत हे, आशा हे इससे सभी लाभान्वित होगे।

—सुकनमुनि

सम्पादकीय

श्रीमद्देवेन्द्रसूरि विरचित कर्मग्रन्थो का सम्पादन करने के सन्दर्भ मे जैन कर्मसाहित्य के विभिन्न ग्रन्थो के अवलोकन करने का प्रसग आया। इन ग्रन्थो मे श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तरकृत 'पचसग्रह' प्रमुख है।

कर्मग्रन्थो के सम्पादन के समय यह विचार आया कि पचसग्रह को भी सर्वजन सुलभ, पठनीय बनाया जाये। अन्य कार्यों मे लगे रहने से तत्काल तो कार्य प्रारम्भ नही किया जा सका। परन्तु विचार तो था ही और पाली (मारवाड) मे विराजित पूज्य गुरुदेव मरुधरकेसरी, श्रमणसूर्य श्री मिश्रीमल जी म सा की सेवा मे उपस्थित हुआ एव निवेदन किया—

भन्ते ! कर्मग्रन्थो का प्रकाशन तो हो ही चुका है, अब इसी क्रम मे पचसग्रह को भी प्रकाशित कराया जाये।

गुरुदेव ने फरमाया—विचार प्रशस्त है और चाहता भी हूँ कि ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हो, मानसिक उत्साह होते हुए भी शारीरिक स्थिति साथ नही दे पाती है। तब मैंने कहा—आप आदेश दीजिये। कार्य करना ही है तो आपके आशीर्वाद से सम्पन्न होगा ही, आपश्री की प्रेरणा एव मार्गदर्शन से कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

'तथास्तु' के मागलिक के साथ ग्रन्थ की गुरुता और गम्भीरता को सुगम बनाने हेतु अपेक्षित मानसिक श्रम को नियोजित करके कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'शनै-कथा' की गति से करते-करते आधे से अधिक ग्रन्थ गुरुदेव के बगडी सज्जनपुर चातुर्मास तक तैयार करके सेवा मे उपस्थित हुआ। गुरुदेवश्री ने प्रमोद व्यक्त कर फरमाया—चरैवेति-चरैवेति।

इसी बीच शिवशर्मसूरि विरचित 'कम्मपयडी' (कर्मप्रकृति) ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर मिला। इसका लाभ यह हुआ कि बहुत से जटिल माने जाने वाले स्थलो का समाधान सुगमता से होता गया।

अर्थबोध की सुगमता के लिए ग्रन्थ के सम्पादन मे पहले मूलगाथा और यथाक्रम शब्दार्थ, गाथार्थ के पश्चात् विशेपार्थ के रूप मे गाथा के हार्द को स्पष्ट किया है। यथास्थान ग्रन्थान्तरो, मतान्तरो के मन्तव्यो का टिप्पण के रूप मे उल्लेख किया है।

इस समस्त कार्य की सम्पन्नता पूज्य गुरुदेव के वरद आशीर्वादो का सुफल है। एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। साथ ही मरुधरारत्न श्री रजतमुनि जी एव मरुधराभूपण श्री सुकनमुनिजी का हार्दिक आभार मानता हूँ कि कार्य की पूर्णता के लिए प्रतिसमय प्रोत्साहन एव प्रेरणा का पाथेय प्रदान किया।

ग्रन्थ की मूल प्रति की प्राप्ति के लिए श्री लालभाई दलपतभाई सस्कृति विद्यामन्दिर अहमदावाद के निदेशक एव साहित्यानुरागी श्री दलसुखभाई मालवणिया का सस्नेह आभारी हूँ। साथ ही वे सभी धन्यवादार्ह है, जिन्होने किसी न किसी रूप मे अपना-अपना सहयोग दिया है।

ग्रन्थ के विवेचन मे पूरी सावधानी रखी है और ध्यान रखा है कि सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता आदि न रहे एव अन्यथा प्ररूपणा भी न हो जाये। फिर भी यदि कही चूक रह गई हो तो विद्वान पाठको से निवेदन है कि प्रमादजन्य स्खलना मानकर त्रुटि का सशोधन, परिमार्जन करते हुए सूचित करे। उनका प्रयास मुझे ज्ञानवृद्धि मे सहायक होगा। इसी अनुग्रह के लिए सानुरोध आग्रह है।

भावना तो यही थी कि पूज्य गुरुदेव अपनी कृति का अवलोकन करते, लेकिन सम्भव नही हो सका। अत 'कालाय तस्मै नम' के साथ-साथ विनम्र श्रद्धाजलि के रूप मे—

त्वदीय वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्प्यते।

के अनुसार उन्ही को सादर समर्पित है।

खजाची मोहल्ला
बीकानेर, ३३४००१

विनीत
देवकुमार जैन

प्रवर्तक गुरुदेव
श्री मिश्रीमलजी महाराज

विद्याभिलाषी श्री सुकन मुनि

श्रमणसंघ के भीष्म-पितामह

श्रमणसूर्य स्व. गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

स्थानकवासी जैन परम्परा के ५०० वर्षों के इतिहास में कुछ ही ऐसे गिने-चुने महापुरुष हुए है जिनका विराट् व्यक्तित्व अनन्त असीम नभोमण्डल की भाति व्यापक और सीमातीत रहा हो। जिनके उपकारो से न सिर्फ स्थानकवासी जैन, न सिर्फ श्वेताम्बर जैन, न सिर्फ जैन किन्तु जैन-अजैन, वालक-वृद्ध, नारी-पुरुष, श्रमण-श्रमणी सभी उपकृत हुए है और सव उस महान् विराट व्यक्तित्व की शीतल छाया से लाभान्वित भी हुए हैं। ऐसे ही एक आकाशीय व्यक्तित्व का नाम है—श्रमण-सूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज!

पता नही वे पूर्वजन्म की क्या अखूट पुण्याई लेकर आये थे कि बाल-सूर्य की भाति निरन्तर तेज-प्रताप-प्रभाव-यश और सफलता की तेजस्विता, प्रभास्वरता से वढते ही गये, किन्तु उनके जीवन की कुछ विलक्षणता यही है कि सूर्य मध्यान्ह वाद क्षीण होने लगता है, किन्तु यह श्रमणसूर्य जीवन के मध्यान्होत्तर काल में अधिक अधिक दीप्त होता रहा, ज्यो-ज्यो यौवन की नदी बुढापे के सागर की ओर वढती गई त्यो-त्यो उसका प्रवाह तेज होता रहा, उसकी धारा विशाल और विशालतम होती गई, सीमाएँ व्यापक वनती गई, प्रभाव-प्रवाह सौ-सौ धाराएँ वनकर गाव-नगर-वन-उपवन सभी को तृप्त-परितृप्त करता गया। यह सूर्य डूवने की अतिम घडी, अतिम क्षण तक तेज से दीप्त रहा, प्रभाव से प्रचण्ड रहा और उसकी किरणो का विस्तार अनन्त असीम गगन के दिक्कोणो को छूता रहा।

जैसे लड्डू का प्रत्येक दाना मीठा होता है, अगूर का प्रत्येक अश मधुर होता है, इसी प्रकार गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज का

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा। उनके जीवन-सागर की गहराई मे उतरकर गोता लगाने से गुणो की विविध बहुमूल्य मणिया हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव-जीवन का ऐसा कौन सा गुण है जो इस महापुरुष मे नही था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्व-शक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्भुत नेतृत्वक्षमता, सघ-समाज की सरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण व्यक्तित्व सागर मे छिपे थे। उनकी गणना करना असभव नही तो दुसभव अवश्य ही है। महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दो मे—

कल्पान्तवान्तपयस प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशे

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचाले खाकर वाहर भूमि पर गिरी समुद्र की असीम अगणित मणिया सामने दीखती जरूर है, किन्तु कोई उनकी गणना नही कर सकता, इसी प्रकार महापुरुपो के गुण भी दीखते हुए भी गिनती से वाहर होते है।

जीवन रेखाएँ

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० स० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर में हुआ।

पाच वर्प की आयु मे ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्प की अवस्था मे भयकर वीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरु-देव श्री मानमलजी म एव स्व गुरुदेव श्री वुधमलजी म ने मगलपाठ सुनाया और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। काल का ग्राम वनते-वनते वच गये।

गुरुदेव के इस अद्भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की असीम श्रद्धा उमड आई। उनका शिष्य वनने की तीव्र उत्कठा जग पडी। इस वीच गुरुदेवश्री मानमलजी म का वि स १९७५, माघ वदी

७ को जोधपुर मे स्वर्गवास हो गया। वि स १९७५ अक्षय तृतीया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलो से आपने दीक्षा रत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बडी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति अद्भुत थी। छोटी उम्र मे आगम, थोकडे, सस्कृत, प्राकृत, गणित, ज्योतिप, काव्य, छन्द, अलकार, व्याकरण आदि विविध विषयो का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और प्रभावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते और यो सहज ही आपका वर्चस्व, तेजस्व बढता गया।

वि स १९८५ पौप वदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म का स्वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की सप्रदाय का समस्त दायित्व आपश्री के कधो पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो सर्वथा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त सप्रदाय-परम्परा को सदा विकासोन्मुख और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानागसूत्र-वर्णित चार शिष्यो (पुत्रो) मे आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य ही कहा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना वढाता रहता है।

वि स १९९३, लोकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरुधरकेसरी पद से विभूपित किया गया। वास्तव मे ही आपकी निर्भीकता और क्रान्तिकारी सिह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप ही थी।

स्थानकवासी जैन समाज की एकता और सगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसघ के इतिहास मे सदा अमर रहेगे। समय-समय पर टूटती कडिया जोडना, सघ पर आये सकटो का दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, सत-सतियो की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर मे उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री की ही क्षमता का नमूना है कि बृहत् श्रमणसघ का निर्माण हुआ, बिखरे घटक एक हो गये।

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि आपने सगठन और एकता के साथ कभी सौदेवाजी नही की। स्वय सब कुछ होते हुए भी सदा ही पद-मोह से दूर रहे। श्रमणसघ का पदवी-रहित नेतृत्व आपश्री ने किया और जव सभी का पद-ग्रहण के लिए आग्रह हुआ तो आपश्री ने उस नेतृत्व चादर को अपने हाथो से आचार्यसम्राट (उस समय उपाचार्य) श्री आनन्दऋषिजी महाराज को ओढा दी। यह है आपश्री की त्याग व निस्पृहता की वृत्ति।

कठोर सत्य सदा कटु होता है। आपश्री प्रारम्भ से ही निर्भीक वक्ता, स्पष्ट चिन्तक और स्पष्टवादी रहे है। सत्य और नियम के साथ आपने कभी समझौता नही किया, भले ही वर्षो से साथ रहे अपने कहलाने वाले साथी भी साथ छोडकर चले गये, पर आपने सदा ही सगठन और सत्य का पक्ष लिया। एकता के लिए आपश्री के अगणित वलिदान श्रमणसघ के गौरव को युग-युग तक वढाते रहेगे।

सगठन के वाद आपश्री की अभिरुचि काव्य, साहित्य, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र मे वढती रही है। आपश्री की वहुमुखी प्रतिभा से प्रसूत सैकडो काव्य, हजारो पद-छन्द आज सरस्वती के शृगार वने हुए है। जैन राम यशोरसायन, जैन पाडव यशोरसायन जैसे महाकाव्यो की रचना, हजारो कवित्त, स्तवन की सर्जना आपकी काव्यप्रतिभा के वेजोड उदाहरण हे। आपश्री की आशुकवि-रत्न की पदवी स्वय मे सार्थक हे।

कर्मग्रन्थ (छह भाग) जैसे विशाल गुरु गम्भीर ग्रन्थ पर आपश्री के निर्देशन मे व्याख्या, विवेचन और प्रकाशन हुआ जो स्वय मे ही एक अनूठा कार्य हे। आज जेनदर्शन और कर्मसिद्धान्त के सैकडो अध्येता उनमे लाभ उठा रहे है। आपश्री के सान्निध्य मे ही पचसग्रह (दस भाग) जेसे विशालकाय कर्मसिद्धान्त के अतीव गहन ग्रन्थ का सम्पादन विवेचन और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, जो वर्तमान मे आपश्री की अनुपस्थिति मे आपश्री के सुयोग्य शिष्य श्री मरुधरमुनि जी के निर्देशन मे सम्पन्न हो रहा।

प्रवचन, जैन उपन्यास आदि की आपश्री की पुस्तकें भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई है। लगभग ६-७ हजार पृष्ठ से अधिक परिमाण मे आप श्री का साहित्य आका जाता है।

शिक्षा क्षेत्र मे आपश्री की दूरदर्शिता जैन समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई है। जिस प्रकार महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में एक नई क्रांति—नया दिशादर्शन देकर कुछ अमर स्थापनाएं की है, स्थानकवासी जैन समाज के शिक्षा क्षेत्र मे आपको भी स्थानकवासी जगत का 'मालवीय' कह सकते हैं। लोकाशाह गुरुकुल (सादडी), राणावास की शिक्षा सस्थाएं, जयतारण आदि के छात्रावास तथा अनेक स्थानो पर स्थापित पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन सस्थाएँ शिक्षा और साहित्य-सेवा के क्षेत्र मे आपश्री की अमर कीर्ति गाथा गा रही है।

लोक-सेवा के क्षेत्र मे भी मरुधरकेसरी जी महाराज भामाशाह और खेमा देदराणी की शुभ परम्पराओ को जीवित रखे हुए थे। फर्क यही है कि वे स्वय धनपति थे, अपने धन को दान देकर उन्होने राष्ट्र एव समाज-सेवा की, आप एक अकिंचन श्रमण थे, अत आपश्री ने धनपतियो को प्रेरणा, कर्तव्य-बोध और मार्गदर्शन देकर मरुधरा के गाँव-गाँव, नगर-नगर मे सेवाभावी सस्थाओ का, सेवात्मक प्रवृत्तियो का व्यापक जाल बिछा दिया।

आपश्री की उदारता की गाथा भी सैकडो व्यक्तियो के मुख से सुनी जा सकती है। किन्ही भी सत, सतियो को किसी वस्तु की, उपकरण आदि की आवश्यकता होती तो आपश्री निस्सकोच, बिना किसी भेदभाव के उनको सहयोग प्रदान करते और अनुकूल साधन-सामग्री की व्यवस्था कराते। साथ ही जहाँ भी पधारते वहाँ कोई रुग्ण, असहाय, अपाहिज, जरूरतमन्द गृहस्थ भी (भले ही वह किसी वर्ण, समाज का हो) आपश्री के चरणो मे पहुँच जाता तो आपश्री उसकी दयनीयता से द्रवित हो जाते और तत्काल समाज के समर्थ व्यक्तियो द्वारा उनकी उपयुक्त व्यवस्था करा देते। इसी कारण गाव-गाव मे

किसान, कुम्हार, ब्राह्मण, सुनार, माली आदि सभी कौम के व्यक्ति आपश्री को राजा कर्ण का अवतार मानने लग गये और आपश्री के प्रति श्रद्धावनत रहते। यही है सच्चे सत की पहचान, जो किसी भी भेदभाव के विना मानव मात्र की सेवा मे रुचि रखे, जीव मात्र के प्रति करुणाशील रहे।

इस प्रकार त्याग, सेवा, सगठन, साहित्य आदि विविध क्षेत्रो में सतत प्रवाहशील उस अजर-अमर यशोधारा में अवगाहन करने से हमें मरुधरकेसरी जी म० के व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट अनुभूतिया होती है कि कितना विराट्, उदार, व्यापक और महान था वह व्यक्तित्व।

श्रमणसघ और मरुधरा के उस महान मत की छत्र-छाया की हमें आज वहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु भाग्य की विडम्वना ही है कि विगत वर्प १७ जनवरी, १९८४, वि० स० २०४०, पौप सुदि १४, मगलवार को वह दिव्यज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती हुई इस धराधाम से ऊपर उठकर अनन्त असीम मे लीन हो गयी थी।

पूज्य मरुधरकेसरी जी के स्वर्गवास का उस दिन का दृश्य, शव-यात्रा मे उपस्थित अगणित जनसमुद्र का चित्र आज भी लोगो की स्मृति मे है और शायद शताब्दियो तक इतिहास का कीर्तिमान वनकर रहेगा। जैतारण के इतिहास मे क्या, सम्भवत राजस्थान के इतिहास मे ही किसी सन्त का महाप्रयाण और उस पर इतना अपार जन-समूह (सभी कौमो और सभी वर्ण के) उपस्थित होना यह पहली घटना थी। कहते है, लगभग ७५ हजार की अपार जनमेदिनी से सकुल शव-यात्रा का वह जलूस लगभग ३ किलोमीटर लम्वा था, जिसमें लगभग २० हजार तो आस-पास व गावो के किसान वधु ही थे, जो अपने ट्रेक्टरो, वैलगाडियो आदि पर चढकर आये थे। इस प्रकार उस महापुरुप का जीवन जितना व्यापक और विराट रहा, उससे भी अधिक व्यापक और श्रद्धा परिपूर्ण रहा उसका महाप्रयाण।

उस दिव्य पुरुष के श्रीचरणो मे शत-शत वन्दन।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

गुरुभक्त समाजनेता

श्रीमान माणकचन्द जी सा० मेहता

कवि ने कहा है—

जब तुम आये जगत मे जग हसा, तुम रोये।
ऐसा काम कुछ कर चलो, तुम हंसमुख, जग रोये ॥

जो मनुष्य जन्म लेकर देव-गुरु की भक्ति, धर्म की प्रभावना और राष्ट्र एव समाज की सेवा मे अपनी शक्ति लगा देता है, वह ससार मे युग-युग तक याद किया जाता है। उसका जीवन कृतकृत्य माना जाता है।

श्रीमान माणकचन्द जी सा० बागरेचा मेहता का जीवन भी इसी प्रकार का आदर्श जीवन था। आपके पिताश्री शेवमलजी सा० और मातुश्री सायरबाई थे। जंतारण मे दिनाक ६-२-१६०६ के शुभ दिन आपका जन्म हुआ।

आपका व्यवसाय क्षेत्र कोप्पल रहा। जहाँ आपने महावीर जैन गोशाला, महावीर जन प्राथमिक विद्यालय आदि की सस्थापना मे पूर्ण सहयोग दिया। व्यवसाय के साथ-साथ समाज सेवा, धर्म प्रभावना, जीवदया आदि सुकृत कार्यो मे भी आपने पूर्ण रुचि ली और लक्ष्मी का सुदुपयोग किया। आपकी सेवा, उदारता आदि के कारण कोप्पल मे लोग आपको दरबार के नाम से पुकारते थे।

अपने स्वरूप को छोडकर मिल जाना, बध्यमान प्रकृति रूप मे परिणमन होना सक्रम कहलाता है। बध्यमान प्रकृतियो का भी परस्पर मे सक्रम होता है। इनके कुछ अपवाद भी हैं। जैसे कि मूल प्रकृतियो का परस्पर मे सक्रम नही होता है। इसी प्रकार दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय तथा आयु कर्म की उत्तर प्रकृतियो मे परस्पर सक्रम नही होता है।

इस प्रकार सामान्य से सक्रम का लक्षण निर्देश करने के बाद पूर्व की तरह प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार भेदो के द्वारा सक्रमकरण का विस्तार से विचार करना प्रारम्भ किया है।

प्रकृति सक्रम मे सक्रम का पूर्वोक्त सामान्य लक्षण घटित करके एव तत्सवन्धी अपवादो का कारण सहित स्पष्टीकरण करके जिन प्रकृतियो मे प्रकृतियाँ सक्रमित होती है उनकी सज्ञा का निर्देश किया है कि वे पतद्ग्रह प्रकृति कहलाती हैं एव इन प्रकृतियो सम्बन्धी अपवादो को भी बतलाया है।

तत्पश्चात् सक्रमापेक्षा मूल कर्म प्रकृतियो के सादि-अनादि भग नही होने से उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा का विचार किया है। और इसके बाद सक्रम्यमाण प्रकृतियो के स्वामित्व की प्ररूपणा की है।
जिस प्रकार से पूर्व मे सक्रम्यमाण उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा का विचार किया है, उसी तरह पतद्ग्रह प्रकृतियो की भी साद्यादि प्ररूपणा का कथन किया ह। फिर सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो का विचार किया है। प्रत्येक कर्म की एक साथ कितनी प्रकृतियाँ सक्रमित हो सकती हैं, और वे कितनी प्रकृतियो मे सक्रमित होती है। एतद्विषयक मोहनीय और नामकर्म की प्रकृतियो का विस्तार से वर्णन किया है।

इसके बाद सक्रम और पतद्ग्रहस्थानो की साद्यादि प्ररूपणा की है। इसके साथ ही मोहनीय कर्म के सक्रमस्थानो एव पतद्ग्रहस्थानो के बारे मे विस्तार से चर्चा की है।

तत्पश्चात् नामकर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो की विस्तार से चर्चा की है और उसके बाद अन्त मे प्रकृतिसक्रम आदि के आशय को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार से प्रकृतिसक्रम सबन्धी उक्त समग्र वर्णन आदि की ३४ गाथाओ मे किया है और उसके बाद स्थितिसक्रम के भेद, विशेष लक्षण, उत्कृष्ट-जघन्य-स्थितिसक्रम प्रमाण, और साद्यादि-प्ररूपणा इन पांच अर्थाधिकारो का यथाक्रम से विचार किया है। उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसक्रम की प्ररूपणा करते के प्रसग मे स्वामित्व का भी विचार किया है तथा स्थितिसक्रम को बताने के लिये प्रकृतियो का बधोत्कृष्टा, सक्रमोत्कृष्टा इस प्रकार से वर्गीकरण किया है।

इसके अनन्तर स्थितिसक्रम की अपेक्षा मूल और उत्तर-प्रकृतियो की साद्यादि-प्ररूपणा की है और इसके साथ ही स्थितिसक्रम विषयक विवेचन पूर्ण हुआ।

अनुभागसक्रम का विचार भेद, विशेष लक्षण, स्पर्धक, उत्कृष्ट और जघन्य अनुभागसक्रमप्रमाण, स्वामित्व और साद्यादि-प्ररूपणा इन सात अनुयोगद्वारो से किया है। स्पर्धक प्ररूपणा मे रसस्पर्धको के सर्वघाति, देशघाति और अघाति यह तीन प्रकार एव स्थान सज्ञा की अपेक्षा एक-स्थानक, द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतु स्थानक यह चार भेद किये हैं। इन घाति और स्थान सज्ञा मे कौन-कौन प्रकृतियाँ गर्भित है। इसका कारण सहित वर्णन किया है। तदनन्तर सक्रमापेक्षा उत्कृष्ट और जघन्य रस का प्रमाण बतलाकर उत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग सक्रम के स्वमियो का निरूपण किया है। तत्पश्चात् अनुभाग सक्रम की अपेक्षा मूल एव उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा पूर्वक अनुभागसक्रम सबन्धी निरूपण पूर्ण हुआ।

इसके बाद क्रम-पाप्त प्रदेशसक्रम का विवेचन किया है। इस विवेचन के भेद, लक्षण, साद्यादि-परूपणा, उत्कृष्ट-जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामी यह पांच अर्थाधिकार हैं।

भेद अधिकार मे विध्यात, उद्वलन, यथाप्रवृत्त, गुण और सर्वसक्रम इन पांच प्रकार के प्रदेशसक्रमो का विस्तार से एव सक्रम के रूप मे मान्य स्तिवुक सक्रम का विवेचन किया है। इन पांचो प्रकारो मे कौन किसका बाधक है, किस क्रम से इनकी प्रवृत्ति होती है और कौन-कौन प्रकृतियां कब किस सक्रम के योग्य होती है, आदि का विस्तार से विचार किया है। तत्पश्चात् साद्यादि

प्ररूपणा एव स्वामित्व विचारणा के प्रसग मे गुणित कर्मांश और क्षपित कर्मांश जीवो की विशद् व्याख्या की है। जो क्रमश उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशसक्रम के अधिकारी है।

इस प्रकार से प्रदेशसक्रम के अधिकृत विपयो का विवेचन करने के साथ सक्रमकरण का वर्णन समाप्त हुआ। सक्रमकरण के अधिकृत विषयो का वर्णन ११९ गाथाओ मे किया है।

इसके पश्चात् एक प्रकार से सक्रम के भेद जैसे उद्‌वर्तना और अपवर्तना इन दो करणो का वर्णन किया है। सक्रम और इन दो करणो मे यह अन्तर है कि सक्रम तो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चारो का होता है, किन्तु उद्‌वर्तना और अपवर्तनाकरण स्थिति और अनुभाग के विषय मे होते है। इन उद्‌वर्तना और अपवर्तना के स्थिति और अनुभाग के भेद से दो मुख्य प्रकार हैं और इन दो प्रकारो मे से प्रत्येक के निर्व्याघात, व्याघात के भेद से दो-दो प्रकार हो जाते हैं।

सक्षेप मे यह सक्रम आदि तीन करणो के विचारणीय विपयो की रूप-रेखा है। यह तो सकेत मात्र है। विस्तृत और विशद् जानकारी के लिये पाठकगण पूरे अधिकार का अध्ययन करें, यही अपेक्षा है।

—देवकुमार जैन

विषयानुक्रमणिका

संक्रमकरण

उद्वर्तना और अपवर्तनाकरण

श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षिमहत्तर-विरचित

पंचसंग्रह

[मूल, शब्दार्थ तथा विवेचनयुक्त]

संक्रम आदि करणत्रय
(संक्रम-उद्वर्तना-अपवर्तना करण) ७
प्ररूपणा अधिकार

७. : संक्रम आदि करणत्रय-प्ररूपणा अधिकार

यथाक्रम निर्देश करने के न्यायानुसार बधनकरण के अनन्तर अब ग्र थकार आचार्य बधसापेक्ष सक्रम आदि तीन करणो का निरूपण करते हैं। उनमे भी सक्रमकरण का विवेचन प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम सक्रम का लक्षण कहते है।

संक्रम का लक्षण

बज्झतियासु इयरा ताओवि य सकमंति अन्नोन्नं।

जा संतयाए चिट्ठंहि बधाभावेवि दिट्ठीओ ॥१॥

शब्दार्थ—बज्झतियासु—बधने वाली प्रकृतियो मे, इयरा—दूसरी—अन्य, ताओ—उनका, वि—भी, य—और, सकमंति—सक्रमण होता है, अन्नोन्न—परस्पर—एक दूसरे का, जा—जो, सतयाए—सत्ता से, चिट्ठंहि विद्यमान है, बधाभावेवि—बध का अभाव होने पर भी, दिट्ठीओ—दृष्टियो का।

गाथार्थ—जो प्रकृतिया सत्ता मे विद्यमान है, उन अबध्यमान प्रकृतियो का बधने वाली प्रकृतियो मे सक्रमण होता है, उसे सक्रम कहते है तथा बध्यमान प्रकृतियो का परस्पर एक-दूसरे में जो सक्रम होता है, वह भी सक्रम कहलाता है। बध का अभाव होने पर भी दृष्टियो (दर्शनमोहनीय की दृष्टिद्विक) का सक्रम होता है।

विशेषार्थ—गाथा मे सक्रम का लक्षण बतलया है। जिसका विशदता के साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

बध की तरह प्रकृति, स्थिति, अनुभाग-रस और प्रदेश रूप विषय के भेद से सक्रम भी चार प्रकार का है।

अव किस स्वरूप वाली अवध्यमान प्रकृतिया सक्रमित होती है, इसको वताते हैं—जिस प्रकृति के दलिक सत्ता में हो, वह सक्रात होती हे, जिसका क्षय हो गया हो और जिसने अभी अपने स्वरूप को प्राप्त नही किया है अर्थात् जो अभी सत्तारूप में नही हुई हो उसका सक्रम नही होता है। क्योकि अनुक्रम से नष्ट हुई होने से और उत्पन्न हुई नही होने से उसके दलिको का ही अभाव है।

वध्यमान प्रकृतियो के दलिक तो सत्ता मे होते ही है, क्योकि वे वधते है, इसलिये वधावलिका के जाने के वाद वह तो सक्रमित हो सकती है, जिससे उनके सम्वन्ध मे कोई प्रश्न नही उठता है, परन्तु अवध्यमान जो प्रकृतिया सक्रात होती है उनके दलिक जो सत्ता मे है, वे सक्रमित होते है। जो दलिक भोगकर क्षय हो चुके हो, वे क्षय हो जाने से सक्रात नही होते है और जिन्होने अपने स्वरूप को प्राप्त ही नही किया हो, स्वरूप से ही सत्ता मे न हो, वे सत्ता मे ही नही होने से सक्रात नही होते है। तात्पर्य यह कि सत्ता मे विद्यमान अवध्यमान प्रकृतियो के दलिक वध्यमान प्रकृति रूप होते हे ।

अवध्यमान प्रकृतियो का वध्यमान प्रकृतियो मे अथवा वध्यमान का वध्यमान मे जो सक्रम होता है, वह सक्रम कहलाता हे, ऐसा जो सक्रम का लक्षण कहा गया है, वह परिपूर्ण नही है। क्योकि मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय वधती नही है, लेकिन उनमे मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय का सक्रम होता है, इस वात को ध्यान मे रखकर विशेप कहते हैं—'वधाभावेवि दिट्ठीओ' अर्थात् पतद्ग्रह रूप मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय के वध का अभाव होने पर भी उसमे मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय का सक्रम होता है। चौथे गुणस्थान से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक मिथ्यात्वमोहनीय का मिश्र और सम्यक्त्वमोहनीय इन दोनो मे तथा मिश्र का सम्यक्त्वमोहनीय मे जो सक्रम होता है, उसे भी सक्रम कहा जाता हैं।

व्युत्पत्तिमूलक अर्थ इस प्रकार है—पतद् अर्थात् सक्रमित होने वाले दलिको का ग्रह—आधार पतद्ग्रह है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सत्ता मे विद्यमान दलिक बध्यमान जिस प्रकृति रूप होते है, वह बध्यमान प्रकृति पतद्ग्रह कहलाती है।

सक्रात हुआ वह दलिक जिस समय सक्रमित हुआ उस समय से लेकर एक आवलिका काल तक करणासाध्य—उद्वर्तना, अपवर्तना आदि किसी भी करण के अयोग्य होता है, यानि उस दलिक मे किसी भी करण की प्रवृत्ति नही होती है। एक आवलिका काल तदवस्थ ही रहता है। उसके पश्चात् किसी भी करण के योग्य होता है। इसी प्रकार जिस समय बधा उस बद्धदलिक मे भी बद्धसमय से लेकर एक आवलिका काल पर्यन्त किसी भी करण की प्रवृत्ति नही होती है। सक्रात दलिक मे भी सक्रम का सामान्य लक्षण घटित होता है, इसलिये सक्रम समय से लेकर एक आवलिका काल वह दलिक करण के असाध्य होता है—'करणासज्झ भवे दलिय' यह कहा है।

इस प्रकार से सक्रमित होने वाली प्रकृति की आधार बनने वाली प्रकृति की सज्ञा निर्धारित करने और आवलिका पर्यन्त करणा-साध्यत्व का कारण स्पष्ट करने के बाद अब पूर्वोक्त सक्रम के लक्षण के अतिव्याप्ति दोष का परिहार करने के लिये आचार्य अपवाद का विधान करते हैं।

सक्रम लक्षण : अपवाद विधान

> **नियनिय दिट्ठि न केइ दुइयतइज्जा न दसणतिगपि।**
> **मीसंमि न सम्मत्तं दसकसाया न अन्नोन्न ॥३॥**
> **सकामति न आउं उवसत तहय मूलपगईओ।**
> **पगइठाणविभेया सकमणपडिग्गहा दुविहा ॥४॥**

शब्दार्थ—**नियनिय**—अपनी-अपनी, **दिट्ठि**—दृष्टि, **न**—नही, **केइ**—कोई, **दुइयतइज्जा**—दूसरे-तीसरे, **न**—नही, **दसणतिगपि**—दर्शनत्रिक को भी, **मीसमि**—मिश्र मे, **न**—नही, **सम्मत्त**—सम्यक्त्व को, **दसकसाया**—दर्शनमोहनीय, कपायमोहनीय का, **न**—नही, **अन्नोन्न**—परस्पर मे।

मोहनीय में और चारित्रमोहनीय का दर्शनमोहनीय मे सक्रमण नही होता है—'दसकसाया न अन्नोन्न'। परन्तु इस सम्बन्ध में एक विचारणीय प्रश्न यह है—

यद्यपि यहाँ की तरह कर्मप्रकृति सक्रमकरण मे भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का परस्पर सक्रम न होने का स्पष्ट उल्लेख है, परन्तु नव्यशतक गाथा ६६ की वृत्ति में श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने तथा विशेपावश्यक वृहद्वृत्ति, आवश्यकचूर्णि आदि मे क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते हुए अनन्तानुबधि का क्षय करने वाला जीव अनन्तानुबधि(चारित्रमोहनीय की प्रकृति) का अनन्तवा भाग मिथ्यात्वमोहनीय में सक्रान्त करता है और उसके बाद अनन्तानुबधि सहित मिथ्यात्वमोह का क्षय करता है, इस प्रकार अनन्तानुबधि का मिथ्यात्वमोहनीय मे सक्रम होता है—ऐसा सूचित किया है। विद्वान इसका समाधान करने की कृपा करे।

इसका सम्भव समाधान यह हो सकता है कि पहले यह जान लेना चाहिये कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय की प्रकृतिया कौन-कौन है। क्योकि इसी ग्र थ के तीसरे अधिकार, कर्मग्र थ और आचारागवृत्ति आदि ग्र थो मे मिथ्यात्वादिकत्रिक को दर्शनमोहनीय की और शेष अनन्तानुबधिकषायचतुष्क आदि पच्चीस प्रकृतियो को चारित्रमोहनीय की प्रकृति बतलाया है, जबकि तत्त्वार्थ की टीका मे अनन्तानुबधिचतुष्क और दर्शनत्रिक इन सात प्रकृतियो को दर्शनमोहनीय और शेष इक्कीस प्रकृतियो को चारित्रमोहनीय मे परिगणित किया है तथा अनन्तानुबधिचतुष्क भी दर्शनगुण का ही घात करती है, जिससे अन्य ग्र थो मे भी इन सात प्रकृतियो को 'दर्शनसप्तक' के रूप मे बताया है। अब यदि दर्शनमोहनीय यानि अनन्तानुबधि आदि सात प्रकृतियो को ग्रहण करे तो दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का परस्पर सक्रम नही होता है, यह पाठ और 'अनन्तानुबधि का मिथ्यात्वमोहनीय मे सक्रम हुआ' यह पाठ सगत हो सकता है तथा मात्र दर्शनत्रिक को दर्शनमोहनीय से ग्रहण किया

में सक्रमित होती है, तब क्रमश प्रकृतिस्थानसक्रम और प्रकृतिस्थान-पतद्ग्रह कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब एक प्रकृति सक्रात होती हो तब प्रकृतिसक्रम तथा अनेक प्रक्रात होती हो तब प्रकृतिस्थानसक्रम और सक्रम्यमाण प्रकृति का आधार जब एक प्रकृति हो तब प्रकृतिपतद्ग्रह और अनेक हो तब प्रकृतिस्थानपतद्-ग्रह कहलाता है।

उसमें भी जब बहुत सी प्रकृतिया एक में सक्रात हो, जैसे कि एक यश कीर्तिनाम में नामकर्म की शेष प्रकृतिया, तब वह प्रकृतिस्थान-सक्रम कहलाता है और जब बहुत सी प्रकृतियो मे एक प्रकृति सक्रमित हो, जैसे कि मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय मे मिथ्यात्वमोहनीय का सक्रम हो तब वह प्रकृतिस्थानपतद्ग्रह कहलाता है तथा जब अनेक प्रकृतियो में अनेक प्रकृतिया सक्रमित हो, जैसे कि ज्ञानावरण की पाचो प्रकृतिया पाचो प्रकृतियो में सक्रमित हो तब वह प्रकृति-स्थानसक्रम और प्रकृतिस्थानपतद्ग्रह कहलाता है।

यथार्थत तो यद्यपि अनेक प्रकृतिया सक्रमित होती हैं और पतद्ग्रह भी अनेक प्रकृतिया होती है, लेकिन जब सक्रम और पतद्ग्रह रूप में एक-एक प्रकृति के सक्रम की और एक-एक प्रकृतिरूप पतद्ग्रह की विवक्षा की जाये तब उसे प्रकृतिसक्रम और प्रकृतिपतद्ग्रह कहा जाता है, ऐसा समझना चाहिये। ऐसा होने से आगे भी जहाँ एक-एक प्रकृतिसक्रम और एक-एक प्रकृतिरूप पतद्ग्रह का विचार करेंगे वहाँ प्रकृतिस्थानसक्रम और प्रकृतिस्थानपतद्ग्रह का सद्भाव होने पर भी उसका प्रकृतिसक्रम और प्रकृतिपतद्ग्रह रूप में प्रतिपादन किया जाना विरोधी नही होगा। जैसे कि ज्ञानावरण की पाचो प्रकृतियो का बध दसवे गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होता है जिससे पाचो प्रकृतिया पतद्ग्रहरूप है और सक्रमित होने वाली भी पाचो है। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणादि चार मे सक्रमित होता है। इस प्रकार प्रत्येक समय ज्ञानावरण की पाचो प्रकृतिया सक्रमरूप और पतद्ग्रहरूप होने पर भी जब एक-एक के सक्रम की और एक-एक प्रकृतिरूप पतद्ग्रह की विवक्षा की जाये, जैसे कि मतिज्ञानावरण

गाथार्थ—क्षायिक अथवा उपशम सम्यग्दृष्टि जीवो के श्रेणि (उपशमश्रेणि) में (अन्तरकरण करे तब) और इतर क्षपक-श्रेणि मे आठ कपायो का क्षय करने के वाद (अन्तरकरण करे तव) चरम—सज्वलनलोभ का सक्रम नही होता है। क्योकि पाच प्रकृतियो का सक्रम क्रम से होता है।

विशेपार्थ—क्षायिक सम्यग्दृष्टि अथवा उपशम सम्यग्दृष्टि जीवो के उपशमश्रेणि मे जव अन्तरकरण करे तव तथा इतर—क्षपकश्रेणि मे आठ कपायो का क्षय करने के वाद अन्तरकरण करे तव सज्वलन-लोभ का सक्रम नही होता है।

इसका कारण यह है कि उपशमश्रेणि मे अथवा क्षपकश्रेणि मे अन्तरकरण करने के वाद पुरुपवेद और सज्वलनक्रोधादि कपाय-चतुष्क इन पाच प्रकृतियो का क्रमपूर्वक यानि पहले जिसका वध-विच्छेद होता है, उसका उसके वाद वधविच्छेद होने वाली प्रकृति मे सक्रम होता है, उत्क्रम से नही होता है। अर्थात् जिसका वध-विच्छेद वाद मे होता है, उसका पहले वधविच्छेद होने वाली प्रकृति मे सक्रम नही होता है।

जैसे कि पुरुपवेद का सज्वलन क्रोधादि मे सक्रम होता है, परन्तु सज्वलन क्रोधादि का पुरुपवेद मे सक्रम नही होता है। इसी प्रकार सज्वलन क्रोध का सज्वलन मान में सक्रमण किया जाता है, परन्तु पुरुपवेद मे सक्रम नही होता है। सज्वलन मान को सज्वलन मायादि मे सक्रमित किया जाता है परन्तु सज्वलन क्रोधादि मे सक्रमित नही किया जाता है और सज्वलन माया का सज्वलन लोभ मे सक्रम होता है परन्तु सज्वलन मानादि मे नही। इसी वात को कर्मप्रकृति सक्रम-करण गाथा ४ मे भी इसी प्रकार कहा है—'अन्तरकरण करने पर चारित्रमोहनीय की पाच प्रकृतियो का क्रमपूर्वक सक्रमण होता है।'[1] अतएव उक्त न्याय से अन्तरकरण होने के वाद सज्वलनलोभ

---

१ 'अनरकरणमि कए चरित्तमोहेणुपुव्वि सकमण।'

कर्मप्रकृति सक्रमकरण गा ४—

सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की उद्वलना होने पर मिथ्यात्वमोहनीय पतद्ग्रह रूप नही रहती है।

प्रथम स्थिति की समय न्यून दो और तीन आवलिका शेष रहे तब क्रम से पुरुषवेद और सज्वलन की पतद्ग्रहता नही होती है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे से पहली मे सामान्य पतद्ग्रह सबन्धी और दूसरी मे श्रेणि सबन्धी पतद्ग्रह विषयक अपवाद का निर्देश किया है। इनमें से पहले सामान्य अपवादो को स्पष्ट करते है—

क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते हुए मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय होने के बाद मिश्रमोहनीय पतद्ग्रह नही होती है—'मिच्छे खविए मीसस्स नत्थि।' अर्थात् मिश्रमोहनीय मे किसी भी अन्य प्रकृति के दलिक सक्रमित नही होते है। क्योकि मिश्रमोहनीय मे मात्र मिथ्यात्व मोहनीय के ही दलिक सक्रमित होते है, अन्य किसी भी प्रकृति के सक्रमित नही होते है। उसका (मिथ्यात्वमोहनीय का) तो क्षय हुआ कि जिससे मिश्रमोहनीय की पतद्ग्रहता नष्ट हो गई।

'उभए वि नत्थि सम्मस्स' अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्र-मोहनीय इन दोनो का क्षय होने के बाद सम्यक्त्वमोहनीय की भी पतद्ग्रहता नही रहती है। इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वमोहनीय मे मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय का ही सक्रम होता है और इन दोनो का तो क्षय हो गया है, जिससे अन्य दूसरी किसी भी प्रकृति का सक्रम असभव होने से सम्यक्त्वमोहनीय भी पतद्ग्रह रूप नही रहती है।

मिथ्यात्वगुणस्थान मे सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की उद्वलना होने के बाद मिथ्यात्वमोहनीय पतद्ग्रह नही रहती है। क्योकि पहले गुणस्थान मे मिथ्यात्वमोहनीय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय का ही सक्रम होता है। किन्तु चारित्रमोहनीय की किसी भी प्रकृति का सक्रम नही होता है। इसका कारण यह है कि

वेदनीय का, साई अध्रुवो—सादि, अध्रुव, बधोव्व—वध की तरह, होइ—होता है, तह—तथा, अधुवसतीण—अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का ।

गाथार्थ—ध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का सक्रम सादि आदि चार प्रकार है, मिथ्यात्व, नीचगोत्र और वेदनीय का सक्रम तथा अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का बध की तरह सादि और सात, इस तरह दो प्रकार का है ।

विशेषार्थ—सत्ता की दृष्टि से प्रकृतिया दो प्रकार की है—ध्रुवसत्ताका और अध्रुवसत्ताका । इन दोनो प्रकारो की प्रकृतियो की सादि-अनादि परूपणा इस प्रकार है—

सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, नरकद्विक, मनुष्यद्विक, देवद्विक, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक, तीर्थंकरनाम, उच्चगोत्र तथा आयुचतुष्क, कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिया अध्रुवसत्ता वाली हैं और शेष एक सौ तीस प्रकृतियो की ध्रुवसत्ता है ।

अव इनके सादि आदि भगो का विचार करते है—मिथ्यात्वमोहनीय, नीचगोत्र, साता-असाता वेदनीय के सिवाय शेष एक सौ छब्बीस ध्रुवसत्कर्म वाली प्रकृतियो का सक्रम साद्यादि रूप चार प्रकार का है । वह इस प्रकार—उपयुक्त ध्रुवसत्कर्म प्रकृतियो का—सक्रम की विषयभूत प्रकृतियो का—पतद्ग्रहप्रकृति का बधविच्छेद होने के बाद सक्रम नही होता है । तत्पश्चात् सक्रम की विषयभूत प्रकृतियो का अपने-अपने बधहेतु मिलने पर पुन बध होता है तब सक्रम होता है, इसलिये सादि, बधविच्छेदस्थान जिन्होने प्राप्त नही किया है, उनको अनादिकाल से सक्रम होता है, इसलिये अनादि, अभव्य के किसी भी काल बधविच्छेद नही, इसलिये अनन्त (ध्रुव) और भव्य के कालान्तर में बधविच्छेद सभव होने से सात (अध्रुव) सक्रम होता है ।

मिथ्यात्वमोहनीय, नीचगोत्र (उच्च), साता-असाता वेदनीय का सक्रम सादि और सात (अध्रुव) इस प्रकार दो तरह का है । वह इस तरह

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का परस्पर सक्रम नहीं होता है और सम्यक्त्व तथा मिश्रमोहनीय की तो उद्वलना हो गई, जिससे अन्य किसी भी प्रकृति के सक्रम का अभाव होने से मिथ्यात्वमोहनीय की पतद्ग्रहता नही रहती है—'उव्वलिएसु दोसु पडिग्गहया नत्थि मिच्छस्स ।,

इस प्रकार सामान्य पतद्ग्रहता विषयक अपवाद का कथन करने के बाद अब श्रेणि विषयक अपवाद कहते हैं—

'दुसुतिसु' इस प्रकार गाथा मे ग्रहण किये हुए दो और तीन शब्द के साथ पुरुषवेद और सज्वलनचतुष्क की क्रमपूर्वक योजना करना चाहिये और योजना करने पर यह अर्थ हुआ कि अन्तरकरण करने के बाद समयन्यून दो आवलिका प्रमाण प्रथमस्थिति शेष रहे तब पुरुषवेद की पतद्ग्रहता नही रहती है। अर्थात् पुरुषवेद मे अन्य किसी भी प्रकृति के दलिक सक्रमित नही होते है तथा समयन्यून तीन आवलिका प्रमाण प्रथमस्थिति शेष रहे तब सज्वलनचतुष्क—क्रोध, मान, माया और लोभ पतद्ग्रह रूप नहीं रहते हैं। प्रथमस्थिति उतनी-उतनी शेष रहे तब उनमें अन्य किसी भी प्रकृति के दलिक सक्रमित नही होते है।

इस प्रकार से पतद्ग्रह सबधी अपवाद जानना चाहिये। अब क्रम-प्राप्त सादि-अनादि प्ररूपणा करते है। वह दो प्रकार की है—१—मूल प्रकृति विषयक और २—उत्तर प्रकृति विषयक। किन्तु मूल प्रकृतियो मे परस्पर सक्रम नही होने से उनमे तो सादि-अनादि प्ररूपणा सभव नही है। इसलिये उत्तर प्रकृतियो मे विचार करते है।

उत्तर प्रकृतियो की सादि-अनादि प्ररूपणा

> धुवसतोण चउहेह सकमो मिच्छणीयवेयणीए ।
> साईअधुवो बधोव्व होइ तह अधुवसतोण ॥८॥

शब्दार्थ—धुवसतोण—ध्रुव सत्तावाली प्रकृतियो का, चउहेह—चार प्रकार का, सकमो—सक्रम, मिच्छणीयवेयणीए—मिथ्यात्व, नीचगोत्र और

वेदनीय का, साई अधुवो—सादि, अध्रुव, बधोव्व—बध की तरह, होइ—होता है, तह—तथा, अधुवसतीण—अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का।

गाथार्थ—ध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का सक्रम सादि आदि चार प्रकार है, मिथ्यात्व, नीचगोत्र और वेदनीय का सक्रम तथा अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का बध की तरह सादि और सात, इस तरह दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—सत्ता की दृष्टि से प्रकृतिया दो प्रकार की है—ध्रुवसत्ताका और अध्रुवसत्ताका। इन दोनो प्रकारो की प्रकृतियो की सादि-अनादि परूपणा इस प्रकार है—

सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, नरकद्विक, मनुष्यद्विक, देवद्विक, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक, तीर्थंकरनाम, उच्चगोत्र तथा आयुचतुष्क, कुल मिलाकर अट्ठाईस प्रकृतिया अध्रुवसत्ता वाली है और शेप एक सौ तीस प्रकृतियो की ध्रुवसत्ता है।

अव इनके सादि आदि भगो का विचार करते है—मिथ्यात्वमोहनीय, नीचगोत्र, साता-असाता वेदनीय के सिवाय शेष एक सौ छब्बीस ध्रुवसत्कर्म वाली प्रकृतियो का सक्रम साद्यादि रूप चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—उपर्युक्त ध्रुवसत्कर्म प्रकृतियो का—सक्रम की विषयभूत प्रकृतियो का—पतद्ग्रहप्रकृति का वधविच्छेद होने के बाद सक्रम नही होता है। तत्पश्चात् सक्रम की विषयभूत प्रकृतियो का अपने-अपने वधहेतु मिलने पर पुन बध होता है तव सक्रम होता है, इसलिये सादि, बधविच्छेदस्थान जिन्होने प्राप्त नही किया है, उनको अनादिकाल से सक्रम होता है, इसलिये अनादि, अभव्य के किसी भी काल वधविच्छेद नही, इसलिये अनन्त (ध्रुव) और भव्य के कालान्तर मे वधविच्छेद सभव होने से सात (अध्रुव) सक्रम होता है।

मिथ्यात्वमोहनीय, नीचगोत्र (उच्च), साता-असाता वेदनीय का सक्रम सादि और सात (अध्रुव) इस प्रकार दो तरह का है। वह इस तरह

कि मिथ्यात्वमोहनीय का सक्रम विशुद्ध सम्यग्दृष्टि के होता है और विशुद्ध सम्यग्दृष्टित्व कादाचित्क-अमुक काल मे होता है, अनादि काल से नही होता है। इसलिये जब उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हो तब मिथ्यात्वमोहनीय का सक्रम होता है, जिससे सादि और उसके बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हो अथवा गिरकर मिथ्यात्व मे जाये तब सक्रम का अन्त होता है, जिससे अध्रुव (सात) है। इस प्रकार मिथ्यात्व का सक्रम सादि, सान्त (अध्रुव) भग वाला है।

साता-असाता-वेदनीय और उच्च-नीच-गोत्र प्रकृतियो के परावर्तमान होने से ही उनका सक्रम सादि-अध्रुव भग वाला है। वह इस प्रकार—सातावेदनीय के बध होने पर असातावेदनीय का सक्रम होता है तथा जब असातावेदनीय का बध होता हो तब साता का सक्रम होता है। इसी प्रकार उच्चगोत्र का जब बध तब नीचगोत्र का और जब नीचगोत्र का बध हो तब उच्चगोत्र का सक्रम होता है। बध्यमान प्रकृति पतद्ग्रह है और नही बधने वाली सक्रम्यमाण है। इस प्रकार ये प्रकृतिया परावर्तमान होने से उनका सक्रम सादि और सात (अध्रुव) भग वाला है।

अध्रुवसत्कर्म प्रकृतियो का बध की तरह सक्रम भी सादि-सात समझना चाहिये। क्योकि उनकी सत्ता ही अध्रुव है। सत्ता हो तब सक्रम होता है और सत्ता के न होने पर सक्रम नही होता है। सुगमता से बोध करने के लिये प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

इस प्रकार से प्रकृतिसक्रम सबन्धी सादि-अनादि प्ररूपणा जानना चाहिये। अब सक्रम्यमाण प्रकृतियो के स्वामित्व का कथन करते है।

सक्रम्यमाण प्रकृतियो का स्वामित्व

साअणजसदुविहकसाय सेस दोदसणाण जइपुव्वा।
सकामगा कमसो सम्मुव्वाण पढमदुइया ॥६॥

शब्दार्थ—**साअणजस**—सातावेदनीय, अनन्तानुबधि, यश कीर्ति, **दुविहकसाय**—दो प्रकार की कसाय, **सेस**—शेष प्रकृतियो, **दोदसणाण**—

इसी प्रकार सर्वत्र सक्रम करने वालो मे पर्यन्तवर्ती कौन है, यह जान लेना चाहिये। अर्थात् जिस गुणस्थान तक पतद्ग्रहप्रकृति का सद्भाव होने से जिस प्रकृति का सक्रम होता हो, उस गुणस्थान वाला जीव उस प्रकृति का अतिम सक्रमक—सक्रमित करने वाला समझना चाहिये।

इसी तरह अनन्तानुबधि के सक्रमस्वामी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसयत तक के जीव समझना चाहिये। आगे के गुणस्थानो में अनन्तानुबधि का सर्वथा उपशम या क्षय होने से सक्रम नही होता है।

यश कीर्ति के मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक के जीव सक्रम के स्वामी है, ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव नही है। क्योकि मात्र यश कीर्ति का ही बध होने से वह पतद्ग्रह-प्रकृति है, सक्रात होने वाली नही है।

अनन्तानुबधि के सिवाय बारह कषाय और नव नोकषाय के सक्रम के स्वामी मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिबादरसपराय गुणस्थान तक के जीव जानना चाहिये। अनिवृत्तिबादरसपराय गुणस्थान में कषाय और नोकषाय का सर्वथा उपशम अथवा क्षय हो जाने से आगे के गुणस्थानो मे उनका सक्रम नही होता है।

जिन प्रकृतियो का नामोल्लेख किया गया है और बाद मे जिनका नाम कहा जायेगा उनके सिवाय ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणनवक, असातावेदनीय,[1] यश कीर्ति के सिवाय नामकर्म की सभी प्रकृति, नीचगोत्र और अतरायपचक इन सभी प्रकृतियो के मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक के जीव सक्रमस्वामी जानना चाहिये, ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव नही। क्योकि उपशातमोहादि

---

१ यद्यपि ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक मे साता का बध होता है, परन्तु उस बध को कषायनिमित्तक नही होने से उसकी पतद्ग्रह के रूप मे विवक्षा नही की है। जिससे उसमे असाता का सक्रम नही होता।

गुणस्थानो मे वध का अभाव होने से प्रकृति पतद्ग्रह रूप नही रहती है, जिससे किसी भी प्रकृति का सक्रम नही होता है।

मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय के अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर उपशातमोह गुणस्थान तक के जीव सक्रम के स्वामी है। क्षीण-मोहादि गुणस्थानो मे उनकी सत्ता का अभाव होने से सक्रम नही होता है।

मिश्रमोहनीय का मि-ग्रादृष्टि भी सक्रमक है, किन्तु सासादन और मिश्रदृष्टि जीव तो किसी भी दर्शनमोहनीय का किसी भी प्रकृति मे सक्रम नही करते है। क्यो कि गाथा ३ मे कहा है–दूसरे और तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव दर्शनत्रिक का सक्रम नही करते हैं। मिथ्यादृष्टि तो मिथ्यात्वमोहनीय के पतद्ग्रह होने से स्वभावत सक्रमित नही करता है। क्योकि गाथा ३ मे कहा है—जिस दृष्टि का उदय हो उस दृष्टि को कोई जीव सक्रमित नही करता है। इसलिये मिश्र और मिथ्यात्व मोहनीय के सक्रम के स्वामी अविरतसम्यग्दृष्टि आदि कहे है।

सम्यक्त्वमोहनीय के सक्रम का स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव है, अन्य कोई नही। क्योकि सम्यक्त्वमोहनीय को मिथ्यात्व मे वर्तमान जीव ही सक्रमित करता है, किन्तु सासादन या मिश्र सक्रमित नही करता है। क्योकि दूसरे, तीसरे गुणस्थान मे किसी भी दृष्टि का सक्रम नही होता है और चतुर्थ आदि गुणस्थानो मे विशुद्ध परिणाम है, इसलिये सम्यक्त्वमोहनीय के सक्रम का स्वामी अविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये।

उच्चगोत्र के सक्रम का स्वामी सासादनगुणस्थान तक का जीव हे। इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती जीव ही नीचगोत्रकर्म वाधते है। जहाँ और जव तक नीचगोत्र का वध हो वहाँ तक और तभी उच्चगोत्र का सक्रम होता है। वध्यमान प्रकृति पतद्ग्रह है और पतद्ग्रहप्रकृति के विना सक्रम होता नही। नीचगोत्र दूसरे गुणस्थान तक ही वधने वाला होने से वहाँ तक ही

गुणस्थानो मे बध का अभाव होने से प्रकृति पतद्ग्रह रूप नही रहती है, जिससे किसी भी प्रकृति का सक्रम नही होता है।

मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय के अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर उपशातमोह गुणस्थान तक के जीव सक्रम के स्वामी है। क्षीण-मोहादि गुणस्थानो मे उनकी सत्ता का अभाव होने से सक्रम नही होता है।

मिश्रमोहनीय का मि-ाादृष्टि भी सक्रमक है, किन्तु सासादन और मिश्रदृष्टि जीव तो किसी भी दर्शनमोहनीय का किसी भी प्रकृति मे सक्रम नही करते है। क्यो कि गाथा ३ मे कहा है—दूसरे और तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव दर्शनत्रिक का सक्रम नही करते है। मिथ्यादृष्टि तो मिथ्यात्वमोहनीय के पतद्ग्रह होने से स्वभावत सक्रमित नही करता है। क्योकि गाथा ३ मे कहा है—जिस दृष्टि का उदय हो उस दृष्टि को कोई जीव सक्रमित नही करता है। इसलिये मिश्र और मिथ्यात्व मोहनीय के सक्रम के स्वामी अविरतसम्यग्दृष्टि आदि कहे है।

सम्यक्त्वमोहनीय के सक्रम का स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव है, अन्य कोई नही। क्योकि सम्यक्त्वमोहनीय को मिथ्यात्व मे वर्तमान जीव ही सक्रमित करता है, किन्तु सासादन या मिश्र सक्रमित नही करता है। क्योकि दूसरे, तीसरे गुणस्थान मे किसी भी दृष्टि का सक्रम नही होता है और चतुर्थ आदि गुणस्थानो मे विशुद्ध परिणाम है, इसलिये सम्यक्त्वमोहनीय के सक्रम का स्वामी अविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये।

उच्चगोत्र के सक्रम का स्वामी सासादनगुणस्थान तक का जीव है। इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती जीव ही नीचगोत्रकर्म बाधते है। जहाँ और जब तक नीचगोत्र का बध हो वहाँ तक और तभी उच्चगोत्र का सक्रम होता है। बध्यमान प्रकृति पतद्ग्रह है और पतद्ग्रहप्रकृति के बिना सक्रम होता नही। नीचगोत्र दूसरे गुणस्थान तक ही बधने वाला होने से वहाँ तक ही

उच्चगोत्र का सक्रम होता है। ऊपर के गुणस्थानो मे मात्र उच्चगोत्र बधने से नीचगोत्र का ही सक्रम होता है। उक्त समग्र कथन का सुगमता से बोध कराने वाला प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

इस प्रकार से प्रकृतिसक्रम के स्वामियो को जानना चाहिये। अब पतद्ग्रह की अपेक्षा प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

पतद्ग्रहापेक्षा साद्यादि प्ररूपणा

> चउहा पडिग्गहत्त धुवबधिण विहाय मिच्छत्त।
> मिच्छाधुवबधिण साई अधुवा पडिग्गहया ॥१०॥

शब्दार्थ—चउहा—चार प्रकार का, पडिग्गहत्त—पतद्ग्रहत्व, धुवबधिण—ध्रुवबधिनी प्रकृतियो का, विहाय—छोडकर, मिच्छत्त—मिथ्यात्व को, मिच्छाधुवबधिण—मिथ्यात्व और अध्रुवबधिनी प्रकृतियो का, साई—सादि, अधुवा—अध्रुव, पडिग्गहया—पतद्ग्रहत्व।

गाथार्थ—मिथ्यात्व को छोडकर शेप ध्रुवबधिनी प्रकृतियो का पतद्ग्रहत्व चार प्रकार का है तथा मिथ्यात्व और अध्रुवबधिनी प्रकृतियो का पतद्ग्रहत्व सादि और अध्रुव है।

विशेषार्थ—बध की अपेक्षा प्रकृतिया दो प्रकार की है—ध्रुवबधिनी, अध्रुवबधिनी और बधप्रकृतिया पतद्ग्रह रूप होती है। उनकी यहाँ सादि-अनादि आदि प्ररूपणा की है—

'विहाय मिच्छत्त' अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय को छोडकर शेष ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणनवक, कपायषोडश, भय, जुगुप्सा, तैजससप्तक, वर्णादिवीशक, निर्माण, अगुरुलघु, उपघात और अतरायपचक—इस तरह सडसठ ध्रुवबधिनी प्रकृतियो की पतद्ग्रहता सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है।

वह इस प्रकार—उपर्युक्त ध्रुवबधिनी प्रकृतियो का अपना-अपना जब बधविच्छेद होता है तब वे पतद्ग्रह नही रहती हैं। यानि उनमे

अन्य किसी भी प्रकृति के दलिक सक्रमित नही होते है, किन्तु जब उन-उन प्रकृतियो का अपने-अपने बधहेतुओ के मिलने से बध प्रारभ होता है, तब वे पुन पतद्ग्रह रूप होती है। इस प्रकार पतद्ग्रहता नष्ट होने के बाद पुन पतद्ग्रह रूप होने से सादि है। उन प्रकृतियो का बधविच्छेदस्थान जिन्होने प्राप्त नही किया, उनका पतद्ग्रहत्व अनादि है। अभव्य के बधविच्छेद होता ही नही है, इसलिये ध्रुव है और भव्य ऊपर के गुणस्थान में जाकर उन-उन प्रकृतियो का बधविच्छेद करेगा—पतद्ग्रहत्व का नाश करेगा, उस अपेक्षा अध्रुव है।

मिथ्यात्वमोहनीय और अध्रुवबधिनी प्रकृतियो की पतद्ग्रहता सादि, अध्रुव है। वह इस प्रकार—मिथ्यात्वमोहनीय यद्यपि ध्रुवबधिनी है, परन्तु जिस जीव के सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की सत्ता हो, वही इन दो प्रकृतियो के दलिको को मिथ्यात्वमोहनीय मे सक्रात करता है, दूसरा कोई सक्रमित नही करता है। सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की सत्ता सर्वदा होती नही, इसलिये मिथ्यात्वमोहनीय की पतद्ग्रहता सादि, अध्रुव है।

अध्रुवबधिनी शेष छियासी प्रकृतियो की पतद्ग्रहता अध्रुवबधिनी होने से ही सादि और अध्रुव समझना चाहिये।

चारो आयु का परस्पर सक्रम नही होने से उनमे सादि आदि भगो का विचार नही किया जाता है। उक्त कथन का सुगमता से बोध कराने वाला प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

इस प्रकार से एक-एक प्रकृति की सक्रम और पतद्ग्रहत्व की अपेक्षा साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब प्रकृतिस्थान की साद्यादि प्ररूपणा करते है। परन्तु उससे पूर्व सक्रम और पतद्ग्रह के विषय मे उनके स्थानो की सख्या का निर्देश करने के लिये गाथासूत्र कहते है।

प्रकृतियो के सक्रम और पतद्ग्रह स्थान

> संतट्ठाणसमाइं संकमठाणाइं दोण्णि बीयस्य।
> बंधसम्म पडिग्गहगा अट्ठहिया दोवि मोहस्स ॥११॥

पन्नरससोलसत्तरअडचउवीसा य सकमे नत्थि।
अट्ठदुवालससोलसवीसा य पडिग्गहे नत्थि ॥१२॥

शब्दार्थ—सतट्ठाणसमाइ—सत्तास्थानो के समान, सकमठाणाइ—सक्रमस्थान, दोण्णि—दो, बीयस्स—दूसरे दर्शनावरण के, बधसमा—बधस्थान के समान, पडिग्गहगा—पतद्ग्रहस्थान, अट्ठहिया—आठ अधिक, दोवि—दोनो, मोहस्स—मोहनीयकर्म के।

पन्नरससोलसत्तरस—पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अडचउवीसा—आठ और चार अधिक बीस, य—और, सकमे—सक्रम मे, नत्थि—नही होते है, अट्ठदुवालस-सोलसवीसा—आठ, बारह, सोलह और बीस, य—अनुक्त अर्थबोधक अव्यय, पडिग्गहे—पतद्ग्रह मे, नत्थि—नही होते है।

गाथार्थ—सत्तास्थानो के समान प्रत्येक कर्म के सक्रमस्थान है, किन्तु दूसरे दर्शनावरणकर्म के दो है। बधस्थानो के समान पतद्ग्रहस्थान है, परन्तु मोहनीयकर्म मे बधस्थानो और सत्ता-स्थानो से आठ-आठ अधिक पतद्ग्रहस्थान और सक्रमस्थान है।

पन्द्रह, सोलह, सत्रह, आठ और चार अधिक बीस इस तरह पाच स्थान सक्रम मे तथा आठ, बारह, सोलह और बीस ये चार स्थान पतद्ग्रह मे नही होते है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे ज्ञानावरण आदि आठो मूल कर्मो की उत्तर प्रकृतियो के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो की सख्या का निर्देश किया है। जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सत्तास्थान के समान सक्रमस्थान होते है—'सतट्ठाणसमाइ सकमठाणाइ' अर्थात् जिस कर्म के जितने सत्तास्थान होते है, उस कर्म के उतने सक्रमस्थान भी होते है। किन्तु दूसरे दर्शनावरणकर्म मे नौ और छह की सत्ता रूप दो ही सक्रमस्थान हैं। सत्तास्थान की तरह तीसरा चार प्रकृतिक सत्ता रूप सक्रमस्थान नही है। जिसका आशय इस प्रकार है—

यद्यपि दर्शनावरणकर्म के तीन सत्तास्थान है—चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतिक, निद्राद्विक के साथ छह प्रकृतिक और स्त्यानर्द्धित्रिक सहित नौ प्रकृतिक और इसी प्रकार तीन बधस्थान भी है। किन्तु इनमे से सक्रमस्थान छह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक ये दो ही है। क्योकि बारहवे गुणस्थान के चरम समय मे दर्शनावरणचतुष्क की सत्ता होती है परन्तु दर्शनावरण का बध नही होता है, बध नही होने से पतद्ग्रहता भी नही। जिससे चार प्रकृति रूप तीसरा सक्रमस्थान घटित नही होता है। अर्थात् चार की सत्ता बारहवे गुणस्थान के चरम समय मे होती है किन्तु वहाँ कोई पतद्ग्रह न होने से चार प्रकृतिक सक्रमस्थान नही है।

यद्यपि बधस्थान के समान पतद्ग्रहस्थान होते है—'बधसमा पडिग्गहगा'। किन्तु मोहनीयकर्म इसका अपवाद है। क्योकि मोहनीयकर्म के सक्रम और पतद्ग्रह ये दोनो स्थान सत्तास्थानो और बधस्थानो से आठ-आठ अधिक है। वे इस प्रकार—मोहनीयकर्म के सत्तास्थान पन्द्रह हैं, उनमें आठ अधिक करने पर सक्रमस्थान तेईस और जो बधस्थान दस है, उनमे आठ अधिक करने पर पतद्ग्रहस्थान अठारह होते है। जिसका विस्तार से स्पष्टीकरण यथाप्रसग आगे किया जा रहा है।

इस प्रकार सामान्य से सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो की सख्या का सकेत करने के बाद अब प्रत्येक कर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो की सख्या बतलाते है।

ज्ञानावरण, अन्तराय कर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थान

ज्ञानावरण और अन्तराय इनका पाच-पाच प्रकृति रूप एक-एक सत्तास्थान और एक-एक सक्रमस्थान है तथा पाच-पाच प्रकृति रूप एक-एक ही बधस्थान और एक-एक ही पतद्ग्रहस्थान है। इसका कारण यह है कि बध और सत्ता मे से इनकी पाचो प्रकृतिया एक साथ ही व्युच्छिन्न होती है। बध मे से एक साथ जाने वाली होने से

पाचो प्रकृतिया एक साथ पतद्ग्रहरूप और सत्ता मे से पाचो के एक साथ व्युच्छिन्न होने से सक्रम करने वाली भी पाचो घटित होती है। वह इस प्रकार—

ज्ञानावरण की पाचो प्रकृतियो का परस्पर सक्रम होता है। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनपर्यायज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण मे सक्रमित होता है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरण भी मतिज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनपर्यायज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण मे सक्रमित होता है। इसी तरह अवधिज्ञानावरणादि के लिये भी और अतरायकर्म की प्रकृतियो के लिये भी समझ लेना चाहिये कि उनका भी परस्पर एक दूसरे मे सक्रमण होता है। क्योकि दसवे गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त वे सभी प्रकृतिया निरन्तर बधती रहती है और बारहवे गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त वे निरतर सत्ता मे रहती है। ध्रुवबधिनी होने से ये प्रत्येक प्रकृतिया एक साथ पतद्ग्रह रूप से घटित होती हैं तथा ध्रुवसत्ता होने से पतद्ग्रह प्रकृति होने तक एक साथ सक्रमित होने वाली भी होती है। इस प्रकार इन दोनो कर्मों का पाच-पाच प्रकृति रूप एक ही पतद्ग्रहस्थान और पाच-पाच प्रकृति रूप एक सक्रमस्थान है।

दर्शनावरणकर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। अतएव शेष कर्मों के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो की सख्या बतलाते हैं।

वेदनीय और गोत्रकर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थान

वेदनीय और गोत्र कर्म इन दोनो मे से प्रत्येक कर्म के दो-दो सत्तास्थान हैं। वे इस प्रकार—दो प्रकृति रूप और एक प्रकृति रूप। यद्यपि वेदनीय और गोत्र कर्म का दो प्रकृति रूप सत्तास्थान है, लेकिन दो प्रकृतियो का एक साथ सक्रम नही होने से एक-एक प्रकृति रूप एक-एक सक्रमस्थान ही होता है। क्योकि परावर्तमान होने से गोत्र और वेदनीय की दो-दो प्रकृतियो मे से मात्र एक-एक का ही बध

होता है। जिससे बधने वाली प्रकृति पतद्ग्रहरूप है और नही बधने वाली प्रकृति सक्रम करने वाली है। यदि दोनो प्रकृतिया एक साथ बधती होती तो ज्ञानावरण की तरह परस्पर सक्रम हो सकता था, अर्थात् दोनो प्रकृतिया पतद्ग्रहरूप और सक्रमरूप घटित हो सकती थी, किन्तु वैसा नही होने से एक-एक प्रकृति रूप ही सक्रमस्थान समझना चाहिये।

वह इस प्रकार—सातावेदनीय और असातावेदनीय इन दोनो की सत्ता वाले सातावेदनीय के बधक मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान पर्यन्त के जीव जब सातावेदनीय का बध करते है तब पतद्ग्रहरूप उस प्रकृति मे असातावेदनीय को सक्रमित करते है। इसी प्रकार साता-असातावेदनीय इन दोनो की सत्ता वाले असातावेदनीय के बधक मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसयत पर्यन्तवर्ती जीव जब असातावेदनीय बाधे तब पतद्ग्रह रूप उस प्रकृति मे सातावेदनीय को सक्रमित करते है। इस प्रकार साता-असातावेदनीय का एक प्रकृति-रूप सक्रमस्थान और एक प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान होता है।

उच्चगोत्र के बधक मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसपराय पर्यन्तवर्ती जीव जब उच्चगोत्र का बध करे तब पतद्ग्रह रूप उस प्रकृति मे नीच-गोत्र सक्रमित करते है और उच्च-नीच दोनो की सत्ता वाले नीचगोत्र के बधक मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती जीव जब नीचगोत्र का बध करे तब बधने वाली उस प्रकृति मे उच्चगोत्र सक्रमित करते है। इस प्रकार गोत्रकर्म मे भी एक सक्रमस्थान और एक पतद्ग्रह-स्थान सभव है।

आयुकर्म की प्रकृतियो मे परस्पर सक्रम नही होता है। अत उनमे पतद्ग्रहादित्व भी सभव नही है।

नामकर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो का पृथक् से आगे विचार किया जायेगा। अतएव अब मोहनीयकर्म के सक्रम और पतद्-ग्रह स्थानो का विचार करते है।

मोहनीयकर्म के सक्रमस्थान

मोहनीयकर्म के पन्द्रह सत्तास्थान इस प्रकार है—अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक। किन्तु सक्रमस्थान तेईस हैं। वे इस प्रकार—एक, दो, तीन, चार, पाच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस प्रकृतिक।

यद्यपि सत्तास्थान मे अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक का भी ग्रहण किया है, लेकिन सक्रम मे नही होने से उन दोनो सत्तास्थानो को सक्रमस्थानो में नही गिना है। इसका कारण यह है कि अट्ठाईस की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व-मोहनीय का पतद्ग्रह है, इसलिये मिथ्यात्व के सिवाय शेष सत्ताईस प्रकृतिया ही सक्रमित होती है, किन्तु अट्ठाईस सक्रात नही होती है। उनमे से चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतिया चारित्रमोहनीय मे परस्पर सक्रमित होती हैं और मिथ्यात्वमोहनीय मे मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय सक्रमित होती है। क्योकि दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीय का परस्पर सक्रम नही होता है।

इसी प्रकार अनन्तानुबधि का विसयोजक चौबीस की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय मिश्र और मिथ्यात्व मोहनीय की पतद्ग्रह होने से उसके बिना शेष तेईस प्रकृतिया ही सक्रमित होती हैं, चौबीस नही। इसलिये चौबीस प्रकृति रूप सक्रमस्थान नही है तथा पन्द्रह, सोलह और सत्रह प्रकृतिक रूप तीन सक्रमस्थान नही होने का कारण जब सभी सक्रमस्थानो का विचार करेंगे, उससे ज्ञात होगा, अतएव उनको यहाँ स्पष्ट नही किया है।

अब शेष सक्रमस्थानो का विचार करते है—

सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वलना होने के पश्चात् सत्ताईस की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व मिश्रमोहनीय का पतद्ग्रह होने

मे, उसके विना शेप छब्बीस प्रकृतिया सक्रमित होती है तथा मिश्र-मोहनीय की उद्‌वलना होने के वाद छब्बीस प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतिया सक्रमित होती हैं, अथवा छब्बीस की सत्ता वाले अनादि मिथ्यादृष्टि के भी पच्चीस प्रकृतिया सक्रान्त होती है। मिथ्यात्वमोहनीय का सक्रम नही होता है। कारण यह है कि वह चारित्रमोहनीय मे सक्रमित नही होती है। क्योकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के परस्पर सकम का अभाव है।

अथवा अट्‌ठाईस प्रकृति की सत्ता वाले औपशमिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात् आवलिका वीतने के वाद सम्यक्त्व-मोहनीय मे मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का सक्रम होता है, जिससे सम्यक्त्वमोहनीय पतद्‌ग्रह है, अतएव उसको अलग करने पर शेप सत्ताईस प्रकृतिया सक्रम मे होती है तथा वही अट्‌ठाईस प्रकृति की सत्ता वाला और आवलिका के अन्तर्वर्ती अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त हुए जिसे आवलिका वीती नही ऐसे औपशमिक सम्यग्दृष्टि के मिश्र-मोहनीय सम्यक्त्वमोहनीय मे सक्रमित नही होती है। इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व के अनुरूप विशुद्धि की सामर्थ्य द्वारा मिथ्यात्व के पुद्‌गल ही मिश्रमोहनीय रूप परिणाम को प्राप्त होते है यानि मिश्रमोहनीय रूप मे परिणमित हुए है। क्योकि अन्य प्रकृति रूप मे परिणमन करना ही सक्रम कहलाता है। जिस समय जिसका अन्य प्रकृति रूप मे परिणमन होता है, उस समय से लेकर एक आवलिका पर्यन्त वे दलिक सभी करणो के अयोग्य होते है, अर्थात् उनमे किसी भी करण की प्रवृत्ति नही होती है।

यहाँ सम्यक्त्व प्राप्त होने के वाद आवलिका के अन्दर मिश्र-मोहनीय की सक्रमावलिका पूर्ण नही होने से उसके दलिक सम्यक्त्व-मोहनीय मे सक्रमित नही होते हैं, मात्र मिथ्यात्वमोहनीय के ही सक्रमित होते है। सम्यक्त्वमोहनीय का तो सम्यक्त्वी के सक्रम होता

ही नही है। इसलिये उन दोनो को अलग करने पर शेप छव्वीस प्रकृतियो का ही सक्रम होता है।

चौवीस की सत्ता वाला सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व से पतन कर मिथ्यात्व मे जाने पर भी और वहाँ पुन अनन्तानुवधिकपाय का वध करता है, लेकिन सत्ताप्राप्त उस कपाय को सक्रमित नही करता है। इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व से पतित हुआ अनन्तानुबधि का विसयोजक जीव अनन्तानुवधि का वध पुन प्रारभ करता है, परन्तु जिस समय वध करता है, उस समय से लेकर एक आवलिका पर्यन्त उसमे कोई भी करण लागू न पडने से मिथ्यात्वगुणस्थान मे बधावलिका पर्यन्त अनन्तानुवधि का सक्रम नही होता है और मिथ्यात्वमोहनीय मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व-मोहनीय की पतद्ग्रह है, इसलिये अनन्तानुवधि और मिथ्यात्वमोहनीय को पृथक् करने पर शेष तेईस प्रकृतियो का सक्रम होता है।

इस प्रकार विचार करने से चौवीस प्रकृतिक सक्रमस्थान का अभाव है तथा चौबीस की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि के क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते जव मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय होता है तब सम्यक्त्व-मोहनीय के सिवाय बाईस प्रकृतिया सक्रमित होती है। यहाँ सत्ता मे तेईस प्रकृतिया होती है।

अथवा उपशमश्रेणि मे वर्तमान औपशमिक सम्यग्दृष्टि जव चारित्रमोहनीय का अतरकरण करता है तव उसके सज्वलन लोभ का सक्रम नही होता है। इसका कारण यह है कि अन्तरकरण करता है तब पुरुषवेद और सज्वलनचतुष्क का अनानुपूर्वी-उत्क्रम से सक्रम नही होता है तथा अनन्तानुवधि का क्षय अथवा सर्वोपशम किया गया होने से उसका सक्रम होता नही है और सम्यक्त्वमोहनीय मिश्र-मोहनीय तथा मिथ्यात्वमोहनीय की पतद्ग्रह है, अतएव उसका भी सक्रम नही होता है। जिससे सज्वलन लोभ, अनन्तानुवधिचतुष्क और सम्यक्त्वमोहनीय इन छह प्रकृतियो के सिवाय शेप वाईस प्रकृतिया सक्रमित होती है।

उपशमश्रेणि मे वर्तमान उसी उपशम सम्यग्दृष्टि के नपुसकवेद का उपशम हो तब इक्कीस प्रकृतियो का सक्रम होता है। अथवा क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते हुए बाईस की सत्ता वाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वमोहनीय को कही प८ सक्रमित नही करता है, जिससे उसके इक्कीस का सक्रमस्थान होता। अथवा क्षपकश्रेणि मे वर्तमान क्षपक के जहाँ तक आठ कपाय का क्षय नही होता है, वहाँ तक इक्कीस प्रकृति का सक्रम होता है।

उपशमश्रेणि मे वर्तमान उपशम सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियो मे से जब स्त्रीवेद का उपशम होता है तब बीस प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा उपशमश्रेणि का माडने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि चारित्रमोहनीय का जब अन्तरकरण करता है तब पूर्व मे कही गई युक्ति मे सज्वलन लोभ का सक्रम नही होने से उसके सिवाय बीस प्रकृतिया सक्रमित होती है।

तत्पश्चात् नपुसकवेद का जब उपशम हो तब उन्नीस और स्त्रीवेद का उपशम हो तब उपशमश्रेणि में वर्तमान उसी क्षायिक सम्यग्दृष्टि के अठारह प्रकृतिया सक्रम मे होती है।

उपशमश्रेणि मे वर्तमान औपशमिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त बीस मे से जब छह नोकपाय का उपशम होता है तब शेप चौदह प्रकृतिया, उसके बाद उनमे से पुरुपवेद उपशमित हो तब तेरह प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा क्षपकश्रेणि मे वर्तमान क्षपक के पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियो मे से आठ कपाय का क्षय हो तब तेरह प्रकृतिया सक्रात होती है, उसी के जब चारित्रमोहनीय का अन्तरकरण करे तब बारह प्रकृतियो का सक्रम होता है। क्योंकि अन्तरकरण करने के बाद चारित्रमोहनीय की प्रकृतियो का क्रम पूर्वक सक्रम होने से सज्वलन लोभ का सक्रम नही होता है। अथवा उपशमश्रेणि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त अठारह प्रकृतियो मे से छह नोकपायो का उपशम हो तब शेप बारह प्रकृतिया सक्रमित होती है।

तत्पश्चात् जब पुरुपवेद का उपशम हो तब उसी के ग्यारह प्रकृतिया सक्रम मे होती हे। अथवा क्षपक के पूर्वोक्त बारह मे से

नपु सकवेद का क्षय हो तव शेष ग्यारह् प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा उपशमश्र`णि मे वर्तमान उपशम सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियो में से अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम हो तव ग्यारह प्रकृतिया सक्रम मे होती हैं।

क्षपकश्र`णि मे वर्तमान क्षपक के पूर्वोक्त ग्यारह मे से स्त्रीवेद का क्षय हो तव दस प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा उपशम-श्र`णि मे वर्तमान उपशम सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतियो में से सज्वलन क्रोध उपशात हो तब शेष दस प्रकृतिया सक्रम मे होती है।

उपशमश्र`णि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त ग्यारह मे से अप्रत्याख्यानावरण एव प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम हो तब्र शेष नौ प्रकृतिक तथा उसके बाद उसी के सज्वलन क्रोध का उपशम हा तब आठ प्रकृतिक सक्रमस्थान होता है। अथवा उपशम-श्र`णि मे वर्तमान उपशम सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त दस में से अप्रत्या-ख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हो तव शेष आठ प्रकृतिया सक्रात होती है। उसी के सज्वलन मान का उपशम हो तब सात प्रकृतिया सक्रमित होती हैं।

उपशमश्र`णि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त आठ मे से अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हो तब शेष छह प्रकृतिया सक्रमित होती है। उसी के सज्वलन मान का उपशम हो तब शेष पाच प्रकृतिया सक्रम में होती है। अथवा उपशमश्र`णि मे वर्तमान औपशमिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त सात में से अप्रत्या-ख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण माया उपशमित हो तब शेष पाच प्रकृतिया सक्रमित होती है।

उसी के जब सज्वलन माया उपशमित हो तव चार प्रकृतिया सक्रम में होती है। अथवा क्षपक के पूर्वोक्त दस मे से छह नोकषाय का क्षय हो तव शेष चार प्रकृतिया सक्रमित होती हैं। उसी के पुरुषवेद का क्षय हो तव तीन प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा

उपशमश्रेणि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त पाच मे से अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो तब शेष तीन प्रकृतिया सक्रमित होती है। उसी के सज्वलन माया उपशमित हो तब सज्वलन लोभ पतद्ग्रह हो वहां तक शेष दो लाभ (अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण लोभ)सक्रम मे होते है। अथवा उपशमश्रेणि मे वर्तमान उपशम सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त चार मे से अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप लोभ उपशात हो तब शेष मिश्र और मिथ्यात्व मोहनीय रूप दो प्रकृतिया सक्रम में होती है। अथवा क्षपक के पूर्वोक्त तीन प्रकृतियो मे से सज्वलन क्रोध का क्षय हो तब दो प्रकृतिया सक्रमित होती है। उसी के सज्वलन मान का क्षय हो तब एक सज्वलन माया सक्रमित होती है।

इस प्रकार विचार करने पर अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृति रूप सक्रमस्थान सभव नही होने से उनका निषेध किया है। उनके सिवाय शेष तेईस सक्रमस्थान जानना चाहिये।

सुगमता से समझने के लिये श्रेणीगत सक्रमस्थानो का दिग्दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

घटित होने के स्थान	कितने	कितने प्रकृतिक
क्षायिकसम्यक्त्व उपशमश्रेणि मे ही	४	१९,१८,९,६
उपशमसम्यक्त्व उपशमश्रेणि मे ही	२	१४,७
क्षपकश्रेणि मे ही	१	१,
तीनो श्रेणियो मे	२	११,२
क्षपकश्रेणि तथा उपशमसम्यक्त्व उपशमश्रेणि इन दोनो मे	४	१३,१०,४,२
क्षपकश्रेणि तथा क्षायिक सम्यक्त्व उपशमश्रेणि इन दोनो मे	२	१२,३
उपशमसम्यक्त्व, उपशमश्रेणि क्षायिकसम्यक्त्व	३	१८,५,२०

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के सक्रमस्थानो का विचार करने के बाद अब पतद्ग्रहस्थानो का निर्देश करते है।

मोहनीयकर्म के पतद्ग्रहस्थान

पतद्ग्रहस्थान आधारभूत प्रकृतियो के समुदाय को कहते है। अतएव मोहनीयकर्म के पतद्ग्रहस्थानो का कथन करने के लिये पहले बधस्थानो को बतलाते है कि बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक, ये मोहनीयकर्म के दस बधस्थान है। किन्तु पतद्ग्रहस्थान इन दस बधस्थानो से आठ अधिक होने से अठारह है। वे इस प्रकार—आठ, बारह, सोलह, वीस ये चार तथा गाथा मे वीसा के बाद आगत 'य, च' शब्द अनुक्त अर्थ का समुच्चायक होने से तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृतिक ये छह कुल मिलाकर दस स्थान पतद्ग्रह के विषयभूत न होने से शेष अठारह पतद्ग्रहस्थान होते है। अर्थात् एक, दो, तीन, चार, पाच, छह, सात, नौ, दस, ग्यारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, इक्कीस और बाईस प्रकृतिक, ये अठारह पतद्ग्रहस्थान हैं।

इन पतद्ग्रहस्थानो मे कौन और कितनी प्रकृतिया सक्रमित होती है, अब इसका विचार करते है—

अट्ठाईस की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की पतद्ग्रह होने से, उसके सिवाय शेष सत्ताईस प्रकृतिया मिथ्यात्व, सोलह कषाय तथा तीन वेद मे से बधने वाला कोई एक वेद, युगलद्विक मे से बधने वाला एक युगल, भय और जुगुप्सा रूप बाईस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

सम्यक्त्व की उद्वलना करे तब सत्ताईस की सत्ता वाले उसी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व ये मिश्रमोहनीय की पतद्ग्रह होने से उसके विना शेष छब्बीस प्रकृतिया पूर्वोक्त बाईस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

मिश्रमोहनीय की उद्‌वलना करे तब छब्बीस की सत्ता वाले उसी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्वमोहनीय में किसी भी प्रकृति का सक्रम नही होने से वह किसी की पतद्‌ग्रह नही, इसलिये पूर्वोक्त बाईस मे से उसे कम करने पर शेष इक्कीस प्रकृति के समुदाय रूप पतद्‌ग्रह मे पच्चीस प्रकृतिया सक्रमित होती है। अथवा छब्बीस प्रकृति की सत्ता वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व किसी भी प्रकृति मे सक्रमित नही होता है, एव उसमे भी अन्य कोई प्रकृति सक्रमित नही होती है, इसलिये आधार-आधेयभाव रहित उस मिथ्यात्वमोहनीय को दूर करने पर शेष पच्चीस प्रकृतिया इक्कीस प्रकृतियो मे सक्रमित होती है।

चौबीस की सत्ता वाला कोई सम्यग्दृष्टि गिरकर मिथ्यात्व में जाये, वहाँ यद्यपि मिथ्यात्व रूप हेतु के द्वारा अनन्तानुबधिकषाय को पुन बाधता है, लेकिन वह बधावलिका पर्यन्त सकल करण के अयोग्य होने से सत्ता मे होने पर भी उसको सक्रमित नही करता है और मिथ्यात्व-मोहनीय सम्यक्त्व एव मिश्र मोहनीय की पतद्‌ग्रह है। इसलिये अनन्तानुबधिचतुष्क और मिथ्यात्वमोहनीय को छोडकर शेष तेईस प्रकृतियो को पूर्वोक्त बाईस प्रकृतियो मे सक्रमित करता है।

(इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के बाईस प्रकृतिक पतद्‌ग्रह मे सत्ताईस, छब्बीस और तेईस प्रकृति के समूह रूप तीन सक्रमस्थान सक्रमित होते) है और इक्कीस के पतद्‌ग्रह मे पच्चीस प्रकृतिया सक्रान्त होती है। शेष सक्रमस्थान या पतद्‌ग्रहस्थान मिथ्यादृष्टि के नही होते है।

सासादनसम्यग्दृष्टि के 'दूसरा और तीसरा गुणस्थान वाला दर्शनत्रिक को सक्रमित नही करता है'[1] ऐसा सिद्धान्त होने से दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृतियो के सक्रम का अभाव है। इसलिये यहाँ सदैव इक्कीस के पतद्‌ग्रह मे पच्चीस प्रकृतिया ही सक्रमित होती है।

---

१ दुइयतइज्जा न दसणतिगपि। —सक्रमकरण गाथा ३

सम्यग्मिथ्यादृष्टि के भी दर्शनमोहत्रिक प्रकृतियो के सक्रम का अभाव होने से अट्ठाईस की सत्ता वाले अथवा सम्यक्त्वमोह के विना सत्ताईस की सत्ता वाले मिश्रदृष्टि के पच्चीस प्रकृतिया और अनन्तानुबधि रहित चौबीस की सत्ता वाले मिश्रदृष्टि के इक्कीस प्रकृतिया बारह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा और युगलद्विक में से किसी एक युगलरूप बधती हुई सत्रह प्रकृतियो मे सक्रमित होती है।

अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्तविरत इन चार गुणस्थानो मे सक्रमस्थान समान होने से इनके एक साथ ही पतद्ग्रहस्थान कहते हैं।

अविरत आदि चार गुणस्थानो में औपशमिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व प्राप्ति के प्रथम समय से लेकर आवलिका कालपर्यन्त सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय पतद्ग्रह रूप ही होती है। इसलिये शेष छब्बीस प्रकृतिया अविरतसम्यग्दृष्टि के बारह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा और युगलद्विक मे से एक युगल रूप बधती हुई सत्रह तथा सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय कुल उन्नीस प्रकृतियो के समुदाय रूप पतद्ग्रह में, देशविरति के प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, सज्वलनचतुष्क, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अन्यतर युगल, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय रूप पन्द्रह प्रकृतिक पतद्ग्रह मे और प्रमत्त-अप्रमत्तसयत के सज्वलनचतुप्क, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अन्यतर युगल, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय रूप ग्यारह प्रकृतिक पतद्ग्रह में सक्रमित होती है।

उन्हीअविरत सम्यग्दृष्टि आदि के उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति से आवलिका पूर्ण होने के वाद मिश्रमोहनीय सक्रम और पतद्ग्रह दोनो मे होती है। क्योकि मिश्रमोहनीय की सक्रमावलिका व्यतीत हो गई है, जिससे वह करणसाध्य हो गई है। इसलिये सत्ताईस प्रकृतिया पूर्वोक्त उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारह रूप तीन पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमित होती है।

अनन्तानुबधि की उद्वलना होने के वाद चौवीस की सत्ता वाले

तत्पश्चात् पुरुपवेद की प्रथम स्थिति समयन्यून दो आवलिका शेप रहे तव वह पतद्ग्रह रूप मे नही रहता है। क्योकि प्रथमस्थिति की समयन्यून दो और तीन आवलिका शेप रहे तव अनुक्रम से पुरुपवेद और सज्वलनचतुष्क मे पतद्ग्रहरूपता नही रहती है, ऐसा नियम है।[1] इसलिये पूर्वोक्त सात प्रकृतियो मे से पुरुपवेद को पृथक् करने पर शेप छह के पतद्ग्रहस्थान मे वीस प्रकृति सक्रमित होती हैं। तदनन्तर जव छह नोकषाय उपशमित हो तव शेप चौदह प्रकृतिया उक्त छह प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है। छह मे चौदह प्रकृतिया समयोन दो आवलिका पर्यन्त सक्रमित होती है। इसका कारण यह है कि जिस समय छह नोकपाय उपशमित होती हैं, उस समय पुरुषवेद का बधविच्छेद होता है, तव समयन्यून दो आवलिकाकाल का वधा हुआ दलिक ही अनुपशमित शेष रहता है। उसका उपशम और सक्रम समयन्यून दो आवलिकाकाल पर्यन्त होता है, इसीलिये कहा है कि छह मे चौदह प्रकृतिया समयोन दो आवलिका तक सक्रमित होती है। पुरुषवेद का उपशम होने के वाद शेष तेरह प्रकृतिया छह के पतद्ग्रहस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रात होती है।

तदनन्तर सज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेष रहे तव सज्वलन क्रोध भी पतद्ग्रह नही होता है, इसलिये पूर्वोक्त छह मे से उसे कम करने पर शेप पाच के पतद्ग्रहस्थान में वही तेरह प्रकृतिया सक्रमित होती है। तत्पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध उपशमित हो तव शेप ग्यारह प्रकृतिया पाच के पतद्ग्रहस्थान मे समयोन दो आवलिका पर्यन्त सक्रमित होती हैं। इसका कारण पुरुषवेद के लिये जो पूर्व मे कहा जा चुका है उसी प्रकार समझ लेना चाहिये। तत्पश्चात् सज्वलन क्रोध उपशमित हो तव शेप दस प्रकृतिया उसी पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रात होती है।

---

१ दुसुतिसु आवलियासु।   —सक्रमकरण गाथा ७

तदनन्तर संज्वलन मान की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेष रहे तब संज्वलन मान भी पतद्ग्रह नहीं होता है। इसलिये पाच में से उसे अलग करने पर शेष चार के पतद्ग्रहस्थान में दस प्रकृतिया समय न्यून दो आवलिका पर्यन्त संक्रमित होती है। उसके बाद अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण मान उपशमित हो तब शेष आठ प्रकृतिया चार के पतद्ग्रहस्थान में संक्रमित होती है। संज्वलन मान उपशमित हो तब शेष सात प्रकृतिया अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त चार के पतद्ग्रहस्थान में संक्रमित होती हैं।

तदनन्तर संज्वलन माया की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेष रहे तब संज्वलन माया भी पतद्ग्रह नहीं होती है, इसलिये चार में से उसे दूर करने पर शेष तीन के पतद्ग्रहस्थान में पूर्वोक्त सात प्रकृतिया संक्रमित होती हैं। वे समय न्यून दो आवलिका काल जाने तक संक्रमित होती है। तत्पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण माया उपशमित हो तब शेष पाच प्रकृतिया तीन के पतद्ग्रहस्थान में संक्रांत होती है। वे तब तक ही संक्रमित होती हैं यावत् समय न्यून दो आवलिका काल जाये। उसके बाद संज्वलन माया उपशमित हो तब शेष चार प्रकृतिया अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तीन के पतद्ग्रहस्थान में संक्रमित होती हैं।

तदनन्तर अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के चरम समय में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण लोभ उपशमित हो तब शेष मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय ये दो प्रकृतिया सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इन दो प्रकृतियो में संक्रमित होती हैं। यहा यह समझ लेना चाहिये कि नौवें गुणस्थान का समय न्यून दो आवलिका काल शेष रहे, उसी समय में संज्वलन लोभ पतद्ग्रह नहीं होता है, तभी से दो प्रकृतियो का दो प्रकृतियों में संक्रम होता है। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का परस्पर संक्रम नहीं होने से मिश्र और मिथ्यात्व मोहनीय का लोभ में संक्रम नहीं होता है, जिससे दो का दो में संक्रम होता है। उसमें मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिश्र

मोहनीय मे और मिश्रमोहनीय सम्यक्त्वमोहनीय मे सक्रमि
होती है।

इस प्रकार से उपशम सम्यग्दृष्टि की उपशमश्रेणि मे सक्रम औ
पतद्ग्रह विधि जानना चाहिये। अव उपशमश्रेणि मे वर्तमान क्षायि
सम्यग्दृष्टि की सक्रम और पतद्ग्रह विधि का निरूपण करते है।

उपशमश्रेणि मे वर्तमान क्षायिकसम्यग्दृष्टि की सक्रम-पतद्ग्रह वि

अनन्तानुबधिचतुष्क और दर्शनत्रिक का क्षय होने के ब
इक्कीस की सत्ता वाला जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणि
स्वीकार करता है, उसके नौवे गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पुरुष
और सज्वलनचतुष्क रूप पाच के पतद्ग्रहस्थान मे इक्कीस प्रकृति
सक्रमित होती है। आठवे गुणस्थान मे तो उसे नौ के पतद्ग्रहस्थ
मे इक्कीस प्रकृतिया सक्रमित होती है, यह समझना चाहिये। न
गुणस्थान मे जब अन्तरकरण करे तब सज्वलन लोभ का सक्रम न
होने से उसके सिवाय शेष वीस प्रकृतिया पाच के पतद्ग्रहस्थान
अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रमित होती है, तत्पश्चात् नपु सकवेद उपशा
हो तब उन्नीस प्रकृतिया अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थ
मे सक्रमित होती है। उसके बाद स्त्रीवेद का उपशम हो तव अठा
प्रकृतिया उसी पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर
सक्रमित होती हैं।

तत्पश्चात् पुरुषवेद की प्रथम स्थिति समय न्यून दो आवलि
शेष रहे तव वह पतद्ग्रह नही होता है, इसलिये उसके सिवाय
चार के पतद्ग्रहस्थान मे अठारह प्रकृतिया सक्रात होती है। उ
वाद छह नोकपाय का उपशम हो, तब शेष बारह प्रकृतिया च
प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे समय न्यून दो आवलिका पर्यन्त सक्
होती हैं। तदनन्तर पुरुपवेद का उपशम होने पर ग्यारह प्रकृति
चार के पतदग्रहस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रमित होती है।

इसके पश्चात् सज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेष रहे तब वह भी पतद्ग्रह नही रहता है, अत चार मे से उसे दूर करने पर शेष तीन के पतद्ग्रहस्थान मे पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतिया सक्रमित होती है और वे भी तब तक सक्रमित होती है, यावत् समय न्यून दो आवलिका काल जाये। उसके बाद अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये दोनो क्रोध उपशात हो तव नौ प्रकृतिया पूर्वोक्त तीन के पतद्ग्रहस्थान मे समय न्यून दो आवलिका काल पर्यन्त सक्रात होती है। तत्पश्चात् सज्वलन क्रोध उपशमित हो तव आठ प्रकृतिया अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तीन के पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

तदनन्तर सज्वलन मान की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेप रहे तव सज्वलन मान भी पतद्ग्रह नही होता है, अत तीन मे से उसे निकालने पर शेप दो के पतद्ग्रह में पूर्वोक्त आठ प्रकृतिया समय न्यून दो आवलिका काल पर्यन्त सक्रमित होती है। उसके वाद अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये दोनो मान उपशमित हो तव छह प्रकृतिया दो के पतद्ग्रहस्थान मे समय न्यून दो आवलिका पर्यन्त सक्रमित होती है। उसके वाद सज्वलन मान का उपशमन हो तव पाच प्रकृतिया दो के पतद्ग्रहस्थान मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रमित होती है।

तत्पश्चात् सज्वलन माया की प्रथम स्थिति समय न्यून तीन आवलिका शेप रहे तव सज्वलन माया भी पतद्ग्रह रूप नही रहती है, इसलिये दो मे से उसे कम करने पर शेप सज्वलन लोभ रूप पतद्ग्रह स्थान में वे पाच प्रकृतिया समय न्यून दो आवलिका काल पर्यन्त सक्रमित होती है। उसके वाद अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो तव शेप तीन प्रकृतिया सज्वलन लोभ मे सक्रात होती है। वे तव तक सक्रमित होती है यावत् समय न्यून दो आवलिका काल जाये।

तत्पश्चात् सज्वलन माया उपशमित हो तव अप्रत्याख्यानावरण,

प्रत्याख्यानावरण ये दोनो लोभ सज्वलन लोभ मे अन्तमुंहूर्त पर्यन्त सक्रमित होते हैं। अर्थात् जब तक सज्वलन लोभ पतद्ग्रह रूप हो तब तक उपर्युक्त दोनो लोभ सक्रमित होते हैं। नौवे गुणस्थान का समय न्यून दो आवलिका काल शेष रहे, यानि सज्वलन लोभ पतद्ग्रह रूप नही रहता तब से दोनो लोभ का सक्रम नही होता है किन्तु उपशम ही होता है और नौवे गुणस्थान के चरम समय मे ये दोनो लोभ सर्वथा शात हो जाते है।

तत्पश्चात् अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान के चरम समय में उक्त दोनो लोभो के उपशात हो जाने से दसवें गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का किसी भी प्रकृति में सक्रम नही होता है।

इस प्रकार उपशमश्रेणि में वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा सक्रम-पतद्ग्रहविधि जानना चाहिये। अब क्षपकश्रेणि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा सक्रम और पतद्ग्रह विधि का विचार करते है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणि मे वर्तमान की सक्रम-पतद्ग्रहविधि

इक्कीस प्रकृतियो की सत्ता वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणि स्वीकार करता है।

अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान को प्राप्त हुए उसके पुरुषवेद और सज्वलनचतुष्क रूप पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में इक्कीस प्रकृतिया सक्रमित होती हैं। तत्पश्चात् आठ कषाय का क्षय होने पर तेरह प्रकृतिया अन्तमुंहूर्त पर्यन्त पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में सक्रान्त होती है। उसके बाद अन्तरकरण होने पर सज्वलन लोभ का सक्रम नही होता है, इसलिये शेष बारह प्रकृतिया उसी पाच प्रकृतिक पतद्ग्रह में अन्तमुंहूर्त पर्यन्त सक्रमित होती हैं। उसके बाद नपुसकवेद का क्षय होने पर ग्यारह प्रकृतिया और स्त्रीवेद का क्षय होने पर दस प्रकृतिया अन्तमुंहूर्त पर्यन्त उसी पाच प्रकृतिक पतद्ग्रह मे सक्रमित होती है।

तत्पश्चात् पुरुषवेद की प्रथम स्थिति समय न्यून दो आवलिका शेष रहने पर वह पतद्ग्रह नही रहता है, इसलिये पाच मे से उसे कम करने पर शेष चार प्रकृतिक पतद्ग्रह मे वही दस प्रकृतिया समय न्यून दो आवलिका पर्यन्त सक्रमित होती है। उसके बाद छह नोकषायो का क्षय होने पर शेष चार प्रकृतिया समयोन दो आवलिका पर्यन्त उसी चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

जिस समय पुरुषवेद का क्षय हुआ उसी समय सज्वलन क्रोध भी पतद्ग्रह नही होता है। इसलिये उसके सिवाय शेष मान, माया लोभ इन तीन प्रकृतियो मे क्रोध, मान, माया ये तीन प्रकृतिया अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रात होती है।

सज्वलन क्रोध का बधविच्छेद होने के बाद समय यून दो आवलिका काल मे सज्वलन क्रोध का क्षय होता है और उसी समय सज्वलन मान पतद्ग्रह रूप नही रहता है, जिससे शेष दो प्रकृतियो का दो प्रकृतियो मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रम होता है। सज्वलन मान का बधविच्छेद होने के बाद समयोन दो आवलिका काल मे सज्वलन मान का भी सत्ता मे से नाश हो जाता है और उसी समय सज्वलन माया की भी पतद्ग्रहता नही रहती है, जिससे एक सज्वलन लोभ रूप पतद्ग्रहस्थान मे सज्वलन माया रूप एक प्रकृति अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रमित होती है। सज्वलन माया का बधविच्छेद होने के बाद समय न्यून दो आवलिकाकाल मे सज्वलन माया का भी सत्ताविच्छेद होता है, तब उसके वाद कोई प्रकृति किसी प्रकृति मे सक्रमित नही होती है।

इस प्रकार से क्षपकश्रेणि मे वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा सक्रम और पतद्ग्रह विधि जानना चाहिये।

अव पूर्वोक्त कर्मप्रकृतियो के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो की साद्यादि प्ररूपणा करते है।

सक्रम-पतद्‌ग्रहस्थानो की साद्यादि प्ररूपणा

सक्रमण पडिग्गहया पढमतइज्जट्‌ठमाणचउभेया ।
इगवीसो पडिग्गहगो पणुवीसो सकमो मोहे ॥१३॥

शब्दार्थ—**सकमण पडिग्गहया**—सक्रमणता और पतद्‌ग्रहता, **पढमतइज्जट्‌ठमाण**—पहले, तीसरे और आठवें कर्म की, **चउभेया**—चार प्रकार की है, **इगवीसो**—इक्कीस प्रकृति रूप, **पडिग्गहगो**—पतद्‌ग्रह, **पणुवीसो**—पच्चीस प्रकृति रूप, **सकमो**—सक्रमस्थान, **मोहे**—मोहनीयकर्म मे ।

गाथार्थ—पहले, तीसरे और आठवे कर्म की सक्रमणता और पतद्‌ग्रहता चार प्रकार की है और मोहनीयकर्म मे इक्कीस प्रकृति रूप पतद्‌ग्रह और पच्चीस प्रकृति रूप सक्रम भी चार प्रकार का है ।

विशेषार्थ—गाथा मे ज्ञानावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म के सभी प्रकृतिस्थानो के सक्रम तथा पतद्‌ग्रह के मादि आदि चारो भगो को तथा मोहनीयकर्म के इक्कीस प्रकृतिक पतद्‌ग्रहस्थान एव पच्चीस प्रकृतिक सक्रमस्थान के भगो को बतलाया है । जिसका विस्तार के साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है ।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की प्रकृतियो के सक्रम और पतद्‌ग्रह स्थानो के साद्यादि भग

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म में सक्रमत्व और पतद्‌ग्रहत्व सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है । जो इम प्रकार—उपशातमोहगुणस्थान मे इन दोनो कर्मों का बध नही होने से पतद्‌ग्रहत्व नही है और पतद्‌ग्रह नही होने से सक्रमत्व भी नही होता है । वहाँ से पतन करने पर दोनो प्रवर्तित होते है, इसलिये सादि हैं । उस स्थान को जिन्होने प्राप्त नही किया उनके अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के सक्रम तथा पतद्‌ग्रह ये दोनो अध्रुव-सात है ।

वेदनीयकर्म के साद्यादि भंग

तीसरे वेदनीयकर्म की दो प्रकृतियो मे से अवध्यमान एक प्रकृति रूप सक्रमस्थान और वध्यमान एक प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान सामान्यत सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त होता है। उससे आगे उपशातमोह आदि गुणस्थानो मे सापरायिक वध का अभाव होने से सक्रम अथवा पतद्ग्रह दोनो मे से कोई भी स्थान नही होता है। कषायरूप वधहेतु द्वारा जहाँ तक प्रकृतिया वधती है, वहाँ तक ही वधने वाली प्रकृति पतद्ग्रह होती है। जहाँ कषाय वधहेतु नही है, वहाँ कदाचित् प्रकृति वधती भी हो, लेकिन वह पतद्ग्रह नही होती है।

ग्यारहवे आदि गुणस्थानो मे सातावेदनीय के सिवाय अन्य किसी भी प्रकृति का बध नही होता है और वध न होने से पतद्ग्रह नही है एव पतद्ग्रह का अभाव होने से कोई भी प्रकृति सक्रमित नही होती है।

यद्यपि सातावेदनीय का वध होता है, किन्तु वह पतद्ग्रह नही है। क्योकि उसके वध मे कषाय हेतु नही है। उपशातमोहगुणस्थान से जव पतन होता है तव उसके दोनो स्थानो की शुरुआत होती है। दसवे से सातवे गुणस्थान तक सातावेदनीय पतद्ग्रह, असाता का सक्रम और छठे से नीचे के गुणस्थानो मे परिणाम के अनुसार दोनो में से जिसका वध हो, वह पतद्ग्रह और शेष का सक्रम होता है। इसलिये वे दोनो स्थान सादि है। ग्यारहवा गुणस्थान जिन्होने प्राप्त नही किया, उनकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव–अनन्त और भव्य के अध्रुव–सात है। सामान्य की अपेक्षा वेदनीयकर्म के लिये विचार करे तव उक्त प्रकार से चार भग घटित होते है, परन्तु जव उसकी एक-एक प्रकृति की अपेक्षा विचार किया जाये तव एक-एक प्रकृति रूप सक्रम और पतद्ग्रह दोनो सादि और अध्रुव-सात है। क्यो वारवार परावर्तन होना सभव है।

गोत्रकर्म के साद्यादि भंग

वेदनीयकर्म की तरह गोत्रकर्म की भी स्थिति है। क्योकि इसकी

दोनो प्रकृतिया परावर्तमान रूप है। जिससे परस्पर सक्रम और पतद्-ग्रह स्थान होती रहती है। इसलिये वे दोनो स्थान वेदनीय की तरह सादि, अध्रुव है।[1]

अब मोहनीयकर्म के पतद्ग्रह और सक्रम स्थानो के साद्यादि भगो की प्ररूपणा करते है।

मोहनीयकर्म के पतद्ग्रह-सक्रम-स्थानो के साद्यादि भंग

मोहनीयकर्म के पतद्ग्रह और सक्रम स्थानो की सख्या का निरूपण पहले किया जा चुका है कि सक्रमस्थान तेईस और पतद्ग्रहस्थान अठारह हैं। उनमे से पच्चीस प्रकृति रूप सक्रमस्थान सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार है। वह इस प्रकार—अट्ठाईस की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की उद्वलना करे तव उसके पच्चीस का सक्रमस्थान होता है, इसलिये सादि है, अनादि मिथ्यादृष्टि के अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव होता है और शेष रहे सभी सक्रमस्थान अमुक काल पर्यन्त ही प्रवर्तमान होने से सादि-सात है।

पतद्ग्रहस्थानो मे से इक्कीस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की उद्वलना होने के बाद छब्बीस प्रकृति की सत्ता वाले के इक्कीस प्रकृति रूप पनद्ग्रहस्थान की शुरुआत होती है, इसलिये सादि है। छब्बीस प्रकृति की सत्ता वाले अनादि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। शेष समस्त पतद्ग्रहस्थान नियतकाल पर्यन्त प्रवर्तित होने से सादि, अध्रुव-सात है।

आयुकर्म मे परस्पर सक्रम न होने से सक्रमत्व पतद्ग्रहत्व सबन्धी उनके सादि आदि भग भी घटित नही होते हैं।

---

१ वेदनीय और गोत्र कर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो विषयक विशेष स्पष्टीकरण पूर्व मे किया जा चुका है।

इस प्रकार दर्शनावरण और नाम कर्म के सिवाय शेष कर्मो के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो के सादि आदि भगो की प्ररूपणा जानना चाहिये। अब दर्शनावरण-कर्म के सादि आदि भगो का कथन करते है।

दर्शनावरणकर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो के साद्यादि भंग

दंसणवरणे नवगो संकमणपडिग्गहा भवे एव ।
साई अधुवा सेसा सकमणपडिग्गहठाणा ॥१४॥

शब्दार्थ—दसणवरणे—दर्शनावरणकर्म मे, नवगो—नौ प्रकृति रूप, सकमणपडिग्गहा—सक्रम और पतद्ग्रह स्थान भवे—होता है एव—इसी प्रकार, साई अधुवा—सादि, अध्रुव, सेसा—शेष, सकमणपडिग्गहठाणा—सक्रम और पतद्ग्रह स्थान।

गाथार्थ—दर्शनावरणकर्म मे नौ प्रकृति रूप सक्रम और पतद्-ग्रहस्थान इसी प्रकार सादि आदि चार प्रकार का है। शेष सक्रम और पतद्ग्रह स्थान सादि और अध्रुव है।

विशेषार्थ—दर्शनावरणकर्म की नौ प्रकृतियो का बधक मिथ्या-दृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती जीव नौ के पतद्ग्रह मे नौ प्रकृतियो को सक्रमित करता है। इन नौ का पतद्ग्रह सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि मिश्रदृष्टि आदि गुणस्थान मे छह का बध होने से नौ का पतद्-ग्रह नही है। वहाँ से पतन होने पर होता है, इसलिये सादि है, उस स्थान को जिन्होने प्राप्त नही किया, उनके अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव जानना चाहिये।

इसी प्रकार नौ प्रकृति रूप सक्रमस्थान सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। जो इस प्रकार—सूक्ष्मसपराय-गुणस्थान से आगे उपशातमोहगुणस्थान मे सक्रम नही होता है, वहाँ से गिरने पर होता है, इसलिये सादि, उस स्थान को जिन्होने प्राप्त नही किया, उनके अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव होता है।

अब शेप रहे पतद्ग्रहस्थानो और सक्रमस्थानो के सादि आदि भगो को स्पष्ट करते है—

मिश्रगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थान के सख्यात भाग पर्यन्त दर्शनावरणकर्म की नौ प्रकृतियो की सत्ता वाला और छह का बधक छह मे नौ सक्रमित करता है। यह छह का पतद्ग्रह सादि, सात है। क्योकि कदाचित्क-अमुककाल ही प्रवर्तित होना है।

अपूर्वकरण के सख्यातवे भाग मे निद्रा और प्रचला का बधविच्छेद होने के बाद से लेकर सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त उपशमश्रेणि मे नौ की सत्ता वाला और चार का बधक चार मे नौ प्रकृतियो को सक्रमित करता है। यह चार प्रकृतिक पतद्ग्रह भी अन्तमुहूर्त पर्यन्त ही होने से सादि, अध्रुव है।

क्षपकश्रेणि मे अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान का सख्यातवा भाग शेप रहे तब स्त्यानर्द्धित्रिक का सत्ता मे से क्षय होता है। उसका क्षय होने के बाद से लेकर सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त दर्शनावरण की छह प्रकृतियो की सत्ता वाला और चार का बधक चार मे छह प्रकृतियो को सक्रमित करता है। यह सक्रम और पतद्ग्रह अन्तमुहूर्त पर्यन्त ही प्रवर्तित होने से सादि, अध्रुव-सात है।

इस प्रकार से दर्शनावरणकर्म के नौ प्रकृति रूप सक्रम और पनद्ग्रह स्थानो की सादि आदि रूप चतुर्भंगता और शेष स्थानो की द्विभगता जानना चाहिये और इस मे कारण उनका परिमित काल पर्यन्त होना है।

सुगमता से जानने के लिये साद्यादि भगो की प्ररूपणा बोधक प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

दर्शनावरणकर्म के सक्रम और पतद्ग्रह स्थानो को जानने की विधि

नवछक्कचउक्केसु नवग सकमइ उवसमगयाण।
खवगाण चउसु छक्कं दुइए मोह अओ वोच्छ ॥१५॥

शब्दार्थ—नवछक्कचउक्केसु —नौ, छह और चार प्रकृतिक मे, नवग— नौ प्रकृतिया, सकमइ—सक्रमित होती है, उवसमगयाण—उपशमश्रेणि वालो के, खवगाण—क्षपकश्रेणि गत के, चउसु—चार मे, छक्क— छह प्रकृतिया, बुइए—दूसरे कर्म (दर्शनावरण) मे, मोह—मोहनीय के, अओ— इसके बाद वोच्छ—कहूगा।

गाथार्थ—दर्शनावरणकर्म के नौ, छह और चार इन तीन पतद्ग्रह मे उपशमश्रेणि वालो के नौ सक्रमित होती है और क्षपकश्रेणिगत जीवो के चार में छह प्रकृतिया सक्रमित होती है। अब इसके बाद मोहनीय के लिये कहूँगा।

विशेषार्थ—दूसरे दर्शनावरणकर्म मे नौ, छह और चार प्रकृतिक इन तीन पतद्ग्रह मे नौ प्रकृतिया सक्रमित होती है। उनमे से आदि के दो गुणस्थानो पर्यन्त नौ मे नौ सक्रमित होती है। तीसरे गुणस्थान से लेकर आठवे गुणस्थान के प्रथम भाग पर्यन्त स्त्यानर्द्धित्रिक का बध नही होने से शेष छह प्रकृतिक पतद्ग्रह मे नौ प्रकृतिया सक्रमित होती है।

आठवे गुणस्थान के दूसरे भाग से दसवे गुणस्थान के चरम समय-पर्यन्त उपशमश्रेणि को प्राप्त जीवो के बधने वाली दर्शनावरण की चार प्रकृतियो मे नौ प्रकृतिया सक्रमित होती है। चार मे नौ का सक्रम उपशमश्रेणि मे ही होता है। क्षपकश्रेणिगत जीव ही नौवे गुणस्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय होने के बाद सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरमसमय पर्यन्त बधने वाली चार प्रकृतियो मे छह प्रकृतिया सक्रमित करता है। अन्य कोई सक्रमित नही करता है। अर्थात् ग्यारहवे गुणस्थान के प्रथम समय से बारहवे गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त यद्यपि दर्शनावरणकर्म की सत्ता होती है, लेकिन दर्शनावरणकर्म का सक्रम नही होता है। क्योकि बध नही है और बध नही होने से पतद्ग्रह भी नही और इसी कारण से चार प्रकृति रूप सक्रमस्थान भी नही तथा सक्रम या पतद्ग्रह नही होता है।

अब सक्रम और पतद्‌ग्रह स्थानो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के सम्बन्ध मे विचार करते है। उसमे भी पहले सक्रमस्थानो को जानने की विधि बतलाते है।

मोहनीयकर्म के सक्रमस्थान जानने की विधि

> **लोभस्स असकमणा उव्वलणा खवणओ छसत्तण्ह।**
>
> **उवसताण वि दिट्ठीण सकमा सकमा नेया ॥१६॥**

शब्दार्थ—लोभस्स—लोभ के, असकमणा—सक्रम का अभाव, उव्वलणा—उद्वलना, खवणओ—क्षपणा, छसत्तण्ह—छह और सात की, उवसताण—उपशात, वि—भी दिट्ठीण—दृष्टियो का सकमा—सक्रमण से, सकमा—सक्रमस्थान, नेया—जानना चाहिये।

गाथार्थ—लोभ के सक्रम का अभाव, छह प्रकृतियो की उद्वलना, सात प्रकृतियो की क्षपणा तथा उपशात होने पर भी दृष्टियो के सक्रमण से सक्रमस्थान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—गाथा मे मोहनीयकर्म के सक्रमस्थान प्राप्त करने का विधि-सूत्र बतलाया है। अत गाथा मे जो सकेत किये है, उनको लक्ष्य मे रखकर कहाँ-कहाँ कौन-कौन सक्रमस्थान सभव है, वे जान लेना चाहिये। जैसे—

नौवे गुणस्थान मे अन्तरकरण करने के पश्चात् सज्वलन लोभ का सक्रम नही होता है, अतएव उसके बाद प्रारम्भ मे बाईस, बीस या बारह प्रकृतिक सक्रमस्थान होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये तथा सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और अनन्तानुबन्धिचतुष्क इन छह प्रकृतियो की उद्वलना और हास्यषट्क तथा पुरुषवेद इन सात प्रकृतियो का क्षय होने के बाद उनका सक्रम नही होता है तथा तीन दृष्टियो का उपशम होने पर भी सक्रम होता है।[1]

---

१ सम्यक्त्वमोहनीय का अन्यप्रकृतिनयनसक्रम नही होता है परन्तु अपवर्तनासक्रम होता है। मिश्र, मिथ्यात्व मोहनीय का ही अन्यप्रकृतिनयनसक्रम होता है।

इस प्रकार से इन सबका विचार करके जो सक्रमस्थान जहाँ और जब घटित हो, वह वहाँ घटित कर लेना चाहिये। कौनसा सक्रमस्थान कहाँ घटित होता है, इसका विस्तार से निर्देश पूर्व मे[1] किया जा चुका है।

अब जो-जो सक्रमस्थान जिस-जिस गुणस्थान मे सभव है, उनका प्रतिपादन करते है।

गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म के सक्रमस्थान

> **आमीस पणुवीसो इगवीसो मीसगाउ जा पुव्वो।**
>
> **मिच्छखवगे दुवीमो मिच्छे य तिसत्तछव्वीसो ॥१७॥**

शब्दार्थ—आमीस—मिश्रगुणस्थान पर्यन्त, **पणुवीसो**—पच्चीस प्रकृति रूप, **इगवीसो**—इक्कीस प्रकृति रूप, **मीसागाउ**—मिश्रगुणस्थान से, **जा पुव्वो**—अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त, **मिच्छखवगे**—मिथ्यात्व के क्षपक के, **दुवीसो**—बाईस प्रकृति रूप, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान मे, **य**—अनुक्त समुच्चायक शब्द और, **तिसत्तछव्वीसो**—तेईस, छब्बीस, सत्ताईस प्रकृति रूप।

गाथार्थ—मिश्रगुणस्थान पर्यन्त पच्चीस प्रकृतिरूप, मिश्रगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त इक्कीस प्रकृतिरूप, मिथ्यात्व के क्षपक के बाईस प्रकृतिरूप, मिथ्यात्वगुणस्थान मे तेइस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिरूप सक्रमस्थान होते है।

विशेषार्थ—गाथा मे गुणस्थानो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के सक्रमस्थानो के स्वामियो का निर्देश किया है—

पच्चीस प्रकृतिरूप सक्रमस्थान मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर मिश्रगुणस्थान पर्यन्त होता है, अन्यत्र नही होता है तथा मिश्रगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त इक्कीस प्रकृति रूप सक्रमस्थान होता है, शेष गुणस्थानो मे नही होता है।

---

२ गाथा ग्यारहवी के विवेचन मे।

मिथ्यात्व के क्षपक अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा सर्वविरत प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थान मे बाईस प्रकृतिरूप सक्रमस्थान होता है, अन्यत्र नही होता है तथा मिथ्यात्वगुणस्थान मे एव गाथा मे उक्त 'य च' शब्द से अविरत, देशविरत और सर्वविरत गुणस्थानो को ग्रहण करके उन मे भी तेईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिरूप इस प्रकार तीन सक्रमस्थान होते है। शेष गुणस्थानो में नही होते है।

अब पतद्ग्रहस्थान अठारह ही क्यो, हीनाधिक क्यो नही होते ? इसको युक्ति द्वारा स्पष्ट करते है।

मोहनीयकर्म के अठारह पतद्ग्रहस्थान होने मे युक्ति

खवगस्स सबधच्चिय उवसमसेढीए सम्ममीसजुया।
मिच्छखवगे ससम्मा अट्ठारस इय पडिग्गहया ॥१८॥

शब्दार्थ—खवगस्स—क्षपक के सबधच्चिय—अपने बधस्थान ही, उवसमसेढीए—उपशमश्रेणि मे, सम्ममीसजुया—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय युक्त, मिच्छखवगे—मिथ्यात्व के क्षपक के, ससम्मा—सम्यक्त्व युक्त, अट्ठारस—अठारह, इय—इस कारण, पडिग्गहया—पतद्ग्रह।

गाथार्थ—क्षपक के अपने बधस्थान ही पतद्ग्रह होते है, वे ही पतद्ग्रह उपशमश्रेणि मे सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय युक्त होते हैं। मिथ्यात्व के क्षपक के सम्यक्त्व युक्त पतद्ग्रह होते हैं। इस कारण अठारह पतद्ग्रहस्थान होते है।

विशेषार्थ—गाथा मे अठारह पतद्ग्रहस्थान होने का कारण स्पष्ट किया है—

जिसने अनन्तानुबधिचतुष्क आदि सात प्रकृतियो का क्षय किया है, उसे और चारित्रमोहनीय के क्षपक के अपने जो बधस्थान है अर्थात् वे मोहनीयकर्म की जितनी प्रकृतियो का बध करते है, वे ही पतद्ग्रह होती हैं। जैसे कि क्षायिक सम्यक्त्वी अविरत, देशविरत और सर्वविरत जीवो के अनुक्रम से सत्रह, तेरह और नौ प्रकृतिक इस प्रकार तीन

पतद्ग्रहस्थान होते है। चारित्रमोहनीय के क्षपक[1] के पाच, चार, तीन, दो और एक प्रकृति के बध रूप पाच पतद्ग्रहस्थान होते है।

उपशमश्रेणि मे उपशम सम्यग्दृष्टि के क्षपक सबन्धी जो पाच आदि प्रकृति रूप पतद्ग्रह है, वे ही सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्र-मोहनीय युक्त ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् उनके सात, छह, पाच, चार और तीन प्रकृतिक इस तरह पाच पतद्ग्रहस्थान होते है तथा क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करते हुए मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय होने के बाद जब तक मिश्रमोहनीय का क्षय न हो, तब तक पूर्व मे क्षायिक सम्यक्त्वी अविरत, देशविरत और सर्वविरत के सत्रह, तेरह और नौ प्रकृति रूप जो पतद्ग्रह कहे है, उनमे सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने पर अठारह, चौदह और दस प्रकृतिक इस प्रकार तीन पतद्ग्रहस्थान होते है और जब तक मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय न हो, तब तक वही सत्रह आदि पतद्ग्रहस्थान सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय के साथ उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारह प्रकृति रूप इस प्रकार तीन होते है।

बाईस और इक्कीस प्रकृति के समूह रूप दो पतद्ग्रहस्थान मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे होते है। उनमे से मिथ्यादृष्टि के दोनो और सासादनसम्यग्दृष्टि के इक्कीस प्रकृति रूप एक पतद्ग्रह-स्थान ही होता है।

इस प्रकार अठारह पतद्ग्रहस्थान होते है, हीनाधिक नही। एक ही सख्या यदि दो बार आये तो वहाँ सख्या एक ही लेना चाहिये और एक पतद्ग्रहस्थान दो प्रकार से होता है, यह समझना चाहिये। जैसे कि सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय इस तरह दो प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान ग्यारहवे गुणस्थान मे भी होता है। और क्षपकश्रेणि मे माया और लोभ इन दो प्रकृतिरूप नौवे गुणस्थान मे भी होता है।

---

1 यहाँ क्षपक कहने से चारित्रमोहनीय का क्षय करने वाले नौवें गुणस्थान-वर्ती जीव को ग्रहण करना चाहिये, आठवें गुणस्थान वाले को नही। क्योंकि वहाँ चारित्रमोहनीय की एक भी प्रकृति का क्षय नही होता है।

अब श्रेणि की अपेक्षा जिस पतद्ग्रहस्थान मे जो सक्रमस्थान सक्रमित होते है, उनका कथन करते है।

श्रेणि की अपेक्षा पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थान

दसगट्ठारसगाई चउ चउरो सकमति पचमि।
सत्तडचउदसिगारसबारसट्ठारा चउक्कमि ॥१९॥

शब्दार्थ—दसगट्ठारसगाई—दस और अठारह आदि, चउ—चार, चउरो—चार, सकमति—सक्रमित होते है, पचमि—पाच पतद्ग्रहस्थान मे, सत्तडचउदसिगारसबारसट्ठारा—सात, आठ, चार, दस, ग्यारह, बारह और अठारह, चउक्कमि—चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे।

गाथार्थ—दस और अठारह आदि चार-चार सक्रमस्थान पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे तथा सात, आठ, चार, दस, ग्यारह, बारह और अठारह प्रकृतिक ये सात सक्रमस्थान चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है।

विशेषार्थ—गाथा मे श्रेण्यापेक्षा किस पतद्ग्रहस्थान मे कितने और कौन-कौन सख्या वाले सक्रमस्थान सक्रमित होते हैं, यह स्पष्ट किया है—

पाच प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान मे दस, ग्यारह, बारह और तेरह तथा अठारह, उन्नीस, बीस और इक्कीस प्रकृतिक यह चार-चार सक्रमस्थान सक्रात होते हैं। उनमे क्षपकश्रेणि मे अन्तरकरण करने के बाद नपु सकवेद और स्त्रीवेद का क्षय होने के बाद अनुक्रम से ग्यारह और दस प्रकृतिया पाच मे सक्रमित होती है एव उपशमश्रेणि मे उपशमसम्यग्दृष्टि के अनुक्रम से अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण क्रोध तथा सज्वलन क्रोध उपशमित होने पर ग्यारह और दस प्रकृतिया पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है और बारह प्रकृतियो का पाच मे सक्रमण क्षपकश्रेणि मे ही होता है तथा वह भी अन्तरकरण करने के बाद नपु सकवेद का क्षय न हो, वहाँ तक होता है

तथा तेरह प्रकृतियो का आठ कषायो का क्षय करने के बाद अन्तर-करण न करे, वहाँ तक क्षपकश्रेणि मे तथा पुरुषवेद का उपशम होने के बाद उपशम सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे पाच प्रकृतिक पतद्ग्रह-स्थान मे सक्रमण होता है। तथा—

अठारह, उन्नीस और वीस प्रकृतिरूप तीन सक्रमस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे होते है। उनमे से अन्तरकरण करने पर लोभ का सक्रमण नही होता है, इसलिये वीस, नपु सकवेद का उपशम होने के बाद उन्नीस और स्त्रीवेद का उपशम हुआ कि अठारह प्रकृतिया पाच मे सक्रमित होती है तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उप-शमश्रेणि में अन्तरकरण करने के पूर्व और आठ कषाय के क्षय के पहले क्षपकश्रेणि मे इक्कीस प्रकृतिया पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में सक्रमित होती हैं।

चार के पतद्ग्रह मे सात, आठ, चार, दस, ग्यारह, बारह और अठारह ये सक्रमस्थान सक्रमित होते है। उनमे हास्यषट्क का क्षय होने पर चार प्रकृतिया चार में क्षपकश्रेणि मे ही सक्रमित होती है तथा स्त्रीवेद का क्षय होने के बाद उपशमश्रेणि मे दस प्रकृतिया चार मे सक्रमित होती है तथा उसी उपशम सम्यक्त्वी के उपशमश्रेणि मे अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हुआ कि आठ और सज्वलन मान उपशमित हुआ कि सात प्रकृतिया चार मे सक्रमित होती है तथा ग्यारह, बारह और अठारह प्रकृतिक ये तीन सक्रमस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि में होते है। उनमे स्त्रीवेद का उपशम होने के बाद अठारह, हास्यषट्क का उपशम होने के बाद बारह और पुरुषवेद का उपशम होने के बाद ग्यारह प्रकृतिया चार प्रकृतिक पतद्ग्रह मे सक्रमित होती है। तथा—

तिन्नि तिगाई सत्तट्ठनवय सकममिगारस तिगम्मि।
दोसु छडट्ठवुपच्च य इगि एक्कं दोण्णि तिण्णि पण ॥२०॥

शब्दार्थ—तिन्नि—तीन, तिगाई—तीन आदि, सत्तट्ठनवय—सात, आठ, नौ, सकमम—सक्रमित होते हैं, इगारस—ग्यारह, तिगम्मि—तीन प्रकृतिक

पतद्ग्रहस्थान मे, दोसु—दो मे, छड्डट्ठदुपच—छह, आठ, दो और पाच प्रकृतिक, य—और, इगि—एक मे, एक्क—एक, दोण्णि तिण्णि पण—दो तीन, पाच।

गाथार्थ—तीन आदि तीन तथा सात, आठ, नौ और ग्यारह ये सात सक्रमस्थान तीन मे सक्रमित होते है तथा दो मे छह, आठ, दो और पाच ये चार सक्रमस्थान एव एक मे एक, दो, तीन और पाच प्रकृतिक ये चार सक्रमस्थान सक्रान्त होते है।

विशेषार्थ—तीन आदि अर्थात् तीन, चार और पाच तथा सात, आठ, नौ एव ग्यारह प्रकृतिक ये सात सक्रमस्थान तीन प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान में सक्रमित होते है। उनमे क्षपकश्रेणि में पुरुषवेद का क्षय होने के बाद तीन प्रकृतिया तीन मे सक्रमित हाती है तथा उपशम सम्यक्त्वी के उपशमश्रेणि मे सज्वलन मान के उपशात होने के बाद सात, अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण माया के उपशमित होने पर पाच एव सज्वलन माया का उपशम होने पर चार प्रकृतिया तीन मे सक्रात ह्]ती है। आठ, नौ और ग्यारह प्रकृतिरूप तीन सक्रमस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे होते है। उनमे पुरुषवेद का उपशम होने के बाद ग्यारह प्रकृतिया, अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उपशात होने के बाद नौ और सज्वलन क्रोध उपशमित होने पर आठ प्रकृतिया तीन प्रकृतिक पतद्ग्रह मे सक्रमित होती है।

दो प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे छह, आठ, दो और पाच प्रकृतिरूप चार सक्रमस्थान सक्रमित होते हैं। उनमे छह, आठ और पाच ये तीन सक्रमस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे होते हैं। उनमे सज्वलन क्रोध के उपशमित होने के बाद मान पतद्ग्रह रूप नही रहता है, अत आठ दो प्रकृतियो मे सक्रान्त होती है। उनमे से अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हाने पर छह और सज्वलन मान का उपशम होने पर पाच प्रकृतिया दो मे सक्रमित होती है तथा क्षपकश्रेणि मे क्रोध का क्षय होने के बाद मान और माया ये दो

प्रकृतिया माया और लोभ इन दो में और उपशमश्रेणि मे सम्यक्त्व-मोहनीय और मिश्रमोहनीय इन दो मे मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्र-मोहनीय ये दो प्रकृतिया सक्रमित होती है ।

एक प्रकृतिरूप पतदगह मे एक, दो, तीन और पाच प्रकृतिया सक्रमित होती है । उनमें सज्वलन मान उपशात होने के बाद माया पतद्ग्रहरूप नही रहती है जिससे एक लोभ मे पाच प्रकृतिया क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि में सक्रमित होती है । उसी के अप्रत्याख्या-नावरण-प्रत्याख्यानावरण माया के उपशमित होने के बाद तीन और सज्वलन माया के उपशमित होने के बाद दो लोभ रूप दो प्रकृतिया सज्वलन लोभ मे सक्रमित होती है तथा क्षपकश्रेणि मे मान का क्षय होने के बाद एक सज्वलन माया का लोभ मे सक्रम होता है ।[1]

अब पतद्ग्रहस्थानो में सक्रमस्थानो का विचार करते है ।

पतद्गहस्थानो मे सक्रमस्थानो का विचार निम्नलिखित प्रकारो से किया जायेगा—

१—मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे तथा औपशमिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे पतद्गहस्थानो मे सक्रमस्थान ।

२—क्षपकश्रेणि के पतद्गहस्थानो मे सक्रमस्थान ।

३—क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे पतद्ग्रहस्थानो में सक्रम-स्थान ।

इनमे से पहले मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि में पतद्गहस्थानों में सक्रमस्थानो का विचार करते हैं ।

पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थान

१ सुगमता से समझने के लिए सक्रमस्थानो मे पतद्ग्रहस्थानो का प्रारूप परिशिष्ट मे देखिए ।

पणवीसो ससारिसु इगवीसे सत्तरे य सकमइ ।
तेरस चउदस छक्के वीसा छक्के य सत्ते य ॥२१॥

शब्दार्थ—**पणवीसो**—पच्चीस, **ससारिसु**—ससारी जीवो मे, **इगवीसे**—इक्कीस मे, **सत्तरे**—सत्रह मे, **य**—और, **सकमइ**—सक्रमित होती हैं, **तेरस चउदस**—तेरह और चौदह, **छक्के**—छह मे, **वीसा**—वीस, **छक्के**—छह मे, **य**—और, **सत्ते**—सात मे, **य**—और ।

गाथार्थ—ससारी जीवो के इक्कीस और सत्रह में पच्चीस प्रकृतिया सक्रमित होती है । तेरह तथा चौदह छह मे तथा बीस छह और सात मे सक्रमित होती है ।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टि, सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि रूप ससारी जीवो के इक्कीस और सत्रह प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थानो मे पच्चीस प्रकृतिया सक्रमित होती हैं । आशय इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान मे इक्कीस मे और सम्यग्मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान मे सत्रह मे पच्चीस प्रकृतिया सक्रमित होती है ।

उपशमश्रेणि मे उपशम सम्यग्दृष्टि के अनुक्रम से हास्यषट्क और पुरुषवेद का उपशम होने के बाद चौदह और तेरह प्रकृतिया छह प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है तथा पुरुपवेद पतद्ग्रह मे से जब तक कम न हुआ हो तब तक सात प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे वीस प्रकृतिया और उसके कम होने के बाद छह प्रकृतिक पतद्ग्रह मे वीस प्रकृतिया सक्रमित होती है । तथा—

बावीसे गुणवीसे पन्नरसेक्कारसेसु छव्वीसा ।
सकमइ सत्तवीसा मिच्छे तह अविरयाईण ॥२२॥

शब्दार्थ—**बावीसे गुणवीसे**—बाईस, उन्नीस, **पन्नरसेक्कारसेसु**—पन्द्रह और ग्यारह में, **छव्वीसा**—छब्बीस, **सकमइ**—सक्रमित होती है, **सत्तवीसा**—सत्ताईस, **मिच्छे**—मिथ्यात्व मे, **तह**—तथा, **अविरयाईण**—अविरत सम्यग्दृष्टि आदि के ।

गाथार्थ—बाईस, इक्कीस पन्द्रह और ग्यारह प्रकृतिरूप पतद्-ग्रहस्थान मे छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिया मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि आदि के सक्रमित होती हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टि तथा अविरतादि-अविरतसम्यग्दृष्टि, देश-विरत और सर्वविरत गुणस्थान वालो के अनुक्रम से बाईस, उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारह प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिया सक्रमित होती है। उनमें से मिथ्यादृष्टि के बाईस मे, अवि-रतसम्यग्दृष्टि के उन्नीस मे, देशविरत के पन्द्रह मे और सर्वविरत-प्रमत्त-अप्रमत्त के ग्यारह मे छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिया सक्रमित होती है।

उसमे पहले गुणस्थान मे सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वलना होने के बाद छब्बीस प्रकृतिया बाईस मे सक्रमित होती है और अविरत आदि के उपशमसम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद आवलिका के अदर छब्बीस तथा आवलिका के बाद सत्ताईस प्रकृतिया उन्नीस आदि पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है। तथा—

बावीसे गुणवीसे पन्नरसेक्कारसे य सत्ते य।
तेवीसा संकमइ मिच्छाविरयाइयाण कमा ॥२३॥

शब्दार्थ—बावीसे—बाईस मे, गुणवीसे—उन्नीस मे, पन्नरसेक्कारसे—पन्द्रह और ग्यारह मे, य—तथा, सत्ते—सात मे, य—और, तेवीसा—तेईस, सकमइ—सक्रमित होती हैं, मिच्छाविरयाइयाण—मिथ्यादृष्टि और अविरत आदि के, कमा—अनुक्रम से।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि और अविरत आदि के अनुक्रम से बाईस, उन्नीस, पन्द्रह, ग्यारह और सात के पतद्ग्रहस्थान मे तेईस प्रकृतिया सक्रमित होती है।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टि और अविरति आदि—अविरत, देशविरत, सयत और अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीवो के अनुक्रम से बाईस, उन्नीस, पन्द्रह, ग्यारह और सात प्रकृतिक पतद्ग्रह मे तेईस

प्रकृतिया सक्रमित होती हैं। वे इस प्रकार—

अनन्तानुबधि की विसयोजना कर पहले गुणस्थान को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि के एक आवलिका पर्यन्त तेईस प्रकृतिया चारित्रमोहनीय की इक्कीस और मिथ्यात्व इस प्रकार बाईस प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है तथा अनन्तानुबधि के विसयोजक चौबीस की सत्ता वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि अविरत, देशविरत और सर्वविरत जीवो के अनुक्रम से उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारह प्रकृतिक पतद्ग्रह मे तेईस प्रकृतिया सक्रात होती हैं और नौवे अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान मे अन्तरकरण प्रारभ करने के पूर्व सात के पतद्ग्रहस्थान मे तेईस प्रकृतिया सक्रमित होती है। तथा—

अट्ठारस चोद्दससत्तगेसु बावीस खीणमिच्छाण।
सत्तरसतेरनवसत्तगेसु इगवीस सकमइ ॥२४॥

शब्दार्थ—**अट्ठारस चोद्दससत्तगेसु**—अठारह, चौदह, दस, सात मे, **बावीस**—बाईस, **खीणमिच्छाण**—क्षीणमिथ्यादृष्टि के, **सत्तरसतेरनवसत्तगेसु**—सत्रह, तेरह, नौ, सात मे, **इगवीस**—इक्कीस प्रकृतिया, **सकमइ**—सक्रमित होती हैं।

गाथार्थ—क्षीणमिथ्यादृष्टि ऐसे अविरतादि के अठारह, चौदह और दस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे और उपशमश्रेणि मे उपशम सम्यक्त्वी के सात प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान मे बाईस प्रकृतिया सक्रमित होती है तथा उसी क्षीणसप्तक अविरतादि के सत्रह, तेरह और नौ के पतद्ग्रह मे और उपशमश्रेणि मे उपशम सम्यक्त्वी के सात के पतद्ग्रह मे इक्कीस प्रकृतिया सक्रमित होती है।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जन करते हुए जिन्होने मिथ्यात्वमोह का क्षय किया है ऐसे अविरत, देशविरत और सयत जीवो के अठारह, चौदह और दस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में बाईस प्रकृतिया सक्रान्त होती है। उसमे जिसने मिथ्यात्वमोहनीय का क्षय

किया ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि के अठारह मे, देशविरत के चौदह मे और सर्वविरत के दस मे वाईस प्रकृतिया सक्रान्त होती हे तथा गाथा मे गृहीत वहुवचन इष्ट अर्थ की व्याप्ति के लिये होने से औपशमिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे अन्तरकरण करने के बाद सात प्रकृति रूप पतद्ग्रह मे वाईस प्रकृतिया सक्रात होती है ।

उन्ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि अविरत आदि के सत्रह, तेरह और नौ के पतद्ग्रह मे इक्कीस प्रकृतिया सक्रमित होती है।[1] उनमे से चौथे गुणस्थान मे सत्रह के, पाचवे मे तेरह के और छठे-सातवे मे नौ के पतद्ग्रहस्थानो इक्कीस प्रकृतिया सक्रमित होती है और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे नपु सकवेद का उपशम होने के वाद इक्कीस प्रकृतिया सात प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रान्त होती है ।

पूर्व मे क्षपकश्रेणि और उपशमश्रेणि के पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रम-स्थानो का निर्देश किया । अव केवल क्षपकश्रेणि के पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थानो का प्रतिपादन करते है —

दसगाइचउक्क एक्कवीस खवगस्स सकमहि पंचे ।
दस चत्तारि चउक्के तिसु तिन्नि दु दोसु एक्केक्क ॥२५॥

शब्दार्थ—दसगाइचउक्क—दस आदि चार, एक्कवीस—इक्कीस, खवगस्स—क्षपक के, सकमहि—सक्रमित होती हैं, पचे—पाच मे, दस चत्तारि—दस और चार, चउक्के—चार मे तिसु—तीन मे, तिन्नि—तीन, दु—दो, दोसु—दो मे, एक्केक्क—एक मे एक ।

गाथार्थ—क्षपक के दस आदि चार और इक्कीस प्रकृतिया पाच मे, दस और चार चार मे, तीन तीन मे, दो दो मे और एक एक मे सक्रमित होती है ।

---

१ इसी प्रकार मिश्रमोहनीय का क्षय होने के वाद बाईस की सत्ता वाले अविरत आदि क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी के भी इन्ही तीन पतद्ग्रहस्थानो मे इक्कीस प्रकृतियो का सक्रम होता है । परन्तु वह क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त करते हुए ही होता है, इसलिये उसकी सभवत विवक्षा न की हो ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणि मे वर्तमान अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव के दस, ग्यारह, बारह और तेरह तथा इक्कीस यह पाच सक्रमस्थान पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है। उसमे आठ कषाय का क्षय होने के पहले इक्कीस प्रकृतिया पुरुषवेद और सज्वलनचतुष्क इन वधने वाली पाच प्रकृतियो मे सक्रमित होती है। आठ कषायो का क्षय होने के बाद तेरह प्रकृतिया पाच मे सक्रात होती है। अन्तरकरण करने के वाद लोभ का सक्रम नही होता है, अत बारह प्रकृतिया पाच मे सक्रमित होती है। नपु सकवेद का क्षय होने के बाद ग्यारह और स्त्रीवेद का क्षय होने के बाद दस प्रकृतिया पूर्वोक्त पाच प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान मे सक्रान्त होती हैं।

दस और चार प्रकृतिया चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है। उनमे पुरुषवेद की प्रथमस्थिति समयन्यून दो आवलिका शेप रहे तब वह पतद्ग्रह नही रहता है, जिससे पूर्वोक्त दस प्रकृतिया सज्वलन वतुष्क मे सक्रमित होती है और हास्यषट्क का क्षय होने के बाद चार प्रकृतिया पूर्वोक्त चार मे सक्रमित होती हैं।

पतद्ग्रह मे से क्रोध कम होने के वाद शेष तीन प्रकृतिक पतद्ग्रह मे तीन प्रकृतिया सक्रमित होती हैं। इसी प्रकार पतद्ग्रह मे से मान के जाने के वाद माया और लोभ ये दो प्रकृतिया माया और लोभ इन दो के पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है और माया के भी पतद्ग्रह मे से कम होने के वाद एक लोभ मे माया का सक्रम होता है।

अव क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थानो का प्रतिपादन करते हैं—

अट्ठाराइचउवक पचे अट्ठार बार एक्कारा।

चउसु इगारसनवअड तिगे दुगे अट्ठछप्पच ॥२६॥

शब्दार्थ—अट्ठाराइचउक्क—अठारह आदि चार, पचे--पाच मे, अट्ठार बार एक्कारा—अठारह, बारह, ग्यारह, चउसु—चार मे, इगारसन-बअड—ग्यारह, नौ, आठ, तिगे—तीन मे, दुगे—दो मे, अट्ठछप्पच—आठ, छह, पाच ।

गाथार्थ—अठारह आदि चार पाच के पतद्ग्रह मे, अठारह, बारह और ग्यारह चार मे, ग्यारह, नौ और आठ तीन मे, आठ, छह और पाच प्रकृतिया दो प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है ।

विशेपार्थ—क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशनश्रेणि मे अठारह, उन्नीस, वीस और इक्कीस प्रकृतिक ये चार सक्रमस्थान पुरुपवेद और सज्वलनचतुप्क रूप पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है । उनमे अन्तरकरण करने के पहले इक्कीम प्रकृतिया पाच प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान मे सक्रात होती है और अन्तरकरण करने के वाद लाभ के सिवाय वीस प्रकृतिया पाच मे सक्रात होती है । नपु सकवेद का उपशम होने के वाद उन्नीस प्रकृतिया और स्त्रीवेद के उपशात होने के वाद अठारह प्रकृतिया पाच प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रात होती हैं ।

अठारह, वारह और ग्यारह प्रकृतिया चार प्रकृतिक पतद्ग्रह मे सक्रात होती है । पतद्ग्रह मे से पुरुपवेद के जाने के वाद अठारह प्रकृतिया चार मे सक्रमित होती हे । हास्यपट्क के उपशात होने के पश्चात् वारह प्रकृतिया और पुरुपवेद का उपशम होने के वाद ग्यारह प्रकृतिया चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती हैं—'अट्ठार वार एक्कारा चउसु ।

'इगारसनवअड तिगे' अर्थात् ग्यारह, नौ और आठ प्रकृतिया तीन प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रात होती है । वे इस प्रकार—सज्वलन क्रोध पतद्ग्रह हो वहाँ तक सज्वलनचतुष्क मे ग्यारह प्रकृतिया सक्रमित होती है और क्रोध पतद्ग्रह मे से जाने के वाद ग्यारह प्रकृतिया

तीन प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है तथा अप्रत्याख्याना-वरण, प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उपशात होने के बाद नौ प्रकृतिया और सज्वलन क्रोध के उपशमित होने पर आठ प्रकृतिया तीन में सक्रमित होती है।

दो प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे आठ, छह और पाच प्रकृतिया सक्रान्त होती है—'दुगे अट्ठछप्पच'। वे इस प्रकार—सज्वलन मान के पतद्ग्रह मे से कम होने के बाद आठ प्रकृतिया दो मे सक्रमित होती है। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण मान के उपशमित होने के बाद छह प्रकृतिया और सज्वलन मान के उपशात होने पर पाच प्रकृतिया माया और लोभ इस दो प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती हैं। तथा—

पण दोन्नि तिन्नि एक्के उवसमसेढीए खइयदिट्ठिस्स।

इयरस्स उ दो दोसु सत्तसु वीसाइ चत्तारि ॥२७॥

शब्दार्थ—पण दोन्नि तिन्नि—पाच, दो, तीन, एक्के—एक मे, उवसमसेढीए—उपशमश्रेणि मे, खइयदिट्ठिस्स—क्षायिक सम्यग्दृष्टि के, इयरस्स—इतर के-उपशमश्रेणि मे उपशम सम्यग्दृष्टि के, उ—और, दो—दो, दोसु—दो मे, सत्तसु—सात मे, वीसाइ चत्तारि—बीस आदि चार।

गाथार्थ—उपशमश्रेणि मे क्षायिक सम्यग्दृष्टि के एक मे पाच, दो और तीन प्रकृतिया और इतर—उपशमश्रेणि मे उपशम-सम्यग्दृष्टि के दो मे दो तथा सात मे बीस आदि चार सक्रमित होती है।

विशेषार्थ—माया के पतद्ग्रह मे से दूर होने पर एक लोभ में पाच प्रकृतिया सक्रान्त होती है। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यावरण माया के उपशात होने पर तीन प्रकृतिया एक लोभ में और सज्वलन माया के उपशात होने पर मात्र अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये दो लोभ सज्वलन लोभ पतद्ग्रह रूप हो वहाँ तक एक मे सक्रमित होते हे।

पर ग्यारह और सज्वलन क्रोध के उपशमित होने पर दस प्रकृतिया पाच प्रकृतियो मे सक्रमित होती है।

पतद्ग्रह मे से मान के कम होने पर चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे दस प्रकृतिया सक्रमित होती है। अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण मान के उपशात हो जाने पर आठ और संज्वलन मान के उपशमित होने पर सात प्रकृतिया चार प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

सज्वलन माया पतद्ग्रह मे से कम होने पर तीन मे सात प्रकृतिया सक्रमित होती है। अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण माया के उपशात हो जाने पर पाच और सज्वलन माया के उपशमित होने पर चार प्रकृतिया तीन प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होती है।

जब तक सज्वलन लोभ पतद्ग्रह हो तब तक अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण लोभ उसमे सक्रान्त होता है और सज्वलन लोभ के पतद्ग्रह न रहने पर मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय ये दो प्रकृतिया सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय इन दो मे सक्रमित होती है।

इस प्रकार से श्रेण्यापेक्षा पतद्ग्रह स्थानो मे सक्रमस्थानो का कथन जानना चाहिये। अब मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र गुणस्थान के पतद्ग्रहस्थान सुगम होने से उनको नही कहकर शेष गुणस्थानो के पतद्ग्रहस्थानो का कथन करते है।

अविरत आदि गुणस्थानो के पतद्ग्रहस्थान

गुणवीसपन्नरेक्कारसाइ ति ति सम्मदेसविरयाण।
सत्त पणाइ छ पच उ पडिग्गहगा उभयसेढीसु ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—गुणवीसपन्नरेक्कारसाइ—उन्नीस, पन्द्रह, ग्यारह आदि, ति ति तीन-तीन, सम्मदेसविरयाण—अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, सर्वविरत, सत्त पणाइ—सात आदि और पाच आदि, छ पच—छह, पाच, उ—और पडिग्गहगा—पतद्ग्रह, उभयसेढीसु—दोनो श्रेणियो मे।

गाथार्थ—उन्नीस, पन्द्रह, ग्यारह आदि तीन-तीन पतद्ग्रह अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत और सर्वविरत गुणस्थानो मे तथा अनुक्रम से सात आदि छह एव पाच आदि पाच पतद्ग्रह-स्थान दोनो श्रेणियो मे होते है।

विशेषार्थ—अविरतसम्यग्दृष्टि के उन्नीस, अठारह और सत्रह ये तीन पतद्ग्रहस्थान, देशविरत के पन्द्रह, चौदह और तेरह ये तीन पतद्ग्रहस्थान और सर्वविरत—प्रमत्त अप्रमत्त सयत के ग्यारह, दस और नौ प्रकृतिक ये तीन पतद्ग्रहस्थान होते है। जिसका स्पष्टी-करण इस प्रकार है—

अविरतसम्यग्दृष्टि के बधती सत्रह प्रकृतिया तथा सम्यक्त्व-मोहनीय और मिश्रमोहनीय ये उन्नीस प्रकृतिया पतद्ग्रह रूप हाती है। उसी के क्षायिक सम्यक्त्व उपर्जित करते मिथ्यात्व का क्षय होने के बाद अठारह तथा मिश्रमोहनीय का क्षय होने के बाद सत्रह प्रकृतिया पतद्ग्रह मे होती है।

देशविरत के अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बध नही होने से उपर्युक्त उन्नीस प्रकृतियो मे से उनको कम करने पर शेष पन्द्रह प्रकृतिया प्रारम्भ मे पतद्ग्रह रूप होती है। उनमे से पूर्वोक्त क्रम से मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का क्षय होने पर चौदह और तेरह प्रकृतिया पतद्ग्रह मे होती है।

सर्वविरत के प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बध नही होता है। इसलिये उनके सिवाय शेष ग्यारह प्रकृतिया प्रारम्भ मे पतद्ग्रह मे होती है। उनमे से क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जन करते हुए अनुक्रम से मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का क्षय होने के बाद दस और नौ प्रकृतिया अनुक्रम से पतद्ग्रह मे होती है।

सात, छह, पाच, चार, तीन और दो प्रकृति रूप ये छह पतद्ग्रह-स्थान औपशमिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि मे होते है तथा पाच, चार, तीन, दो और एक प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थान क्षायिक सम्य-

ग्दृष्टि के उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि मे होते है। यद्यपि गाथा मे सात आदि छह और पाच आदि पाच पतद्ग्रह उभय श्रेणि मे होते हैं, ऐसा सामान्य से कहा है। लेकिन श्रेणिगत पूर्व मे कहे गये सक्रम पतद्ग्रह स्थानो को ध्यान मे रखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सात आदि छह पतद्ग्रहस्थान उपशमसम्यक्त्वी के उपशमश्रेणि मे होते हैं। इसीलिये यहाँ उक्त प्रकार से स्पष्ट किया है। किन्तु मात्र सात आदि छह उपशमश्रेणि मे और पाच आदि पाच क्षपकश्रेणि मे होते है, ऐसा क्रम नही समझना चाहिये।

इस प्रकार से मोहनीयकर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो के विषय मे विस्तार से निरूपण जानना चाहिये।[1] अब शेष रहे नामकर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो का विचार करते है।

नामकर्म के सक्रमस्थान और पतद्ग्रहस्थान

सत्तागत प्रकृतिया सक्रमित होती है। अतएव सक्रमस्थानो को जानने के लिये पहले नामकर्म के सत्तास्थानो को बतलाते हैं।

नामकर्म के बारह सत्तास्थान हैं। वे इस प्रकार—१०३, १०२, ९६, ९५, ९३, ९०, ८९, ८४, ८३, ८२, ९ और ८ प्रकृतिक तथा सक्रमस्थान भी बारह है—१०३, १०२, १०१, ९६, ९५, ९४, ९३, ८९, ८८, ८४, ८२, ८१ प्रकृतिक। ये सक्रमस्थान सत्तास्थानो की अपेक्षा कुछ भिन्न सख्या वाले है। जिनका यथाक्रम से स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक सौ तीन, एक सौ दो, छियानवै, पचानवै, इन चार सत्तास्थानो की 'प्रथम' यह सज्ञा है। जहाँ प्रथमसत्तास्थानचतुष्क कहा जाये, वहाँ यह चार सत्तास्थान ग्रहण करना चाहिये। इनमे नामकर्म

---

१ सुगमता से समझने के लिये मोहनीयकर्म के पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थानो के प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

की सभी प्रकृतियो का जो समूह वह एक सौ तीन प्रकृतिक, तीर्थंकरनाम की सत्तारहित एक सौ दो प्रकृतिक तथा पूर्वोक्त एक सौ तीन की सत्ता जब आहारकसप्तक रहित हो तब छियानवै प्रकृतिक और पूर्वोक्त एक सौ दो की सत्ता आहारकसप्तक रहित हो तब पचानवै प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उपर्युक्त प्रथमसत्ताचतुष्क मे से क्षपकश्रेणि के नौवें गुणस्थान मे तेरह प्रकृतियो का क्षय हो तब अनुक्रम से नब्वे ,नवासी, तेरासी और बयासी प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते है। इनकी 'द्वितीयसत्ता-चतुष्क' यह सज्ञा है।

पचानवै मे से देवद्विक की उद्वलना होने पर तेरानवै, उनमे से वैक्रियसप्तक और नरकद्विक की उद्वलना हो तब चौरासी और मनुष्यद्विक की उद्वलना हो तब बयासी प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते है। इन तीन की 'अध्रुव' यह सज्ञा है। यद्यपि बयासी प्रकृतिक सत्तास्थान द्वितीयसत्ताचतुष्क मे आता है तथा चौरासी की सत्ता वाला मनुष्यद्विक की उद्वलना करे तब भी होता है, परन्तु सख्या तुल्य होने से उसे एक ही गिना है। एक सत्तास्थान दो प्रकार से होता है, किन्तु सत्तास्थान की सख्या का भेद नही होता है। इस प्रकार दस सत्तास्थान हुए।

इनमे से द्वितीयसत्ताचतुष्क मे के नब्वै और तेरासी प्रकृति रूप दो सत्तास्थान सक्रम मे घटित नही होते है। जिसका कारण सक्रम-स्थान का विचार करने के प्रसग मे स्पष्ट किया जायेगा। शेष सत्ता-स्थान सक्रम मे होते है। इसलिये अभी कहे गये दस सत्तास्थानो मे से आठ सक्रमस्थान सभव है।

नौ और आठ प्रकृति के समूह रूप दो सत्तास्थान और भी है। परन्तु वे अयोगि-अवस्था के चरम समय मे होने से सक्रम के विषय-भूत नही होते हैं। क्योकि जब पतद्ग्रह हो तब सक्रम होता है और बध्यमान प्रकृति पतद्ग्रह होती है। लेकिन चौदहवे गुणस्थान मे कोई भी प्रकृति बधती नही है। जिससे पतद्ग्रह न होने से किसी भी प्रकृति का सक्रम नही होता है।

इस प्रकार नामकर्म के बारह सत्तास्थानो मे से आठ सक्रमस्थान होते हैं और दूसरे चार सक्रमस्थान सत्तास्थान से बाहर के है। वे इस प्रकार—एक सौ एक, चौरानवै, अठासी और इक्यासी प्रकृतिक। इस प्रकार होने से सत्तास्थान जैसे बारह है वैसे ही सक्रमस्थान भी बारह होते है। किन्तु दोनो मे कुछ भिन्नता है। वे इस प्रकार १०३, १०२, १०१, ९६, ९५, ९४,९३, ८९, ८८, ८४, ८२, ८१ प्रकृतिक।

नामकर्म के इन सत्तास्थानो और सक्रमस्थानो को स्पष्टता से समझने का प्रारूप इस प्रकार है—

नामकर्म के सत्तास्थान और सक्रमस्थान

नामकर्म के सत्तास्थान—१०३, १०२, ९६, ९५, ९३, ९०, ८९, ८४, ८३, ८२, प्रकृतिक।

नामकर्म के मक्रमस्थान—१०३, १०२, १०१, ९६, ९५, ९४, ९३, ८९, ८८, ८४, ८२, ८१ प्रकृतिक।

पतद्ग्रहस्थानो को बतलाने के लिये पहले नामकर्म के बधस्थानो का निर्देश करते है कि तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक। इन आठो बधस्थानो के बराबर अर्थात् बधस्थानो के समान ही और उतनी-उतनी प्रकृतियो के समुदाय रूप नामकर्म के पतद्ग्रहस्थान जानना चाहिये। वे इस प्रकार—२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक।

इस प्रकार से नामकर्म के सक्रमस्थानो और पतद्ग्रहस्थानो का निर्देश करने के बाद अब कौन प्रकृतिया किस मे सक्रमित होती है ? इसका निरूपण करते है।

नामकर्म के पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमण

पढमचउक्क तित्थगरवज्जित अधुवसततियजुत्त।
तिगपणछव्वीसेसु सकमइ पडिग्गहेसु तिसु ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—पढमचउक्क—प्रथमचतुष्क, तित्थगरवज्जित—तीर्थंकरनामकर्म वाले को छोडकर, अधुवसततियजुत्त—अध्रुवसत्तात्रिकयुक्त, तिगपणछव्वीसेसु

—तेईस, पच्चीस और छब्बीस मे, सकमइ—सक्रमित होते है, पडिग्गहेसु—पतद्ग्रह मे, तिसु—तीन मे ।

गाथार्थ—तीर्थंकरनामकर्म वाले सत्तास्थानो की छोडकर शेप प्रथमसत्ताचतुष्क और अध्रुवसत्तात्रिक इस प्रकार पाच सक्रमस्थान तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृति रूप तीन पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है ।

विशेषार्थ—प्रथमसत्तास्थानचतुष्क (१०३, १०२, ९६ और ९५) मे से तीर्थंकरनामकर्म की जिनमे सत्ता है ऐसे १०३ और ९६ प्रकृतिक इन दो सत्तास्थानो को छोडकर और उनमे अध्रुवसत्ता वाले ९३, ८४ और ८२ प्रकृतिक इन तीन सत्तास्थानो को मिलाने पर कुल १०२, ९५, ९३, ८४ और ८२ प्रकृतिक ये पाच स्थान बधने वाले तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक तीन पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है । तात्पर्य यह हुआ कि तेईस आदि तीन पतद्ग्रहस्थानो मे एक सौ दो, पचानवै, तेरानवै, चौरासी और बयासी प्रकृतिक ये पाच-पाच सक्रमस्थान सक्रमित होते हैं । जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तैजस, कार्मण, औदारिकशरीर, हुडकसस्थान, एकेन्द्रियजाति, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, बादर-सूक्ष्म इन दोनो मे से एक, स्थावर, अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण मे से एक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति रूप अपर्याप्त एकेन्द्रिययोग्य तेईस प्रकृतियो का बध होने पर और एक सौ दो आदि उपर्युक्त पाच प्रकृतिस्थानो की सत्ता वाले एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय तिर्यंच अनुक्रम से उन तेईस प्रकृतियो मे १०२, ९५, ९३, ८४ और ८२ प्रकृति रूप पाच सक्रमस्थानो को सक्रमित करते है ।

यहाँ मनुष्य को ग्रहण नही करने का कारण यह है कि उसे सभी सत्तास्थान नही होते है । मनुष्यद्विक रहित बयासी प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है, उसके सिवाय शेप चार सत्तास्थान होते हे । वे चार सत्तास्थान तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक इन तीन पतद्ग्रह-

स्थानो मे सक्रमित हो सकते है। मनुष्य भी तेईस आदि तीन बध-स्थानो को बाध सकते है। जिससे वे जब बधे तब उपर्युक्त एक सौ दो आदि प्रकृतिस्थानो मे के जो सत्ता मे हो, वे सक्रमित हो सकत है।

तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिचतुष्क, एकेन्द्रियजाति, हु डकसस्थान, औदारिकशरीर, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, वादर-सूक्ष्म मे से एक, पर्याप्तनाम, प्रत्येक-साधारण मे से एक, स्थिर-अस्थिर मे से एक, शुभ-अशुभ मे से एक, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से एक, पराघात और उच्छ्वास रूप एकेन्द्रियप्रायोग्य पच्चीस प्रकृतियो का बध करने पर और एक सौ दो प्रकृतिक आदि पाच मे से कोई एक प्रकृतिस्थान की सत्ता वाले एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्दिय आदि जीव उस पच्चीस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे एक सौ दो, पचानवै, तेरानवै, चौरासी और ब्यासी प्रकृतिक ये पाच सक्रमस्थान सक्रमित करते है।[1] अथवा—

तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, द्वीन्द्रियादि कोई एक जाति, हु डकसस्थान, सेवार्तसहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-अगोपाग, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, त्रस, वादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति रूप अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य योग्य[2] पच्चीस प्रकृतियो का वध करने पर और एक सौ दो आदि उपर्युक्त पाच प्रकृतिस्थानो की सत्ता वाले एकेन्दिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य पच्चीस प्रकृतिरूप पतद्ग्रहस्थान मे एक सौ दो आदि प्रकृतिक पाच सक्रमस्थान सक्रमित करते है।

---

१ यहा इतना विशेप है कि देवो के एक सौ दो और पचानवै तथा मनुष्यो के व्यासी प्रकृतिक सिवाय शेप सक्रमस्थान होते है।

२ परन्तु मनुष्य योग्य पच्चीस प्रकृतिया बाधने पर व्यासी के विना शेप चार सक्रमस्थान होते है।

तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिचतुष्क, एकेन्द्रियजाति, हु डकसस्थान, औदारिकशरीर, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, वादर, प्रत्येक स्थिर-अस्थिर मे से एक, शुभ-अशुभ मे से एक, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से एक, पराघात, उच्छ्वास और आतप-उद्योत मे से एक, इस तरह एकेन्द्रियप्रायोग्य छब्बीस प्रकृतियो का बध करने पर और एक सौ दो और पचानवै की सत्ता वाले नारकी का छोडकर एकेन्द्रियादि सभी जीव उस छब्बीस प्रकृतिक स्थान मे एक सौ दो और पचानवै सक्रमित करते है तथा छब्बीस प्रकृतियो को बाधने पर तेरानवै और चौरासी की सत्ता वाले देव और नारक बिना शेप एकेन्द्रियादि जीव छब्बीस मे तेरानवै और चौरासी प्रकृतिया सक्रमित करते है। तथा—

वयासी की सत्ता वाले और छब्बीस प्रकृतियो को बाधने पर देव, नारक और मनुष्य वर्जित वे एकेन्द्रियादि जीव छब्बीस मे वयासी प्रकृतिया सक्रमित करते हैं।

इस प्रकार से तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमित हाने वाले सक्रमस्थानो का जानना चाहिये। अब शेप पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थानो का विचार करते है—

पढम सतचउक्क इगतीसे अधुवतियजुय त तु।
गुणतीसतीसएसु जसहीणा दो चउक्क जसे ॥३१॥

शब्दार्थ—पढम सतचउक्क—प्रथम सत्ताचतुष्क, इगतीसे—इकतीस मे, अधुवतियजुय—अध्रुवसत्तात्रिक के साथ, त—वह (प्रथम सत्ताचतुष्क), तु—और, गुणतीसतीसएसु—उनतीस तीस मे, जसहीणा—यश कीर्ति हीन, दो चउक्क—दो चतुष्क, जसे—यश कीर्ति मे।

गाथार्थ—प्रथमसत्ताचतुष्क इकतीस मे सक्रमित होता है। अध्रुवसत्तात्रिक के साथ वह (प्रथमसत्ताचतुष्क) उनतीस और तीस मे तथा यश कीर्ति हीन दो चतुष्क यश कीर्ति मे सक्रान्त होते है।

विशेषार्थ—देवगति, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियशरीर, वैक्रिय-अगोपाग, समचतुरस्रसस्थान, देवानुपूर्वी, पराघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति, तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और आहारकद्विक रूप इकतीस प्रकृतियो का बध करता हुआ अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती सयत जीव उन इकतीस मे प्रथमसत्ताचतुष्क (१०३, १०२, ९६, ९५ प्रकृतिक) रूप चार सक्रमस्थानो को सक्रमित करता है। उनमे तीर्थंकरनाम और आहा-रकद्विक की बधावलिका बीतने के बाद एक सौ तीन सक्रमित करता है। जिसे तीर्थंकरनाम की बधावलिका न बीती हो परन्तु आहारक-सप्तक की बीत गई हो वह एक सौ दो इकतीस मे सक्रमित करता हे।[1] तीर्थंकरनाम की बधावलिका बीत गई हो परन्तु आहारकसप्तक की न बीती हो, वह छियानवै सक्रमित करता है और तीर्थंकरनाम तथा आहारकसप्तक इन दोनो की बधावलिका जिसके न बीती हो, वह पचानवै प्रकृतिया बधने वाली इकतीस प्रकृतियो मे सक्रमित करता है।

अध्रुवसत्तात्रिक के साथ प्रथमसत्ताचतुष्क उनतीस और तीस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमित करता है। अर्थात् उनतीस और तीस प्रकृति रूप पतद्ग्रहस्थानो मे एक सौ तीन, एक सौ दो, छियानवै, पचानवै, तेरानवै, चौरासी और बयासी प्रकृति रूप सात-सात सकम-स्थान सक्रमित करता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पचे-न्द्रियजाति, औदारिकद्विक, समचतुरस्रसस्थान, वज्रऋषभनाराच-

---

१ तीर्थंकरनाम का निकाचित बध होने के बाद प्रतिसमय चौथे से आठवे गुणस्थान के छठे भाग पर्यन्त तीर्थकरनाम अवश्य बधता रहता है। इसी प्रकार आहारकद्विक के बधने के बाद सातवे से आठवे गुणस्थान के छठे भाग तक भी आहारकद्विक प्रतिसमय बधता रहता है।

संहनन, मनुष्यद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से कोई एक, शुभ-अशुभ में से एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति में से एक, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और तीर्थंकरनाम रूप मनुष्यगतियोग्य तीस कर्मप्रकृतियों का बंध करने पर एक सौ तीन की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि देव के बंधती हुई इन तीस प्रकृतियों में एक सौ तीन प्रकृतियां संक्रमित होती हैं।

देवद्विक, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रिय-अंगोपांग, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति, तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और आहारकद्विक रूप देवगतियोग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर एक सौ दो प्रकृतियों की सत्ता वाला अप्रमत्तसंयत अथवा अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव उन बंधने वाली तीस प्रकृतियों में एक सौ दो प्रकृतियां संक्रमित करता है। अथवा—

तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिचतुष्क, तिर्यंचद्विक, द्वीन्द्रियादिजाति में से कोई एक जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर में से एक, शुभ-अशुभ में से एक, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति में से एक, औदारिकद्विक, कोई भी एक संस्थान, कोई भी एक संहनन,[1] अप्रशस्तविहायोगति, पराघात, उच्छ्वास और उद्योत रूप द्वीन्द्रियादि तिर्यंचों के योग्य तीस प्रकृतियों का बंध करने पर एक सौ दो प्रकृतियों की सत्ता वाले एकेन्द्रियादि

---

१ यदि यहाँ द्वीन्द्रियादिक में बताये गये आदि शब्द से संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सिवाय की तिर्यंच जीवप्रायोग्य तीस प्रकृतियां बताई हों तो संहनन और संस्थान छह में से चाहे जो न लेकर सेवार्तसंहनन और हुंडकसंस्थान लेना चाहिये और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचप्रायोग्य प्रकृतियां भी बताई हों तो छह संहनन, छह संस्थान की तरह वहाँ घटित प्रतिपक्षी सभी प्रकृतियों का भी ग्रहण होना चाहिये। यह विचारणीय है।

जीव बधने वाली उनतीस प्रकृतियो मे एक सौ दो प्रकृतिया सक्रमित करते है।

पूर्व मे कही तीर्थंकरनाम सहित मनुष्यगतिप्रायोग्य तीस कर्म-प्रकृतियो का बध करते हुए छियानवै की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि देव-नारको के बधने वाली उनतीस प्रकृतियो में छियानवै प्रकृतिया सक्रमित होती हैं।

आहारकद्विक सहित देवगतियोग्य तीस प्रकृतियो को बाधने पर एक सौ दो की सत्ता वाले आहारकसप्तक की बधावलिका जिनकी वीती नही है, ऐसे अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव बधने वाली उनतीस प्रकृतियो मे पचानवै प्रकृतिया सक्रमित करते है। अथवा पचानवै की सत्ता वाले उद्योतनाम के साथ तिर्यंचगतियोग्य तीस प्रकृतियो को बाधते हुए एकेन्द्रियादि जीव बधने वाली उनतीस प्रकृतियो मे पचानवै प्रकृतियो को सक्रमित करते हैं।

तेरानवै, चौरासी अथवा वयासी प्रकृतियो की सत्ता वाले एके-न्द्रिय आदि जीवो के पूर्व मे कही गई तिर्यंचगतियोग्य उद्योतनाम सहित तीस प्रकृतियो को बाधने पर बधती हुई तीस प्रकृतियो मे अनु-क्रम से तेरानवै, चौरासी और वयासी कर्मप्रकृतिया सक्रमित होती है।

तीर्थंकरनाम के साथ देवद्विक, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियद्विक, परा-घात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर मे से एक, शुभ-अशुभ मे से एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से एक, समचतुरस्रसस्थान, तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण रूप उनतीस (२९) कर्म-प्रकृतियो को वाधने पर एक सौ तीन की सत्ता वाले अविरतसम्य-ग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्तसयत जीवो के उनतीस प्रकृतिक पतद्-ग्रहस्थान मे एक सौ तीन प्रकृतिया सक्रमित होती है।

उनतीस प्रकृतियो को बाधने पर उन्ही अविरत आदि तीन गुण-स्थानवर्ती जीवो के तीर्थंकरनाम की बधावलिका बीतने के पूर्व एक सौ दो प्रकृतिया उन्ही उनतीस प्रकृतियो मे सक्रमित होती है। अथवा पूर्व मे कही गई द्वीन्द्रियादियोग्य उद्योत रहित उनतीस प्रकृतियो को बाधने पर एक सौ दो प्रकृतियो की सत्ता वाले एकेन्द्रियादि जीव उनतीस प्रकृतियो मे एक सौ दो प्रकृतिया सक्रमित करते है।

तीर्थंकरनाम सहित देवगतियोग्य उनतीस प्रकृतियो को बाधने पर छियानवै प्रकृतियो के सत्ता वाले अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्तसयत जीव उनतीस के पतद्ग्रहस्थान मे छियानवै प्रकृतिया सक्रमित करते है।

अपर्याप्तावस्था मे वर्तमान तीर्थंकरनाम की सत्ता वाले मिथ्या-दृष्टि नारक मनुष्यद्विक, पचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर मे से एक, शुभ-अशुभ मे से एक, सुभग-दुर्भग मे से एक, आदेय-अनादेय में से एक, यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से एक, छह सहननो मे से एक, छह सस्थानो में से एक, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, तैजस, कार्मण, निर्माण, औदारिकद्विक, सुस्वर-दु स्वर में से एक, पराघात, उच्छ्व।स, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति मे से एक, इस तरह मनुष्यगतिप्रायोग्य उनतीस प्रकृतियो को बाधने पर उनतीस में छियानवै प्रकृतिया सक्रमित करते है।

तीर्थंकरनामसहित देवगतिप्रायोग्य उनतीस प्रकृतियो का बध करने पर छियानवै प्रकृतियो के सत्ता वाले अविरतसम्यग्दृष्टि, देश-विरत और प्रमत्तविरत जीव तीर्थंकरनाम की बधावलिका बीतने के पहले उनतीस प्रकृतियो में छियानवै प्रकृतिया सक्रमित करते है तथा तिर्यंचगतिप्रायोग्य उनतीस प्रकृतियो का बध करने पर पचानवै प्रकृतियो की सत्ता वाले एकेन्द्रियादि जीवो के बधती हुई उनतीस प्रकृतियो में पचानवै प्रकृतिया सक्रमित होती है।

तेरानवै, चौरासी और बयासी प्रकृतिक इन तीन सक्रमस्थानो के

लिये पूर्व में तीस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान में जैसा कहा गया है, वैसा ही उनतीस के पतद्ग्रहस्थान मे भी समझ लेना चाहिये।

आठवे गुणस्थान के छठे भाग के बाद यश कीर्ति रूप बधती हुई एक प्रकृति के पतद्ग्रह मे ये आठ सक्रमस्थान सक्रमित होते हैं—एक सौ दो, एक सौ एक, पचानवै, चौरानवै, नवासी, अठासी, बयासी और इक्यासी प्रकृतिक, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक सौ तीन प्रकृति की सत्ता वाले के बध्यमान यश कीर्ति पतद्ग्रह होने से उसके बिना शेप एक सौ दो प्रकृतिया एक यश कीर्ति मे सक्रमित होती है। इसी प्रकार एक सौ दो की सत्ता वाले के एक सौ एक, छियानवै की सत्ता वाले के पचानवै और पचानवै की सत्ता वाले के चौरानवै प्रकृतिया सक्रमित होती हैं। आठवे गुणस्थान के छठे भाग के बाद मात्र एक यश कीर्तिनाम का ही बध होता हे, नामकर्म की अन्य किसी प्रकृति का बध नही होता हे और बध्यमान प्रकृति ही पतद्ग्रह होती है, इसलिये उसके सिवाय एक सौ दो आदि कर्मप्रकृतिया एक यश कीर्ति मे सक्रमित होती है। तथा—

एक सौ तीन प्रकृति की सत्ता वाले के क्षपकश्रेणि मे नौवे गुणस्थान में नामकर्म की नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, पचेन्द्रियजाति के सिवाय शेष जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत इन तेरह प्रकृतियो का क्षय होने के बाद उनके सिवाय और यश कीर्ति पतद्ग्रह होने से उसके अलावा नवासी कर्मप्रकृतिया यश कीर्ति मे सक्रमित होती हैं। इसी तरह एक सौ दो की सत्ता वाले के तेरह प्रकृतियो का क्षय होने के बाद अठासी, छियानवै की सत्ता वाले के बयासी और पचानवै की सत्ता वाले के नामकर्म की तेरह प्रकृतियो का क्षय होने के बाद इक्यासी प्रकृतिया यश कीर्ति मे सक्रमित होती हैं।

आठवे गुणस्थान के छठे भाग के बाद से अन्य कोई पतद्ग्रह नही होने से यश कीर्ति का सक्रम नही होता है, इसलिये सक्रमित होने वाली प्रकृतियो मे से उसे कम किया जाता है। तथा—

पढमचउक्क आइल्लवज्जिय दो अणिच्च आइल्ला ।
सक्मंहि अट्ठवीसे सामी जहसभव नेया ॥३२॥

शब्दार्थ—**पढमचउक्क**—प्रथमचतुष्क, **आइल्लवज्जिय**—आदि वर्जित, **दो**—दो, **अणिच्च आइल्ला**—अनित्यसज्ञा वाले आदि के, **सक्मंहि**—सक्रमित होने है, **अट्ठवीसे**—अट्ठाईस मे, **सामी**—स्वामी, **जहसभव**—यथासभव, **नेया**—जानना चाहिये ।

गाथार्थ—आदि वर्जित प्रथमसत्ताचतुष्क मे के तीन सत्तास्थान और अनित्यसज्ञा वाले आदि के दो सत्तास्थान अट्ठाईस मे सक्रमित होते है । स्वामी यथासभव जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—प्रथमसत्ताचतुष्क में से आदि का—एक सौ तीन प्रकृति का समूह रूप—सत्तास्थान छोडकर शेष तीन सत्तास्थान और अनित्य सज्ञा वाले आदि के तेरानवै और चौरासी प्रकृतिक ये दो, कुल पाच सत्तास्थान अट्ठाईस प्रकृतिक पतद्ग्रहस्थान मे सक्रमित होते है । इसका तात्पर्य यह है कि अट्ठाईस के पतद्ग्रहस्थान में एक सौ दो, छियानवै, पचानवै, तेरानवै और चौरासी प्रकृतिक ये पाच सक्रमस्थान सक्रमित होते है । जिनका अनुक्रम से वर्णन करते है—

नरकद्विक, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियद्विक, हु डकसस्थान, पराघात, उच्छ्‌वास, अप्रशस्तविहायोगति त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, तैजस, कार्मण और निर्माण, इन नरकप्रायोग्य अट्ठाईस प्रकृतियो को वाधने पर एक सौ दो की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अथवा मनुष्य के अट्ठाईस मे एक सौ दो प्रकृतिया सक्रमित होती है । अथवा—

तैजस, कार्मण, वर्णादिचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, देवद्विक, वैक्रियद्विक, पचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसस्थान, पराघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर मे से एक, शुभ-अशुभ मे से एक, सुभग, सुस्वर, आदेय और यश कीर्ति-

अयश कीर्ति मे से एक, इस प्रकार देवगतिप्रायोग्य अट्ठाईस प्रकृतियो का वध करने पर एक सौ दो की सत्ता वाले सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्या-दृष्टि मनुष्य, तिर्यंच के यथायोग्य रूप से अट्ठाईस मे एक सौ दो प्रकृतिया सक्रमित होती है। तथा—

जिसने पहले नरकायु का वध किया है और नरक मे जाने के सन्मुख हुआ है, ऐसे तीर्थंकरनाम के साथ छियानवै की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य के नरकयोग्य अट्ठाईस प्रकृति बाधते छियानवै प्रकृतिया अट्ठाईस मे सक्रमित होती है।

पचानवै के सक्रम का विचार एक सौ दो प्रकृतियो के सक्रम के अनुरूप जानना चाहिये। मात्र एक सौ दो के स्थान पर पचानवै प्रकृतिया कहना चाहिये तथा देवगतियोग्य पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियो को वाधने पर तेरानवै की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के वैक्रियसप्तक और देवद्विक की वधावलिका वीतने के वाद तेरानवै प्रकृतिया अट्ठाईस मे सक्रमित होती है, अथवा पचानवै की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के देव-गतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतिया वाधने पर देवद्विक की वधावलिका बीतने के पूर्व तेरानवै प्रकृतिया अट्ठाईस मे सक्रमित होती है, अथवा तेरानवै की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के नरकगतियोग्य अट्ठाईस कर्म-प्रकृतियो को वाधते वैक्रियसप्तक और नरकद्विक की वधावलिका बीतने के वाद तेरानवै प्रकृतिया अट्ठाईस मे सक्रमित होती है, अथवा पचानवै की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि के नरकगतियोग्य पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृति का वध होने पर नरकद्विक की वधावलिका बीतने के पूर्व अट्ठाईस मे तेरानवै प्रकृतिया सक्रान्त होती है।

तेरानवै की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि देवगतियोग्य अट्ठाईस प्रकृतिया बाधने पर देवद्विक और वैक्रियसप्तक की बधावलिका बीतने के पूर्व चौरासी प्रकृतिया अट्ठाईस मे सक्रमित करता है, अथवा तेरानवै की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि नरकयोग्य अट्ठाईस प्रकृतियो को बाधते नरकद्विक और वैक्रियसप्तक की बधावलिका बीतने के पूर्व अट्ठाईस मे चौरासी प्रकृतियो को सक्रमित करता है।

जिज्ञासु का प्रश्न है कि प्रकृतिसक्रम के विषय मे जीव सक्रमती प्रकृतियो मे से उनके परमाणु रूप दलिको को खीचकर पतद्ग्रहप्रकृति रूप सक्रमित नही करता है। अर्थात् सक्रमित होने वाली प्रकृति मे रहे हुए दलिको को खीचकर पतद्ग्रहप्रकृति रूप नहीं करता है। अतएव यदि ऐसा हो तो परमाणु रूप दलिको का सक्रम प्रकृतिसक्रम नही कहा जायेगा। क्योकि परमाणुओ का सक्रम तो प्रदेशसक्रम कहलाता है, किन्तु प्रकृतिसक्रम नहीं।

अव कदाचित यह कहा जाये कि प्रकृति यानी स्वभाव, उसका जो सक्रम, वह प्रकृतिसक्रम तो वह भी अयोग्य है। क्योंकि कर्मपरमाणुओ मे वर्तमान ज्ञानावरणत्वादि स्वभाव को अन्य मे सक्रमित करना अशक्य है। क्योकि पुद्गलो मे से केवल स्वभाव को खीचा नही जा सकता है। इस प्रकार से विचार करने पर प्रकृतिसक्रम घटित नही हो सकता है। इसलिये उसका प्रतिपादन करना वध्यापुत्र के सौभाग्य आदि के वर्णन करने जैसा है।

स्थिति, अनुभाग सक्रम के विषय मे भी जिनका कथन आगे किया जाने वाला है, वह भी अयुक्त है। विचार करने पर वे दोनो घटित नही हो सकते है। क्योकि नियतकाल पर्यन्त अमुक स्वरूप मे रहने को स्थिति कहते है और काल के अमूर्त होने से अन्य मे सक्रान्त करना, अन्य स्वरूप करना अशक्य है। अनुभाग रस को कहते है और रस तो परमाणुओ का गुण है। गुण गुणी के सिवाय अन्य मे सक्रान्त किये नही जा सकते है और गुणी-गुण वाले परमाणुओ का जो सक्रम होता है, वह प्रदेशसक्रम कहलाता है। इस प्रकार विचार करने पर स्थिति-सक्रम और अनुभागसक्रम भी घटित नही हो सकता है।

जिज्ञासु के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य उत्तर देते है—

सक्रमित होती प्रकृतियो के परमाणु जब पतद्ग्रहप्रकृति रूप होते हैं तब तद्गत स्वभाव, स्थिति और रस भी पतद्ग्रहप्रकृति के

स्वभाव, स्थिति और रस का अनुसरण करने वाले होते है। तात्पर्य इसका यह है कि जिस कर्मप्रकृति के जितने स्थानक और जितने रस वाले जितने कर्मपरमाणु जिस स्वरूप होते है, उतने स्थानक के उतने रस वाले परमाणु उतने काल पर्यन्त उस स्वरूप कार्य करते है। यानि जिस समय जिस कर्मप्रकृति के परमाणु पतद्‌ग्रह रूप होते है, उसी समय तद्‌गत स्वभाव, स्थिति और रस भी उसी रूप ही होता है। जिससे परमाणु मे से स्वभाव, स्थिति या रस को खीचकर अन्य में कैसे सक्रान्त किया जा सकता है ? इस प्रश्न को अवकाश ही नही रहता है।

अव इसी आशय को विस्तार से स्पष्ट करते है—

प्रकृति यानि ज्ञानादि गुण को आवृत आदि करने रूप स्वभाव, स्थिति यानि नियतकाल पर्यन्त अवस्थान और वह भी कर्मपरमाणुओ का जीव के साथ अमुक काल पर्यन्त रहने रूप अवधि-मर्यादा विशेष ही है, अनुभाग यानि अध्यवसाय के अनुसार उत्पन्न हुआ आवारक शक्ति रूप रस और इन तीनो के आधारभूत जो परमाणु वे प्रदेश है। इस प्रकार होने से परमाणुओ को जब परप्रकृति में सक्रमित करता है और सक्रमित करके जब परप्रकृति रूप करता है, तब प्रकृतिसक्रम आदि सभी घटित हो सकता है। वह इस प्रकार—

सक्रम्यमाण परमाणुओ के स्वभाव को पतद्‌ग्रहप्रकृति के स्वभाव के अनुरूप करना प्रकृतिसक्रम है। सक्रमित होते परमाणुओ की अमुक स्थिति काल पर्यन्त रहने रूप मर्यादा को पतद्‌ग्रहप्रकृति का अनुसरण करने वाली करना स्थितिसक्रम है, सक्रमित होते परमाणुओ के रस को—आवारक शक्ति को पतद्‌ग्रहप्रकृति के रस का अनुसरण करने वाला वना देना अनुभागसक्रम है और परमाणुओ का ही जो प्रक्षेपण-सक्रम वह प्रदेशसक्रम कहलाता है। अतएव जिस समय प्रदेशो का सक्रम होता है उसी समय तदन्तर्वर्ती स्वभाव आदि भी परिर्वातित हो जाते है, अर्थात् पतद्‌ग्रह का अनुसरण करने वाले हो जाते है।

इस प्रकार होने से पूर्व मे जो प्रश्न किया था कि प्रकृति यानि स्वभाव, उसका जो संक्रम प्रकृतिसंक्रम यह माना जाये तो वह अयुक्त है। इसका कारण यह है कि स्वभाव को परमाणुओं मे से खींचकर अन्यत्र संक्रमित नही किया जा सकता है आदि यह सब अयोग्य है। क्योंकि विवक्षित परमाणुओं मे से स्वभाव, स्थिति और रस खींचकर अन्य परमाणुओ मे प्रक्षिप्त किया जाये, वह प्रकृतिसंक्रम आदि कहलाता है, ऐसा हम नही कहते हैं, परन्तु विवक्षित परमाणुओ मे विद्यमान स्वभाव आदि को परिवर्तित करके पतद्ग्रहप्रकृति के स्वभाव आदि का अनुसरण करने वाला बना देने को प्रकृतिसंक्रम आदि कहते हैं। जिससे यहाँ कोई दोष नही है और इस प्रकार होने से ही एक दूसरे, विना एक दूसरे के रह नही सकते, एक के होने पर सब होते है। ऐसा जब हो तब सब कुछ घटित हो जाता है। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये स्वयं ग्रन्थकार आचार्य ने अपनी मूल टीका मे कहा है कि—

अमी प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशेषु सम्रमा बन्धा वा उदया वा समक-समकाल प्रवर्तन्ते इति केवल युगपदभिधातु न शक्यन्ते, वाच क्रम-वर्तित्वात्, ततो यो यदा सक्रमोवक्तुमिष्यते स तदानीं बुद्ध या पृथक्कृत्वा सप्रपञ्चमुच्यते।

अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के संबध मे बंध अथवा उदय अथवा संक्रम एक साथ ही प्रवर्तित होते है, यानि कि इन चारो का साथ ही बध अथवा उदय अथवा संक्रम होता है। किन्तु वाणी के क्रमपूर्वक प्रवर्तित होने से एक साथ इन चारो के स्वरूप का निर्देश नही किया जा सकता है। इसलिये जब जिसके स्वरूप को कहने की इच्छा होती है, तब उसको बुद्धि से पृथक् करके सविस्तार उसका कथन किया जाता है। जिससे यह सब कुछ संगत हो जाता है तथा स्थिति, रस और प्रदेश का जो समूह वह प्रकृति और उन तीनो का जो समुदाय वह प्रकृतिबंध (तस्समुदाओ पगईबन्धो) यह पूर्व मे कहा जा चुका है, अत उनका जो संक्रम वह प्रकृति-

सक्रम। इस प्रकार तीनो का समूह प्रकृतिवध होने से प्रकृति का जव सक्रम हो तव तीनो का ही सक्रम होता है।

अव यदि यह प्रश्न हो कि तीनो का समूह जव प्रकृतिसक्रम है तव प्रकृतिसक्रम भिन्न कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर यह है कि समुदायी-अवयवी से समुदाय-अवयव कथचित् भिन्न होते है। जैसे कि समस्त शरीर से हाथ-पैर आदि कुछ भिन्न होते है। उसी प्रकार स्थितिसक्रम आदि से प्रकृतिसक्रम कथचित् भिन्न है। स्थितिसक्रम और अनुभागसक्रम का स्वरूप पूर्व मे कहा जा चुका है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये।

स्थितिसक्रम आदि के सवन्ध मे उक्त स्पष्टीकरण करने पर भी जिज्ञासु द्वारा पुन किये गये प्रश्न का उत्तर--

दलियरसाण जुत्त मुत्तत्ता अन्नभावसकमण।
ठिईकालस्स न एव उउसकमण पिव अदुट्ठ ॥३४॥

शब्दार्थ - दलियरमाण—दलिक और रस का, जुत्त—योग्य है, मुत्तत्ता—मूर्त होने से, अन्नभावसकमण—अन्य रूप सक्रमण होना, ठिईकालस्स—स्थिति-काल का, न एव—इस प्रकार नही है, उउसकमण—ऋतुसक्रम, पिव—की तरह, अदुट्ठ—निर्दोप।

गाथार्थ—दलिक और रस मूर्त होने से उनका अन्य रूप सक्रमण योग्य हे, परन्तु स्थिति काल इस प्रकार न होने से उनका सक्रम योग्य नही है। (उत्तर) ऋतुसक्रम की तरह काल का सक्रम निर्दोप हे।

विशेषार्थ—जिज्ञासु का प्रश्न हे कि—पृथ्वी और जल की तरह कर्मपरमाणुओ और उनके अदर रहे रस के मूर्त होने से उनका अन्य रूप सक्रम हो तो वह योग्य हे। परन्तु काल अमूर्त हे अत काल का अन्य रूप मे सक्रम कैसे घटित हो सकता है ?

इसका उत्तर देते हुए आचार्य स्पष्ट करते है—

यह प्रश्न अयोग्य है। क्योंकि हम स्थिति का संक्रम मानते हैं काल का नहीं। स्थिति यानि अवस्था—कर्मपरमाणुओं का अमुक स्वरूप में रहना। वह स्थिति पूर्व में अन्य रूप थी किन्तु अब जब संक्रम होता है तब पतद्ग्रहरूप की जाती है। अर्थात् पहले जो पर-माणु जितने काल के लिये जो फल देने के लिये नियत हुए थे, वे पर-माणु उतने काल अन्य रूप में फल दें वैसी स्थिति में स्थापित किये जाते हैं, उसे हम स्थितिसंक्रम कहते हैं और इसका कारण प्रत्यक्ष-सिद्ध है। वह इस प्रकार—

जैसे तृण आदि के परमाणु जो पहले तृण आदि रूप में थे, वे नमक की खान में गिर जाने पर कालक्रम से नमक रूप हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि अन्य रूप में रही हुई वस्तु अन्य रूप में हो जाती है। वैसे ही अध्यवसाय के योग से अन्य रूप रहे हुए परमाणु अन्य रूप में हो जाते हैं। अथवा—

स्थिति, काल का संक्रमण हो, इसमें भी कोई दोष नहीं है। क्योंकि 'उउसकमण पिव अदुट्ठ' अर्थात् ऋतुसंक्रमण की तरह स्थिति-काल का संक्रमण भी निर्दोष है। अर्थात् वृक्षादि में स्वभाव से क्रमश और देवादिक के प्रयोग द्वारा एक साथ भी जैसे सभी ऋतुयें संक्रमित होती हैं। क्योंकि उस ऋतु के कार्य—उस-उस प्रकार के पुष्प और फल आदि रूप में दिखते हैं, वैसे ही यहाँ भी आत्मा स्ववीर्य के योग से कर्मपरमाणुओं में के सातादि स्वरूप के हेतुभूत काल को अलग करके असातादि के हेतुभूत काल को संक्रमित करती है—असातादि के हेतुभूत काल को करती है। इसलिये वह भी निर्दोष है।

इस प्रकार से प्रकृतिसंक्रम विषयक वक्तव्यता जानना चाहिये। अब स्थितिसंक्रम का विवेचन प्रारंभ करते हैं।

२. स्थितिसंक्रम

स्थितिसंक्रम को प्रारंभ करने के पूर्व प्रकृतिसंक्रम के सामान्य लक्षण को बाधित न करे, वैसा स्थितिसंक्रम का विशेष लक्षण कहते हैं।

स्थितिसक्रम-लक्षण व भेद

उवट्टण च ओवट्टण च पगतितरम्मि वा नयण।
वधे व अवधे वा ज सकामो इइ ठिईए ॥३५॥

शब्दार्थ—उवट्टण च ओवट्टण—उद्वर्तन अथवा अपवर्तन, च—तथा, पगतितरम्मि—प्रकृत्यन्तर मे, वा—अथवा, नयण—नयन (परिवर्तन), वधे व अवधे वा—वध हो अथवा न हो, ज—जो, सकामो—सक्रम, इइ—इस प्रकार ठिईए—स्थिति मे।

गाथार्थ—उद्वर्तन अथवा अपवर्तन तथा प्रकृत्यन्तरनयन इस प्रकार स्थिति में तीन प्रकार का सक्रम होता है और वह वध हो अथवा न हो, फिर भी होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतिसक्रम का विचार करने के पश्चात् यहाँ से स्थितिसक्रम का विवेचन करना प्रारम्भ किया है। स्थितिसक्रम का विचार करने के पाच अधिकार है—१ भेद, २ विशेपलक्षण, ३ उत्कृष्ट स्थितिसक्रमप्रमाण, ४ जघन्य स्थितिसक्रमप्रमाण[1] तथा ५ सादि-अनादि प्ररूपणा। उनमे से यहाँ भेद और विशेपलक्षण इन दो का निरूपण करते है। भेद का निरूपण इस प्रकार है—

भेद अर्थात् प्रकार। स्थिति के सक्रम के दो प्रकार है—१ मूल कर्मों की स्थिति का सक्रम, २ उत्तर प्रकृतियो की स्थिति का सक्रम। मूल कर्मो की स्थिति का सक्रम मूल कर्म आठ होने से आठ प्रकार का है और उत्तर प्रकृति की स्थिति का सक्रम मतिज्ञानावरण से वीर्यान्तराय पर्यन्त उत्तर प्रकृतिया एक सौ अट्ठावन होने से एक सौ अट्ठावन प्रकार का है।

अब विशेप लक्षण का निरूपण करने के लिये कहते है—

अल्पकाल पर्यन्त फल प्रदान करने के लिये व्यवस्थित हुए कर्माणुओ को दीर्घकाल पर्यन्त फल देने योग्य स्थिति मे स्थापित करना

१ इसके साथ ही सक्षेप मे स्वामित्व का भी सकेत किया जायेगा।

विशेपलक्षण सक्रम के सामान्य लक्षण का वाध किये सिवाय प्रवर्तित होता है, ऐसा समझना चाहिये। किन्तु सामान्यलक्षण के अपवाद रूप प्रवर्तित होता है ऐसा नही समझना चाहिये। जिससे सामान्यलक्षण मे मूल कर्मप्रकृतियो का परस्परसक्रम का प्रतिपेध किया होने से यहाँ—स्थिति मे भी मूलकर्म की स्थिति का अन्यप्रकृतिनयनसक्रम प्रवर्तित नही होता है। परन्तु उद्‌वर्तना और अपवर्तना ये दोनो ही प्रवर्तित होते है और उत्तरप्रकृतियो मे तीनो ही प्रवर्तित होते है।

इस प्रकार से भेद और विशेपलक्षण का प्रतिपादन करके उत्कृष्ट स्थितिसक्रम और जघन्य स्थितिसक्रम का ज्ञान करने के लिये प्रकृतियो का वर्गीकरण करते है।

प्रकृतियो का वर्गीकरण

जासि वधनिमित्तो उक्कोसो वध मूलपगईण।
ता वधुक्कोसाओ सेसा पुण सकमुक्कोसा ॥३६॥

शब्दार्थ—**जासि**—जिनका, **वधनिमित्तो**—वध के निमित्त से, **उक्कोसो**—उत्कृष्ट, **वध**—वध, **मूलपगईण**—मूलप्रकृतियो के, **ता**—वे, **वधुक्कोसाओ**—वधोत्कृप्टा, **सेसा**—शेप, **पुण**—पुन, **सकमुक्कोसा**—सक्रमोत्कृप्टा।

गाथार्थ—जिन उत्तर प्रकृतियो का मूल प्रकृतियो के वध के निमित्त से उत्कृप्ट स्थितिवध होता है, वे प्रकृतिया वधोत्कृष्टा और शेप प्रकृतिया सक्रमोत्कृष्टा कहलाती हैं।

विशेषार्थ—स्थितिसक्रम का प्रमाण वतलाने के लिये उत्तर प्रकृतियो का वर्गीकरण किया है—मूल कर्मप्रकृतियो का जितना उत्कृष्ट स्थितिवध कहा है, उतना ही उत्कृष्ट स्थितिवध जिन उत्तर प्रकृतियो का वधनिमित्तो से होता है, अर्थात वधकाल मे उतना ही वध हो सकता है, वे प्रकृतिया वधोत्कृष्टा कहलाती है। उन प्रकृतियो के नाम इस प्रकार है—

ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणनवक, अतरायपचक, आयुचतुप्टय,

उक्त उत्कृष्टा-प्रकृतिद्वय के उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम का परिमाण

बधुक्कोसाण ठिई मोत्तु दो आवली उ सकमइ ।
सेसा इयराण पुणो आवलियतिग पमोत्तूण ॥३७॥

शब्दार्थ—बधुक्कोसाण—बधोत्कृष्टा प्रकृतियो की, ठिइ—स्थिति, मोत्तु—छोडकर, दो आवली—दो आवलिका, उ—ही, सकमइ—सक्रमित होती है, सेसा—शेष, इयराण—इतरो (सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो) की, पुणो—पुन और, आवलियतिग—तीन आवलिका, पमोत्तूण—छोडकर न्यून ।

गाथार्थ—बधोत्कृष्टा प्रकृतियो की दो आवलिका स्थिति को छोडकर और इतरो (सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो) की तीन आवलिका स्थिति छोडकर शेष स्थिति सक्रमित होती है ।

विशेषार्थ—दोनों प्रकार की प्रकृतियो की कितनी-कितनी स्थिति सक्रमित होती है, यह स्पष्ट करते है —

बधोत्कृष्टा प्रकृतियो की बधावलिका और उदयावलिका रूप दो आवलिकाप्रमाण स्थिति को छोडकर शेष समस्त स्थिति सक्रमित होती है । दो आवलिका प्रमाण स्थिति छोडने का कारण यह है कि किसी भी कर्म के बध समय से लेकर एक आवलिका पर्यन्त उसमे किसी भी करण की प्रवृत्ति नही होती है । आवलिका बीतने के बाद ही करण की प्रवृत्ति होती है । अत ऐसा नियम होने से जिस समय उत्कृष्ट स्थिति का बध होता है, उस समय से लेकर एक आवलिका जाने के बाद, वह स्थिति सक्रम के योग्य होती है । इसी प्रकार कोई भी प्रकृति चाहे वह प्रदेशोदयवती हो या रसोदयवती हो उदय समय से लेकर आवलिका काल मे भोगे जाये उतने स्थानो को उदयावलिका कहते है और उसमे भी कोई करण लागू नही होता है, उससे ऊपर करण लागू होता है । अतएव बधावलिका और उदयावलिका हीन शेष समस्त स्थिति सक्रमित होती है ।

ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणनवक, असातावेदनीय और अतरायपचक की बधावलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की अर्थात्

बधावलिका और उदयावलिका, इस तरह दो आवलिका न्यून उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति अन्यत्र संक्रमित होती है। इसी प्रकार कषायो की चालीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण और नरकद्विकादि प्रकृतियो की बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दो आवलिका न्यून संक्रात होती है।

इतर—संक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों की बधावलिका, संक्रमावलिका और उदयावलिका, इस तरह तीन आवलिका रूप स्थिति को छोड़-कर शेष समस्त स्थिति संक्रमित होती है। वह इस प्रकार—

बधोत्कृष्टा प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति बधावलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त संक्रमोत्कृष्टा प्रकृति मे संक्रमित होती है और वह भी उसकी उदयावलिका से ऊपर संक्रात होती है। उदयावलिका से ऊपर संक्रमित होती है, इसलिये उस उदयावलिका को मिलाने पर कुल स्थिति की सत्ता दो आवलिका न्यून उत्कृष्ट स्थितिसत्ता प्रमाण होती है। जिस समय संक्रम होता है, उस समय से लेकर एक आवलिका पर्यन्त संक्रमित हुए दलिको मे भी कोई करण नही लगता है, इसलिये जिस समय संक्रमित हुई उस समय से लेकर संक्रमावलिका के जाने के बाद उसकी उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति अन्यत्र संक्रमित होती है। इसीलिये कहा है—'आवलियतिग पमोत्तूण'—संक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो की स्थिति कुल स्थिति मे से तीन आवलिकान्यून अन्यत्र संक्रमित होती है।

अब उक्त कथन को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते है—

नरकद्विक की बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति को बाधकर उसकी बधावलिका बीतने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति को मनुष्यद्विक को बाधने वाला मनुष्यद्विक मे उसकी उदयावलिका के ऊपर संक्रमित करता है। जिस समय नरक-द्विक की स्थिति मनुष्यद्विक मे संक्रमित की उस समय से लेकर संक्र-मावलिका के जाने के बाद उसकी उदयावलिका से ऊपर की समस्त

स्थिति को देवद्विक को बाधता हुआ उसमे सक्रमित करता है।

यहाँ बधावलिका बीतने के बाद उदयावलिका से ऊपर की स्थिति मनुष्यद्विक मे सक्रमित हुई और सक्रमावलिका के बीतने के बाद उदयावलिका से ऊपर की मनुष्यद्विक की स्थिति देवद्विक मे सक्रात हुई, यानि सक्रमोत्कृष्टा मनुष्यद्विक की तीन आवलिकाहीन स्थिति का ही देवद्विक में सक्रमण हुआ। इसी से ऊपर कहा है कि सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो की तीन आवलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति का ही अन्यत्र सक्रमण होता है।

यहाँ यद्यपि नरकद्विक की बंधावलिका और उदयावलिका तथा मनुष्यद्विक की सक्रमावलिका और उदयावलिका इस तरह चार आवलिका ज्ञात होती है, परन्तु नरकद्विक की उदयावलिका और मनुष्यद्विक की सक्रमावलिका का काल एक ही होने से कुल मिलाकर तीन आवलिका स्थिति ही कम होती है, अधिक नही। इसी प्रकार अन्य सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो के लिये भी समझना चाहिये।

तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक को अनुक्रम से सम्यग्दृष्टि आदि जीव और सयत बाधते है। उनको उनका उत्कृष्ट स्थितिबध अत कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण ही होता है तथा समस्त कर्म प्रकृतियो की सत्ता भी उनको अत कोडाकोडी से अधिक नही होती है, इसलिये सक्रम द्वारा भी उन प्रकृतियो की उत्कृष्ट स्थितिसत्ता अन्त कोडाकोडी से अधिक नही होती है।

यहाँ शका होती है कि क्या ये प्रकृतिया बधोत्कृष्टा है अथवा सक्रमोत्कृष्टा ? अतएव अब इस शका का समाधान करते है—

तित्थयराहाराण सकमणे बधसतएसु पि।
अतोकोडाकोडी तहावि ता सकमुक्कोसा ॥३८॥
एवइय सतया ज सम्मद्दिट्ठीण सव्वकम्मेसु।
आऊणि बधउक्कोसगाणि ज णण्णसकमण ॥३९॥

शब्दार्थ—तित्थयराहाराण—तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक मे, सकमणे—सक्रम होने पर, बधसतएसु वि —बध और सत्ता मे भी, अतोकोडाकोडी—अत कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण, तहावि—तो भी, ता—वे, सकमुक्कोसा—सक्रमोत्कृष्टा ।

एवइय—इतनी ही, सतया—सत्ता, ज—क्योंकि, सम्मद्दिट्ठीण—सम्यग्दृष्टियो के, सव्वकम्मेसु—सभी कर्मो की, आऊणि—आयु, बधउक्कोसगाणि—बधोत्कृष्टा, ज—क्योकि, णण्णसकमण—अन्य का सक्रमण नही होता है।

गाथार्थ—तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक मे सक्रम होने पर भी बध और सत्ता मे अन्त कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण ही स्थिति होती है, तो भी वे सक्रमोत्कृष्टा हैं ।

क्योकि सम्यग्दृष्टि जीवो के सभी कर्मो की इतनी ही सत्ता होती है। आयुकर्म बधोत्कृष्टा है, क्योकि उसमे अन्य का सक्रमण नही होता है ।

विशेषार्थ—तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक मे जब अन्य प्रकृतियो की स्थिति का सक्रम होता है, तब भी उन प्रकृतियो का स्थितिबध और सत्ता अन्त कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण ही होने से सक्रम भी अन्त कोडाकोडी से अधिक स्थिति का नही होता है। जिससे वे प्रकृतिया सक्रमोत्कृष्टा है, बधोत्कृष्टा नही है, यह समझना चाहिये ।

अत कोडाकोडी से अधिक बध और सत्ता नही होने का कारण यह है कि तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक के बधक अनुक्रम से सम्यग्दृष्टि आदि जीव और सयत मनुष्य है। उनको किसी भी प्रकृति का अत कोडाकोडी से अधिक स्थितिबध एव अत कोडाकोडी से अधिक सत्ता नही होती है ।

प्रथम गुणस्थान से जब जीव चतुर्थ आदि गुणस्थानो मे जाये तब अपूर्व शुद्धि के योग से स्थिति कम करके ही जाता है। कदाचित् उत्कृष्ट स्थिति सत्ता मे लेकर चतुर्थ गुणस्थान मे जाये, परन्तु उस

उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही रहती है। विशुद्धि के बल से अन्तर्मुहूर्त मे ही अन्त कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति कर देता है और बध तो अन्त कोडाकोडी सागरोपम ही होता है।

कदाचित् यहाँ यह शका हो कि वह उत्कृष्ट स्थिति सत्ता मे जब हो तब उस स्थिति का सक्रम होने से मनुष्यद्विकादि की तरह उत्कृष्ट स्थितिसत्ता क्यो नही होती है ? तो इसका उत्तर यह है कि उस समय तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक का बध ही नही होता है। जब उनका बध होता है तब किन्ही भी कर्मप्रकृतियो की अन्त कोडाकोडी सागरोपम से अधिक सत्ता नही होती है, जिससे यश कीर्तिनाम आदि की स्थिति का जब उनमे सक्रम होता है, तब अत कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण स्थिति का ही होता है, जिससे तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक की सत्ता अत कोडाकोडी सागरोपम से अधिक होती ही नही है।

मात्र बधस्थिति से सत्तागतस्थिति सख्यातगुणी होने से बध से सख्यातगुणी स्थिति का सक्रम होता है। अर्थात् तीर्थंकरनामकर्म और आहारकसप्तक के बध से उनकी सत्तागत स्थिति सख्यात गुणी होती है।[1] सामान्यत सम्यग्दृष्टि आदि जीवो के प्रत्येक प्रकृति के बध से उनकी सत्तागत स्थिति सख्यातगुणी होती है। तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक के बधकाल मे उनमे सक्रमित होने वाली स्वजातीय प्रकृति की जितनी उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है, वह यथायोग्य रूप से सक्रमित हो सकती है, इसीलिये तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक को सक्रमोत्कृष्टा प्रकृति कहा गया है।

प्रश्न—नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण है। अतएव जब आहारकसप्तक और तीर्थंकरनामकर्म की मनुष्यद्विक की तरह सक्रम द्वारा उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता बधावलिका

---

१ बधठिइउ सतकम्मठिइ सखेज्जगुणा।   —कर्मप्रकृतिचूर्णि

अर्थात् एक आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम घटित हो सकती है, तब फिर यह क्यो कहा है कि तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक की सक्रम द्वारा भी उत्कृष्ट स्थिति अत कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण ही होती है ?

उत्तर—यह प्रश्न तभी सम्भव है जब तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक बधता हो तब उसमें सक्रमित होने योग्य प्रकृति की सत्ता बीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण हो, परन्तु वैसा है नहीं । क्योकि आयुकर्म के सिवाय किसी भी कर्मप्रकृति की स्थिति की सत्ता सम्यग्दृष्टि जीव के अत कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण ही होती है, इससे अधिक नही । इसलिये सक्रम भी उतनी ही स्थिति का होता है ।

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि तीर्थंकरनाम और आहारकसप्तक मे उनके नधकाल मे अन्य प्रकृति की स्थिति सक्रमित होती है अन्यकाल में नही । इन प्रकृतियो का बध क्रमश विशुद्ध सम्यग्दृष्टि और सयत जीवो के ही होता है । उनको आयु के सिवाय समस्त कर्मों की सत्ता अन्त कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण ही होती है, इससे अधिक नही है । इसीलिये सक्रम भी उतनी ही स्थिति का होता है । यदि उनको अत कोडाकोडी से अधिक वध हाता तो अधिक स्थिति की सत्ता सभव हो सकती है, परन्तु बध ही अत कोडाकोडी सागरोपम का होता है, अधिक होता नही । मात्र वध से सत्ता सख्यातगुणी होती है । इसका पूर्व में सकेत किया जा चुका है ।

आयुकर्म की चारो प्रकृतिया बधोत्कृष्टा समझना चाहिये, सक्रमोत्कृष्टा नही । क्योकि उनमे परस्पर या अन्य किसी भी कर्मप्रकृति के दलिको का सक्रम नही होता है ।

कदाचित् यहाँ प्रश्न हो कि मनुष्य, तिर्यंच आयु का तो स्वमूलकर्म के समान वध नही होने से उनको बधोत्कृष्टा क्यो माना है ? तो इसके लिये समझना चाहिये कि यदि सक्रमोत्कृष्टा माना जाये तो यह भ्रम हो सकता है कि आयु में अन्य प्रकृति के दलिको का सक्रम

होता है, लेकिन ऐसा भ्रम न हो जाये, इसलिये बधोत्कृष्टा मे गणना की है। क्योकि चारो आयु में परस्पर सक्रम या किसी अन्य प्रकृति के दलिक का सक्रम होता ही नही है और बधोत्कृष्टा और सक्रमोत्कृष्टा के अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा भेद है नही कि जिसमे उसको गर्भित किया जा सके, इसलिये या तो दोनो में ही नही गिनना चाहिये या फिर बधोत्कृष्टा मे ग्रहण करना चाहिये। यहाँ जो बधोत्कृष्टा में गिना है, वह युक्तियुक्त ही है।

इस प्रकार जिन कर्मप्रकृतियो का पतद्ग्रह प्रकृतियो का बध होने पर सक्रम होता है, उनकी स्थिति के सक्रम का प्रमाण बताया। अब जिन प्रकृतियो का पतद्ग्रहप्रकृति के बध के अभाव मे भी सक्रम होता है, उनकी स्थिति के सक्रम का प्रमाण वतलाते है—

गतु सम्मो मिच्छतस्सुक्कोस ठिइ च काऊण।
मिच्छियराणुक्कोसं करेति ठितिसक्रम सम्मो ॥४०॥
अतोमुहुत्तहीण आवलियदुहीण तेसु सट्ठाणे।
उक्कोससकमपहू उक्कोसगबधगण्णासु ॥४१॥

शब्दार्थ—गतु—जाकर, सम्मो—सम्यग्दृष्टि, मिच्छतस्सुक्कोस—मिथ्यात्व की उत्कृष्ट, ठिइ—स्थिति, च—और, काऊण—करके, बाधकर, मिच्छियराणुक्कोस—मिथ्यात्व से इतरो मे उत्कृष्ट, करेति—करता है, ठिति-सकम—स्थितिसक्रम, सम्मो—सम्यग्दृष्टि।

अतोमुहुत्तहीण—अन्तर्मुहूर्त न्यून, आवलियदुहीण—आवलिकाद्विक हीन, तेसु—उनमे, सट्ठाणे—स्वस्थान मे, उक्कोससकमपहू—उत्कृष्ट सक्रम का स्वामी, उक्कोसगबधगण्णासु—अन्य प्रकृतियो का उत्कृष्ट बधक।

गाथार्थ—कोई (क्षायोपशमिक) सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व में जाकर मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति को बाधकर सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे जाये, वहाँ वह सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व से इतरो (सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय) मे मिथ्यात्वमोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सक्रमित करता है।

सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की अन्तर्मुहूर्त और आवलिकाद्विक-हीन उत्कृष्ट स्थिति का संक्रम होता है। उनमें से सम्यक्त्व का स्व-स्थान में और मिश्रमोहनीय का उभय में होता है। शेष प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति के संक्रम का स्वामी उस-उस प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति का बंधक समझना चाहिये।

विशेषार्थ—पतद्ग्रहप्रकृति के अभाव में भी जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम संभव है, उनका यहाँ संकेत किया है। जो इस प्रकार है—

कोई जीव पहले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् मिथ्यात्व में जाये और मिथ्यात्व में जाकर उत्कृष्ट संक्लेश में रहते मिथ्यात्वमोहनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध करे और उत्कृष्ट स्थितिबंध करने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थान में रहे, फिर अन्तर्मुहूर्त बीतने के बाद विशुद्धि के बल से सम्यक्त्व प्राप्त करे, तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर वह जीव अन्तर्मुहूर्त न्यून सत्तर कोडा-कोडी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्टस्थिति को सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का बंध नहीं होने पर भी उनमें संक्रमित करता है। इस प्रकार मिथ्या-त्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्त न्यून उत्कृष्ट स्थिति का संक्रम सम्यग्दृष्टि को होता है और वह मिश्र एवं सम्यक्त्व मोहनीय में होता है।

यहाँ क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को ग्रहण करने का कारण यह है कि उसके मिथ्यात्वमोहनीय के तीन पुंज सत्ता में होते है। पहले गुण-स्थान में से करण करके एवं करण किये सिवाय, इस तरह दो प्रकार से सम्यक्त्व प्राप्त करता है। करण करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है, वह तो अन्त:कोडाकोडी की सत्ता लेकर ऊपर जाता है, लेकिन जो करण किये बिना ही आरोहण करता है, वह ऊपर कहे अनुसार उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता लेकर चतुर्थ गुणस्थान में जाता है और अन्त-र्मुहूर्त न्यून उत्कृष्ट स्थिति संक्रमित करता है। उत्कृष्ट स्थितिबंध करके अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पहले गुणस्थान में रहकर ही सम्यक्त्व प्राप्त

करता है। इसीलिये अन्तर्मुहूर्त न्यून उत्कृष्टस्थिति का सक्रम होता है, ऐसा कहा है। चतुर्थ गुणस्थान मे जाने के बाद अन्तर्मुहूर्त ही उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता रहती है, उतने काल मे विशुद्धि के बल से अन्त-कोडाकोडी सागरोपम से उपरान्त की स्थिति का क्षय करता है, जिससे अन्तर्मुहूर्त के बाद अन्त कोडाकोडी सागरोपम से अधिक स्थिति की सत्ता नहीं होती है।

इस प्रकार से मिथ्यात्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्त न्यून उत्कृष्ट स्थिति का सक्रम जानना चाहिये और उसका स्वामी सम्यग्दृष्टि है यह बताया। अब सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के उत्कृष्ट स्थिति-सक्रम का प्रमाण और उसके स्वामी तथा अन्य सभी प्रकृतियो की उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम के स्वामियो का प्रतिपादन करते है—

कोई क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व मे जाकर तीव्र सक्लेश से मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति बाधकर अतर्मुहूर्त के बाद अविरतसम्यक्त्वगुणस्थान मे जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त न्यून और उदया-वलिका से ऊपर की उस सत्तर कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय मे उनकी उदयाव-लिका से ऊपर सक्रमित करता है। उदयावलिका से ऊपर सक्रमित करने वाला होने से उस उदयावलिका को मिलाने पर अन्तर्मुहूर्त न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण सम्यक्त्वमोहनीय एव मिश्र-मोहनीय की उत्कृष्ट स्थितिसत्ता होती है। मिथ्यात्वमोहनीय की स्थिति का जिस समय सक्रम हुआ, उस समय से सक्रमावलिका सकल करण के अयोग्य होने से उस एक आवलिका के जाने के पश्चात् उदयावलिका से ऊपर की सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति का स्वस्थान मे अपवर्तनासक्रम होता है और मिश्रमोहनीय का स्वस्थान मे अप-वर्तनासक्रम होता है एव सम्यक्त्वमोहनीय मे सक्रम होता है।

अपनी-अपनी दृष्टि का अन्यत्र सक्रमण नही होता है तथा चारित्र-मोहनीय और दर्शनमोहनीय का परस्पर सक्रम नही होता है, इस नियम के अनुसार सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वमोहनीय को किसी परप्रकृति

मे सक्रमित नही करता है। जिससे उसमें एक अपवर्तनासक्रम ही होता है। स्थिति को कम करने रूप अपवर्तनासक्रमण स्व मे ही होता है। इस प्रकार सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति का सक्रम दो आवलिका अधिक अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होता है और उनका स्वामी वेदक सम्यग्दृष्टि है।

देवायु, जिननाम और आहारकसप्तक के सिवाय शेष बधोत्कृष्टा अथवा सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो के उन-उन प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति बाधने वाले उत्कृष्ट स्थितिसक्रम के स्वामी है और वे प्राय[1] सज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव ही है तथा देवायु की उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम का स्वामी अप्रमत्तसयतगुणस्थान के सन्मुख हुआ प्रमत्तसयत है। पूर्व मे जिसने जिननामकर्म बाधा हो ऐसा नरक के सन्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जिननाम की उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम का स्वामी है तथा आहारकसप्तक की उत्कृष्ट स्थिति प्रमत्तगुणस्थान के अभिमुख हुआ अप्रमत्तसयत बाधता है और वह बधावलिका के जाने के बाद सक्रमित करता है।[2]

इस प्रकार से समस्त प्रकृतियो की उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम के स्वामी जानना चाहिये।

---

१ यहाँ प्राय शब्दप्रयोग का सभव कारण यह हो सकता है कि जिन परिणामो से मिथ्यात्व की सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बाधे वैसे परिणामो से अन्य ज्ञानावरणादि की भी उत्कृष्ट स्थिति बध सकती है। जैसे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिसत्ता लेकर चौथे गुणस्थान मे जाता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त न्यून उत्कृष्ट स्थिति सक्रमित करता है, वैसे ही अन्तर्मुहूर्त न्यून उत्कृष्ट स्थिति का सक्रम हो सकता है। तत्त्व केवलिगम्य है।

२ आहारकसप्तक की उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम का स्वामी प्रमत्तसयत है, क्योकि अप्रमत्तसयतगुणस्थान से प्रमत्तसयतगुणस्थान मे जाते हुए के उसकी उत्कृष्ट स्थिति बधती है, ऐसा प्रतीत होता है।

उत्कृष्ट संक्रमस्थिति एवं यत्स्थिति (२)

प्रकृतियां	संक्रमस्थितिप्रमाण	यत्स्थितिप्रमाण
मिथ्यात्वरहित शेष बधोत्कृष्टा	आवलिकाद्विकहीन	एक आवलिकाहीन
सक्रमोत्कृष्टा	आवलिकात्रिकहीन	आवलिकाद्विकहीन
मिथ्यात्व	अतर्मुहूर्तहीन ७० को को सागरो	अन्तर्मु हीन ७० को को सागरो
सम्यक्त्व मिश्र मोहनीय	आवलिकाद्विकाधिक अन्तर्मु हीन ७० को को सागरोपम	सावलिकान्तर्मुहूर्तहीन ७० को को सागरोपम

अब आयुकर्म की यत्स्थिति एव जघन्य स्थितिसक्रम के प्रमाण का प्रतिपादन करते है।

आयुकर्म की यत्स्थिति : जघन्य स्थितिसक्रमप्रमाण

साबाहा आउठिई आवलिगूणा उ जट्ठिति सट्ठाणे।
एक्का ठिई जहण्णो अणुदइयाण निहयसेसा ॥४३॥

शब्दार्थ—साबाहा—अवाधासहित, आउठिई—आयु की स्थिति, आवलिगूणा—आवलिकान्यून, उ—और, जट्ठिति—यत्स्थिति, सट्ठाणे—स्वस्थान मे, एक्का—एकस्थानक का, ठिई—स्थिति, जहण्णो—जघन्य, अणुदइयाण—अनुदयवती प्रकृतियो का, निहयसेसा—हतशेष।

गाथार्थ—स्वस्थानसक्रम हो तब आवलिकान्यून अबाधासहित जो स्थिति वह आयुकर्म की यत्स्थिति है तथा एकस्थानक का सक्रम एव अनुदयवती प्रकृतियो की हतशेष स्थिति का सक्रम जघन्यसक्रम कहलाता है।

विशेषार्थ—आयु मे मात्र उद्वर्तना-अपवर्तना ही होती है किन्तु अन्यप्रकृतिनयनसक्रम नही होता है। उसमे भी व्याघातभाविनी अप-

वर्तना उस-उस आयु का जब उदय हो तभी होती है,[1] इसीलिये उसकी अपेक्षा यहाँ आयु की यत्स्थिति का निरूपण नही किया है, परन्तु निर्व्याघातभावी अपवर्तना या जो उदय न हो, तब भी होती है, उसकी अपेक्षा और जब बध प्रवर्तमान हो तब प्रथम आदि समय मे बधी हुई लता की बधावलिका के बीतने के बाद उद्वर्तना भी होती है, उसकी अपेक्षा यत्स्थिति का निरूपण किया है।

इस प्रकार जब निर्व्याघातभावि अपवर्तना और उद्वर्तना रूप स्वस्थानसक्रम होता है, तब आयु की यत्स्थिति का—समस्त स्थिति का प्रमाण आवलिकान्यून अबाधासहित उत्कृष्टस्थिति जितना है। जैसे कि पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला कोई जीव दो भाग जाने के बाद बराबर तीसरे भाग के प्रथम समय मे तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु बाधे तो उसका बधावलिका के बीतने के बाद उपर्युक्त दोनो मे से कोई भी सक्रमण हो सकता है। जिससे उस एक आवलिकाहीन पूर्वकोटि के तीसरे भाग अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण कुल स्थिति सभव है।

इस प्रकार से उत्कृष्ट स्थिति के सक्रम का प्रमाण, उसके स्वामी और यत्स्थिति का प्रमाण जानना चाहिये। अब जघन्य स्थिति के सक्रम का प्रमाण बतलाते है।

जघन्य स्थितिसक्रम

उदयवती प्रकृतियो की सत्ता मे समयाधिक आवलिका शेष रहे तब एक समय प्रमाण स्थिति का अतिम जो सक्रम होता है तथा अनु-

---

१ यहाँ जो उस-उस आयु की उदय समय मे व्याघातभाविनी अपवर्तना बताई है, वह अपवर्तनीय आयु मे समझना चाहिये। अनपवर्तनीय आयु मे तो व्याघातभाविनी अपवर्तना होती ही नही है, निर्व्याघातभाविनी अपवर्तना होती है।

दयवती प्रकृतियो की क्षय होते-होते जो स्थिति शेप रहे, उसका जो अतिम सक्रम वह जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है ।

यहाँ उदयवती प्रकृतियो की अपने-अपने क्षय के समय समयाधिक आवलिका सत्ता मे शेप रहे तव ऊपर की समयप्रमाण स्थिति को जघन्य स्थितिसक्रम कहा है । परन्तु उदयवती समस्त प्रकृतियो मे अपने-अपने क्षय के समय समयप्रमाण स्थिति का सक्रम घटित नहीं होता है । क्योकि चरमोदय वाली नामकर्म की नौ, उच्चगोत्र एव वेदनीयद्विक इन बारह प्रकृतियो का अयोगिकेवली गुणस्थान मे उदय होता है, किन्तु वहाँ सक्रम नही होता है । इसी प्रकार नपु सकवेद और स्त्रीवेद का जघन्य स्थितिसक्रम समय प्रमाण आता नही है । परन्तु ऊपर कही गई उक्त चौदह प्रकृतियो के सिवाय शेप बीस उदयवती प्रकृतियो का और तदुपरान्त निद्रा एव प्रचला इन बाईस प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम अपवर्तना की अपेक्षा एक समय प्रमाण घटित होता है । कर्मप्रकृति सक्रमकरण इसी ग्रथ मे भी आगे इसी प्रकार बताया गया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ सभी उदयवती प्रकृतियो का सामान्य से निर्देश किया गया है । यदि अन्य कोई कारण हो तो वह बहुश्रुतगम्य है, जिसका विद्वज्जन स्पष्टीकरण करने की कृपा करें ।

इस प्रकार से जघन्य स्थितिसक्रम का प्रमाण जानना चाहिये । अब जघन्य स्थितिसक्रम के स्वामियो का निर्देश करते है ।

जघन्य स्थितिसंक्रम-स्वामी

जो जो जाण खवगो जहण्णठितिसकमस्स सो सामी ।
सेसाण तु सजोगी अतमुहुत्त जओ तस्स ॥४४॥

शब्दार्थ—**जो-जो**—जो-जो, **जाण**—जिनका, **खवगो**—क्षपक, **जहण्णठितिसकमस्स**—जघन्य स्थितिसक्रम का, **सो**—वह, **सामी**—स्वामी, **सेसाण**—शेप का, **तु**—तो, **सजोगी**—सयोगिकेवली, **अतमुहुत्त**—अन्तर्मुहूर्त, **जओ**—क्योकि, **तस्स**—उसकी ।

गाथार्थ—अन्यप्रकृति का उदयावलिका में जो अतिम प्रक्षेप होता है, उसे जघन्य स्थितिसक्रम कहते है। उसका प्रमाण यह है।

विशेषार्थ—गाथा में जघन्य स्थितिसक्रम का लक्षण बतलाकर विभिन्न प्रकृतियो के जघन्य स्थितिसक्रम के प्रमाण का सकेत करने की सूचना दी है।

जघन्य स्थितिसक्रम का लक्षण इस प्रकार है—किसी विवक्षित प्रकृति की स्थिति का पतद्ग्रहप्रकृति की उदयावलिका मे जो अतिम प्रक्षेप-सक्रम होता है उसे तथा अपनी ही प्रकृति सम्वन्धी उदयावलिका मे अर्थात् अपनी ही उदयावलिका में जो अतिम सक्रम होता हे, उसे जघन्य स्थितिसक्रम कहते है। इसका तात्पर्य यह हे कि क्षय करने पर अत में जितनी स्थिति का अन्यप्रकृतिनयनसक्रम[1] द्वारा—सक्रमकरण द्वारा पर-प्रकृति की उदयावलिका में सक्रम होता है वह अथवा अपवर्तना-सक्रम द्वारा अपनी ही उदयावलिका मे जो सक्रम होता है, वह जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उदयावलिका से बाहर के भाग मे जो सक्रम होता है, वह तो नही किन्तु अत में जितनी स्थिति का उदयावलिका मे प्रक्षेप होता है वह जघन्य स्थितिसक्रम हे। यह जघन्य स्थितिसक्रम का लक्षण निद्राद्विक को

---

१ यद्यपि अन्यप्रकृतिनयनसक्रम द्वारा जितने स्थानो का सक्रम होता है, उसमे कुछ परिवर्तन नही होता है अर्थात् बाधते समय जिस काल मे जिस प्रकार का फल देना नियत हुआ हो, सक्रम होने के बाद उस काल मे जिसमे सक्रम हुआ उसके अनुरूप ही प्रकृति फल देती है परन्तु अत में जितनी जघन्य स्थिति का सक्रम होता है वह स्थिति सकुचित होकर उदयावलिका में सक्रमित होती है। अर्थात् उदयावलिका के काल मे फल दे, वैसी हो जाती है।

उदयावलिका से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति को अपवर्तनाकरण के द्वारा नीचे के अपने ही उदयावलिका के समयाधिक तीसरे भाग मे सक्रमित करता है। वह सज्वलन लोभ का जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है और उनका स्वामी सूक्ष्मसपरायगुणस्थानवर्ती जीव है।

इसी प्रकार क्षीणमोहगुणस्थान मे ज्ञानावरणपचक, अतरायपचक, चक्षुदर्शनावरण आदि दर्शनावरणचतुष्क इन चौदह प्रकृतियो की सत्ता मे समयाधिक एक आवलिका स्थिति शेष रहे तब उदयावलिका से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति को अपवर्तनासक्रम द्वारा अपनी ही उदयावलिका के नीचे के समयाधिक तीसरे भाग मे जो सक्रमण होता है, वह उन प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम है और उसका स्वामी क्षीणमोहगुणस्थानवर्ती जीव है। तथा—

चारो आयु की स्थिति भोगते-भोगते सत्ता मे जब समयाधिक आवलिका शेष रहे तब उदयावलिका से ऊपर की उस समयप्रमाण स्थिति को अपनी-अपनी उदयावलिका के नीचे के समयाधिक तीसरे भाग मे जो सक्रम होता है, वह उनका जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है और उसका स्वामी उस-उस आयु का उदय वाला जीव है।

जघन्य समयप्रमाण स्थिति को जीव तथास्वभाव से उदयावलिका के प्रथम समय से—उदय समय से लेकर समयाधिक तीसरे भाग मे सक्रमित करता है। जैसे कि आवलिका के नौ समय मान ले तो आदि के चार समय मे सक्रमित करता है, अन्य समयो मे सक्रमित नही करता है।

उपर्युक्त समस्त प्रकृतियो को यत्स्थिति समयाधिक आवलिका-प्रमाण जानना चाहिये। तथा—

खविऊण मिच्छमीसे मणुओ सम्मम्मि खवगसेसम्मि।

चउगइउ तओ होउ जहण्णठिनिसकमस्सामी ॥४७॥

शब्दार्थ—खविऊण—क्षय करके, मिच्छमीसे—मिथ्यात्व और मिश्र-मोहनीय को, मणुओ—मनुष्य, सम्मम्मि—सम्यक्त्वमोहनीय, खवगसे—

क्षपितशेप, चउगइउ—चतुर्गतिक—चारो गतियो मे से किसी भी गति वाला, ताओ—तव फिर, होउ—होता है, जहण्णठितिसकमस्सामी—जघन्य स्थिति-सक्रम का स्वामी।

गाथार्थ—मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का क्षय करके जव मनुष्य सम्यक्त्वमोहनीय क्षपितशेप हो तव चारो गति मे से किसी भी गति मे जाकर उसकी समय प्रमाण जघन्य स्थिति सक्रमित करता है और उसका स्वामी चारो गतियो मे से किसी भी गति का जीव होता है।

विशेषार्थ—गाथा मे सम्यक्त्वमोहनीय के जघन्य स्थितिसक्रम का प्रमाण एव उसके स्वामी का निर्देश किया है—

जघन्यत आठ वर्ष से अधिक आयु वाला कोई मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते हुए मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का सर्वथा क्षय करके सम्यक्त्वमोहनीय को सर्वापवर्तना द्वारा अपवर्तित करता है।[1] इस प्रकार जब सर्वापवर्तना होती है तब सम्यक्त्वमोहनीय क्षपितशेष होती है। इस प्रकार जब सम्यक्त्वमोहनीय क्षपितशेष हो तब चारो मे से चाहे किसी भी एक गति मे जा सकता है, जिससे उस गति मे जाकर वहाँ उसकी समयाधिक आवलिका शेष रहे तव उदयावलिका से ऊपर की उस समय प्रमाण स्थिति को अपवर्तना-सक्रम द्वारा अपनी आवलिका के समयाधिक तीसरे भाग मे सक्रमित करता है, जो उसका जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है और स्वामी चारो

---

१ सर्वापवर्तना द्वारा अपवर्तित करता है, यानि व्याघातभाविनी अपवर्तना द्वारा जितनी स्थिति कम हो सकती है, उतनी करता है। अब जितनी स्थिति सत्ता मे रही उतनी स्थिति लेकर मरण प्राप्त कर सकता है और चाहे जिस गति मे परिणामानुसार जा सकता है इसी कारण उसके जघन्य स्थितिसक्रम का स्वामी चार मे से किसी भी गति का जीव हो सकता है।

गतियो मे से किसी भी गति मे वर्तमान जीव है तथा यत्स्थिति समयाधिक आवलिका है। तथा—

> निद्दादुगस्स साहिय आवलियदुग तु साहिए तसे।
> हासाईण सखेज्ज वच्छरा ते य कोहम्मि ॥४८॥

शब्दार्थ—निद्दादुगस्स—निद्राद्विक की, साहिय आवलियदुग—साधिक आवलिकाद्विक, तु—और, साहिए तसे—साधिक तीसरे भाग मे, हासाईण—हास्यादि का, सखेज्ज—सख्यात, वच्छरा—वर्षप्रमाण, ते—वह, य—और कोहम्मि—क्रोध मे।

गाथार्थ—निद्राद्विक की समय मात्र स्थिति को जो साधिक तीसरे भाग मे सक्रमित किया जाता है, वह उसका जघन्य स्थितिसक्रम है। साधिक आवलिकाद्विक यत्स्थिति है तथा हास्यादि का जो सख्यात वर्ष प्रमाण सक्रम होता है, वह उनका जघन्य स्थितिसक्रम है और वह क्रोध में होता है।

विशेषार्थ—निद्रा और प्रचला रूप निद्राद्विक की अपनी स्थिति की ऊपर की एक समयमात्र स्थिति को अपने सक्रम के अत में उदयावलिका के नीचे के समयाधिक तीसरे भाग मे जो सक्रमित किया जाता है, वह उसका जघन्य स्थितिसक्रम है। जिसका तात्पर्य इस प्रकार है—

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थगुणस्थान में क्षय करते-करते निद्राद्विक की आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष रहे तब सब से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा नीचे के उदय समय से लेकर उदयावलिका के समयाधिक तीसरे भाग में जो सक्रमित किया जाता है, वह निद्राद्विक का जघन्य स्थितिसक्रम कहलाता है और उसका स्वामी क्षीणकषायवीतराग जीव है। उस समय यत्स्थिति आवलिका के असख्यातवे भाग अधिक दो आवलिका है।

यहाँ वस्तुस्वभाव ही यह है कि निद्राद्विक की आवलिका के असख्यातवे भाग अधिक दो आवलिकाप्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष

रहे तब ऊपर की एक समय प्रमाण स्थिति अपवर्तनाकरण द्वारा सक्रमित होती है, परन्तु मतिज्ञानावरणादि की तरह समयाधिक आवलिका शेष रहे तब नही। मतिज्ञानावरणादि मे समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति की सत्ता शेप रहे तव तक अपवर्तना होती है। लेकिन निद्राद्विक मे आवलिका के असख्यातवे भाग अधिक दो आवलिका रहे, वहाँ तक होती है और इसका कारण जीव-स्वभाव है।

अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान मे वर्तमान क्षपक के हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा रूप हास्यषट्क का क्षय होते सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति सत्ता में शेष रहती है, तो उस सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति का सज्वलन क्रोध मे जो सक्रम होता है वह उसका जघन्य स्थितिसक्रम है। उसका स्वामी नौवे गुणस्थानवर्ती जीव है। उस समय उसकी यत्स्थिति अन्तमुहूर्त अधिक सख्यात वर्ष प्रमाण है। इसका कारण यह है कि अन्तरकरण मे रहते हुए भी वह सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति को सज्वलन क्रोध में सक्रमित करता है। अन्तर-करण मे दलिक नही होते हैं, किन्तु उससे ऊपर होते है। क्योकि वह दलिकरहित शुद्ध स्थिति है, इसलिये अन्तरकरण के काल से अधिक सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति जघन्य स्थितिसक्रमकाल में हास्य-षट्क की यत्स्थिति है। इस सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति को अपवर्तना-करण द्वारा अपवर्तित करके सज्वलन क्रोध की उदयावलिका में सक्रमित करता है यह समझना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो स्थिति बहुत होने से उदयावलिका के ऊपर के भाग में प्रक्षेप हो और वैसा हो तो अन्यप्रकृति का उदयावलिका मे जो अन्तिम सक्रम होता है वह जघन्य सक्रम कहलाता है[1], इस पूर्वोक्त वचन से विरोध आता है। इसलिये सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति को अपवर्तित करके उदया-वलिका में सक्रमित करता है, ऐसा मानना चाहिये। तथा—

---

1 गाथा ४५

पुंसंजलणाण ठिई जहन्नया आवलीदुगेणूणा।
अंतो - जोगंतीणं पलियासखंस इयराण ॥४६॥

शब्दार्थ—पुसजलणाण—पुरुपवेद और सज्वलन कपायो की, ठिई—स्थिति, जहन्नया—जघन्य, आवलीदुगेणूणा—आवलीद्विकन्यून, अतो—अन्तमुंहूर्त, जोगतीण—सयोगिगुणस्थान मे अन्त होने वाली, पलियासखस—पल्योपम का असख्यातवा भाग, इयराण—इतर प्रकृतियो की।

गाथार्थ—पुरुपवेद और सज्वलन कपायो की अन्तमुंहूर्त न्यून जो जघन्य स्थिति है वह उनका जघन्य स्थितिसक्रम है। यत्स्थिति अन्तमुंहूर्त सहित दो आवलिकान्यून जघन्य स्थिति है। सयोगिगुणस्थान मे अन्त होने वाली प्रकृतियो की अन्तमुंहूर्त और इतर प्रकृतियो की पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति का जघन्य स्थितिसक्रम होता है।

विशेपार्थ—पुरुपवेद का आठ वर्प, सज्वलन क्रोध का दो मास सज्वलन मान का एक मास और सज्वलन माया का पन्द्रह दिन प्रमाण जो जघन्य स्थितिवध पूर्व मे कहा है, वही जघन्य स्थितिवध अन्तमुंहूर्त न्यून उन प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम है।

अन्तमुंहूर्त न्यून कहने का कारण यह है कि अवाधारहित स्थिति अन्यत्र सक्रमित होती है। क्योकि अवाधा काल मे दल रचना नही होती है, किन्तु उससे ऊपर के समय से होती है, यानि अवाधाकाल मे ऊपर के स्थानो मे कर्मदलिक सभव हैं। जघन्य स्थितिवध हो तव अवाधा अन्तमुंहूर्त प्रमाण होती है, इसीलिये अन्तमुंहूर्तन्यून स्थिति वध पुरुपवेद आदि प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम है। जघन्य स्थितिसक्रमकाल मे उनकी यत्स्थिति दो आवलिकान्यून अवाधा सहित आठ वर्प आदि जघन्य स्थितिवध प्रमाण जानना चाहिये।

दो आवलिकान्यून क्यो ? तो इसका उत्तर यह है कि वधविच्छेद के समय वधी हुई उन पुरुपवेद आदि प्रकृतियो की लता का वधावलिका जाने के वाद सक्रमित होना प्रारम्भ होता है, जिस समय से सक्रमित होना प्रारम्भ होता है उस समय से एक आवलिका

काल पूर्णरूप से सक्रमित होता जाता है और सक्रमावलिका के चरम समय मे जघन्य स्थितिसक्रम होने से वधावलिका और सक्रमावलिका प्रमाण काल कम हो जाता है। इसलिये उन दो आवलिका के बिना और अबाधाकल सहित जो जघन्य स्थितिवध वह जघन्य स्थितिसक्रमकाल मे यत्स्थिति है। स्वामी अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती क्षपक है। मात्र पुरुषवेद के जघन्य स्थितिसक्रम का स्वामी पुरुषवेद के उदय से श्रेणि आरभ करने वाला ही होता है।[1] इसी बात को अब कारण सहित स्पष्ट करते हैं—

पुरुषवेद के सिवाय अन्य वेद से क्षपकश्रेणि आरम्भ करने वाला हास्यादि षट्क के साथ ही पुरुषवेद का क्षय करता है और पुरुषवेद से श्रेणि आरम्भ करने वाला हास्यषट्क का क्षय होने के बाद पुरुषवेद का क्षय करता है, यानि कि पुरुषवेद से जब क्षपकश्रेणि प्राप्त करे तब उसका क्षय करने मे बहुत समय मिल सकता है तथा जिसका उदय हो उसकी उदीरणा भी होती है इसलिये पुरुषवेद से क्षपकश्रेणि स्वीकार करने वाले के उदय, उदीरणा द्वारा उसकी अधिक स्थिति टूटती है—भोगकर क्षय होती है। इस प्रकार पुरुषवेद से श्रेणि पर आरूढ हुए को ही उसका जघन्य स्थितिसक्रम सभव है। अन्य वेद से श्रेणि पर आरूढ होने वाले के सभव नही है।

अब सयोगिकेवलीगुणस्थान मे अन्त होने वाली प्रकृतियो के सबध मे विचार करते हैं—

सक्रम की अपेक्षा सयोगिकेवलीगुणस्थान मे जिनका अन्त होता है, उन प्रकृतियो का सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय मे जघन्य

---

१ किसी भी वेद या कषाय से श्रेणि आरम्भ करने का अर्थ है कि उस-उस वेद या कषाय का उदय हो तब उस-उस श्रेणि का प्रारम्भ करना।

स्थितिसक्रम होता है। सयोग्यन्तक उन प्रकृतियो के नाम इस प्रकार है—नरकद्विक, तिर्यंचद्विक पचेन्द्रियजाति के सिवाय जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत इन तेरह के सिवाय नामकर्म की नव्वै प्रकृतिया, साता-असातावेदनीय और उच्च-नीच-गोत्र। इन चौरानवै प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। क्योकि सयोगि के इन चौरानवै प्रकृतियो की स्थिति सत्ता में अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होती है।

अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उस स्थिति को चरम समय में सर्वापवर्तना द्वारा अपवर्तित करके घटा करके अयोगि के कालप्रमाण करता है। यद्यपि अयोगिकेवलीगुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, परन्तु वह पूर्वोक्त प्रकृतियो के सत्ताकाल से छोटा होता है। जिससे सर्वा-पवर्तना द्वारा अयोगि के कालप्रमाण स्थिति को शेष रखकर बाकी की अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति को अपवर्तित करता है, जिससे यहाँ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति को घटाने रूप अपवर्तनासक्रम रूप स्थिति-सक्रम होता है। इसीलिये उन चौरानवै प्रकृतियो का अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण जघन्य स्थितिसक्रम कहा है।

सयोगि के चरमसमय मे सर्वापवर्तना होने से जघन्य स्थिति-सक्रम का स्वामी सयोगिकेवली है। सर्वापवर्तना द्वारा उदयावलिका-रहित स्थिति की अपवर्तना होती है और उदयावलिका सकल करण के अयोग्य होने से उसकी अपवर्तना होती नही है। जिससे जिस समय सर्वापवर्तना प्रवर्तमान होती है, उस समय यत्स्थिति—कुल स्थिति उदयावलिका को मिलाने से जितनी हो उतनी समझना चाहिये।

शका—जैसे मतिज्ञानावरण आदि प्रकृतियो की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब क्षीणमोहगुणस्थान में समयप्रमाण जघन्य स्थितिसक्रम कहा है, उसी प्रकार अयोगिकेवलीगुणस्थान में उन चौरानवै प्रकृतियो की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब उदयावलिका से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति घटाने रूप

जघन्य स्थितिसक्रम क्यो नही कहा ?

उत्तर—समस्त सूक्ष्म या बादर किसी भी प्रकार के योगरहित मेरु पर्वत की तरह स्थिर ऐसे अयोगिकेवली भगवान आठ करणो मे से किसी भी करण को नही करते हैं, क्योकि निष्क्रिय हैं, मात्र स्वत उदय प्राप्त कर्म का ही वेदन करते है इसलिये सयोगिकेवली को ही उन प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम होता है।

उक्त प्रकृतियो से शेष रही स्त्यानर्द्धित्रिक, मिथ्यात्व, मिश्रमोह, अनन्तानुबधि, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप बारह कषाय स्त्रीवेद, नपु सकवेद, नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, पचेन्द्रियजाति के सिवाय जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत इन बत्तीस प्रकृतियो का अपने-अपने क्षयकाल में पल्यमोपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिखड का जो अतिम सक्रम होता है, वह उन प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम है।[1]

इस प्रकार से जघन्य स्थितिसक्रम का प्रमाण जानना चाहिये। अब जघन्य स्थितिसक्रम के स्वामियो का विचार करते हैं।

जघन्य स्थितिसक्रम के स्वामी

मिथ्यात्व और मिश्र इन दो प्रकृतियो के क्षयकाल मे सर्वाप-

---

१ मिथ्यात्व, मिश्र और अनन्तानुबधि के सिवाय शेष प्रकृतियो को क्षपक श्रेणि पर आरूढ हुआ जीव नौवे गुणस्थान मे क्षय करता है और मिथ्यात्व आदि छह प्रकृतियो को क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले चौथे से सातवे गुणस्थान तक के जीव क्षय करते हैं। इन प्रकृतियो की स्थिति को क्षय करते-करते अतिम पल्योपम का असख्यातवाँ भाग प्रमाण खड रहे और उसको भी क्षय करते हुए वह अतिम स्थितिघात के अन्तर्मुहूर्त काल के चरम समय मे सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करने से सत्ता रहित होता है। इसीलिये इन प्रकृतियो का पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण जघन्यस्थितिसक्रम कहा है।

वर्तना द्वारा अपवर्तित करके सत्ता में रहे हुए पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण उसके चरम खड को सक्रमित करने वाले अविरत, देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्त मनुष्य जघन्य स्थिति-सक्रम के स्वामी है।[1]

अनन्तानुबधी की विसयोजना करते अनिवृत्तिकरण में सर्वापवर्तना द्वारा अपवर्तित करके सत्ता में रखे हुए पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण चरमखड को सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करने वाले चारो गति के सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य स्थितिसक्रम के स्वामी है।

शेष स्त्यानर्द्धित्रिक आदि छब्बीस प्रकृतियो को क्रमपूर्वक क्षय करते हुए सर्वापवर्तना द्वारा अपवर्तित करके सत्ता में रखे हुए अपने-अपने पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण चरम खड को सक्रमित करते नौवे अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव जघन्य स्थिति-सक्रम के स्वामी हैं।

जिस काल में जघन्य स्थितिसक्रम होता है, उस काल में स्त्री, नपुसक वेद को छोडकर शेष प्रकृतियो की यत्स्थिति, जितनी स्थिति का जघन्य सक्रम हाता है, उससे एक आवलिका अधिक है और स्त्रीवेद, नपुसकवेद की अन्तर्मुहूर्त अधिक है।

आवलिका और अन्तर्मुहूर्त अधिक यत्स्थिति इस प्रकार जानना चाहिये कि स्त्रीवेद और नपुसकवेद को छोडकर शेष प्रकृतियो का पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण चरम स्थितिखड नीचे की एक उदयावलिका छोडकर सक्रमित होता है। क्योकि उदयावलिका सकल करण के अयोग्य है। जिससे इन तीस प्रकृतियो के जघन्य स्थिति-

---

१ मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय का सर्वथा क्षय जिनकालिक प्रथमसहननी मनुष्य ही करने वाले होने से उन्ही को जघन्य स्थितिसक्रम का स्वामी कहा है।

सक्रमकाल में यत्स्थिति सक्रमित होने वाली स्थिति से एक आवलिका अधिक है।

स्त्रीवेद और नपु सकवेद के पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण चरम खड को अतरकरण मे रहते हुए सक्रमित करता है। अन्तरकरण में कर्मदलिक नही है, परन्तु ऊपर दूसरी स्थिति मे हैं। अन्तरकरण का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, जिससे अन्तर्मुहूर्त सहित पल्योपम का असख्यातवा भाग स्त्रीवेद, नपु सकवेद की यत्स्थिति है।

इस प्रकार से जघन्य स्थितिसक्रम का प्रमाण, यत्स्थिति और स्वामित्व प्ररूपणा का कथन जानना चाहिये।[1] अब साद्यादि प्ररूपणा करने का अवसर प्राप्त है। उसके दो प्रकार है—१ मूलप्रकृति सम्बन्धी और २ उत्तरप्रकृतिसम्वन्धी। दोनो मे से पहले मूलप्रकृति सम्वन्धी सादि आदि की प्ररूपणा करते है।

मूलप्रकृति सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

मूलठिईण अजहन्नो सत्तण्ह तिहा चतुव्विहो मोहे।
सेसविगप्पा साई अधुवा ठितिसकमे होंति ॥५०॥

शब्दार्थ—मूलठिईण अजहन्नो—मूलप्रकृतियो का अजघन्य स्थितिसक्रम, सत्तण्ह—सात का, तिहा—तीन प्रकार का, चतुव्विहोमोहे—मोहनीय का चार प्रकार का, सेसविगप्पा—शेष विकल्प, साई अधुवा—सादि, अध्रुव, ठितिसकमे—स्थितिसक्रम मे, होंति—होते है।

गाथार्थ—मोहनीय को छोडकर शेष सात मूलप्रकृतियो का अजघन्य स्थितिसक्रम तीन प्रकार का और मोहनीय का चार प्रकार का है तथा शेष विकल्प सादि अध्रुव इस तरह दो प्रकार के है।

---

१ उत्कृष्ट, जघन्य स्थितिसक्रम के प्रमाण, यत्स्थिति, स्वामित्व का प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

विशेषार्थ— जघन्य स्थिति के सिवाय उत्कृष्ट स्थिति तक के समस्त स्थितिस्थानो का अजघन्य मे और इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति के सिवाय जघन्यस्थिति तक के समस्त स्थानो का अनुत्कृष्ट मे समावेश होता है। तात्पर्य यह है कि समस्त स्थितिस्थानो का जघन्य-अजघन्य इन दो मे अथवा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट इन दो मे समावेश होता है।

अब इनमे सादि आदि भगो को घटित करते है।

मोहनीयकर्म को छोडकर शेष मूल सात कर्मों का अजघन्य स्थिति-सक्रम अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का है। जिसका स्पष्टीकरण यह है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का जघन्य स्थितिसक्रम बारहवे क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक एक आवलिका शेष रहे, तब होता है, नाम, गोत्र, वेदनीय और आयु इन चार कर्मों का जघन्य स्थितिसक्रम सयोगिकेवली के चरम समय मे होता है। यह जघन्य स्थितिसक्रम एक समय मात्र का होने से सादि और अध्रुव-सात इस तरह दो प्रकार का है। इसके सिवाय शेष समस्त स्थितिसक्रम अजघन्य है और वह अनादि काल से होता चला आ रहा है, जिससे अनादि है। अभव्य के अजघन्य स्थितिसक्रम का अत नही होने से अनन्त-ध्रुव एव भव्य के बारहवे तथा तेरहवे गुण-स्थान के अत समय मे अत होगा, इसलिये सात-अध्रुव है। इस तरह मूल सात कर्मों के अजघन्य स्थितिसक्रम के तीन भग है।

मोहनीयकर्म का अजघन्य स्थितिसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—मोहनीयकर्म का जघन्य स्थितिसक्रम क्षपक को सूक्ष्मसपरायगुणस्थान की समया-धिक आवलिका शेष स्थिति हो तब होता है। समयमात्र का होने से वह सादि-सात है। उसके अतिरिक्त शेष समस्त स्थितिसक्रम अजघन्य है। वह उपशातमोहगुणस्थान मे क्षायिक सम्यग्दृष्टि के नही होता है, किन्तु वहाँ से पतन हो तब होता है, इसलिये सादि है। उस स्थान को प्राप्त नही करने वाले के अनादि तथा अभव्य एव भव्य की अपेक्षा

अनुक्रम से ध्रुव और अध्रुव है।

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य रूप शेष तीन विकल्प सादि और सात है। वे इस प्रकार—जो उत्कृष्ट स्थितिबध करते है वही उत्कृष्ट स्थिति सक्रमित करते है। उत्कृष्ट स्थितिवध उत्कृष्ट सक्लेश से होता है और वह उत्कृष्ट सक्लेश सदैव होता नही, किन्तु बीच-बीच में हो जाता है, जिससे जब उत्कृष्ट स्थितिवध हो तव उत्कृष्ट स्थितिसक्रम होता है। इसके सिवाय शेष काल में अनुत्कृष्ट स्थितिसक्रम होता है। इस प्रकार दोनो एक के बाद एक इस क्रम से होने के कारण सादि-सात हैं तथा जघन्य स्थितिसक्रम एक समय प्रमाण होता है, इसलिये वह सादि-सात है। इसको पूर्व में कहा जा चुका है।

इस प्रकार मूल कर्मों के उत्कृष्ट आदि स्थितिसक्रम में साद्यादि भग जानना चाहिये। सुगमता से बोध करने के लिये जिसका प्रारूप पृष्ठ १२१ पर देखिए।

अब उत्तरप्रकृतियो के सादि आदि भगो का विचार करते है।

उत्तर प्रकृतियो के सादि आदि भग

> **तिविहो धुवसताण चउव्विहो तह चरित्तमोहोण।**
>
> **अजहन्नो सेसासु दुविहो सेसा वि दुविगप्पा ॥५१॥**

शब्दार्थ—तिविहो—तीन प्रकार का, धुवसताण—ध्रुवसत्ताका प्रकृतियो का, चउव्विहो—चार प्रकार का, तह—तथा, चरित्तमोहोण—चारित्र-मोहनीय प्रकृतियो का, अजहन्नो—अजघन्य, सेसासु—शेष प्रकृतियो का, दुविहो—दो प्रकार का, सेसा—शेप विकल्प, वि—भी, दुविगप्पा—दो प्रकार के।

गाथार्थ—ध्रुवसत्ताका प्रकृतियो का अजघन्य स्थितिसक्रम तीन प्रकार का है, चारित्रमोहनीय का चार प्रकार का और शेष

मूलप्रकृतियो के स्थितिसंक्रम के साद्यादि भगो का प्रारूप

प्रकृति	अजघन्य				जघन्य		अनुत्कृष्ट		उत्कृष्ट	
	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव
ज्ञाना-दर्शना अतराय	×	जघन्य सक्रम-काल मे	भव्य	अभव्य	१२ वे गुण समयाधिक आव-लिका शेष	विच्छेद होने से	परा-वर्त-मान होने से	परा-वर्त-मान होने से	परा-वर्त-मान होने से	परा-वर्त-मान होने से
नाम गोत्र, वेदनीय, आयु	×	,,	,,	,,	१३ वे गुण-स्थान के अत मे	,,	,,	,,	,,	,,
मोहनीय	क्षायोप-शमिक ११ वे गुण-स्थान से गिरने वाले के	भव्य	साद्य-प्राप्त के	,,	क्षपक १० वे गुण-स्थान मे	,,	,,	,,	,,	,,

प्रकृतियो का दो प्रकार का है तथा शेष विकल्प भी दो प्रकार के है।

विशेषार्थ—जिनकी सत्ता ध्रुव है, वे ध्रुवसत्ताका प्रकृतिया कहलाती हैं और ऐसी प्रकृतिया एक सौ तीस है। वे इस प्रकार—नरकद्विक, देवद्विक, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक, मनुष्यद्विक, तीर्थंकरनाम, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, उच्चगोत्र और आयुचतुष्क इन अट्ठाईस अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो को कुल एक सौ अट्ठावन प्रकृतियो मे से कम करने पर शेष एक सौ तीस उत्तर प्रकृतिया ध्रुवसत्ता वाली हैं। उन एक सौ तीस मे से भी चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो को कम कर दिया जाये, क्योकि उनके लिये पृथक से आगे कहा जा रहा है। अतएव एक सौ तीस मे से चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो को कम करने पर शेष एक सौ पाच प्रकृतियो का जघन्य स्थितिसक्रम अपने-अपने क्षय के अत मे एक समय होने से सादि-अध्रुव (सान्त) है। उसके सिवाय शेष समस्त स्थितिसक्रम अजघन्य है और वह अनादि काल से होता चला आने से अनादि है तथा भव्य-अभव्य की अपेक्षा अनुक्रम से अध्रुव और ध्रुव है।

चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो का अजघन्य स्थितिसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—उपशमश्रेणि मे इन पच्चीस प्रकृतियो का सर्वथा उपशम होने के बाद सक्रम नही होता है। वहाँ से पतन होने पर अजघन्य सक्रम होता है, इसलिये सादि है, उस स्थान को जिन्होने प्राप्त नही किया, उनकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव (अनन्त) और भव्य के अध्रुव (सात) अजघन्य सक्रम है।

शेष अट्ठाईस अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो के जघन्य, अजघन्य उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट ये चारो विकल्प उनकी सत्ता ही अध्रुव होने से सादि-सान्त (अध्रुव) हैं।

उत्तरप्रकृतियो के स्थितिसंक्रम के साद्यादि भंग (५)

प्रकृतियाँ	अजघन्य				जघन्य		अनुत्कृष्ट		उत्कृष्ट	
	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव
चारित्र-मोहनीय की २५ प्रकृतिया	११वे गुण से गिरने वाले के	भव्य	उस स्थान को अप्राप्त के	अभव्य	स्व क्षय काल में	भव्य	उत्कृष्ट से, परा-वर्तमान होने से	परा-वर्तमान होने से	अनुत्कृष्ट से, परा-वर्तमान होने से	परा-वर्तमान होने से
अध्रुव सत्ताका २८ प्रकृ-तियाँ	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से	×	×	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुव सत्ता वाली होने से
पूर्वोक्त से शेष १०५ प्रकृतिया	×	भव्यो के क्षय होने से	जघन्य स्थान अप्राप्तो के	अभव्य	स्वक्षय समय में	भव्य	परा-वर्तमान हाने से	परा-वर्तमान होने से	परा-वर्तमान होने से	परा-वर्तमान होने से

गाथार्थ—अनुभागसंक्रम भी स्थितिसंक्रम की तरह उद्वर्तनादि भेद से तीन प्रकार का जानना चाहिये तथा घातित्व आदि विशेष नाम रस के कारण से समझना चाहिये।

विशेषार्थ—अनुभागसंक्रम के दो प्रकार हैं—१ मूलप्रकृतियो के अनुभाग का संक्रम २ उत्तरप्रकृतियो के अनुभाग का संक्रम। मूल प्रकृतियो के अनुभाग का संक्रम ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि के भेद से आठ प्रकार का है तथा उत्तरप्रकृतियो के अनुभाग का संक्रम मति-ज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण यावत् वीर्यान्तराय पर्यन्त एक सौ अट्ठावन प्रकार का है। मूल और उत्तरप्रकृतियो के रस का संक्रम होता है, जिससे उसके भी आठ और एक सौ अट्ठावन भेद होते हैं।

इस प्रकार से भेदप्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब विशेषलक्षण का कथन करते हैं—

स्थितिसंक्रम की तरह रससंक्रम के भी उद्वर्तना, अपवर्तना और प्रकृत्यन्तरनयनसंक्रम रूप तीन भेद हैं। सत्ता मे रहे हुए अल्प रस मे वृद्धि करना उद्वर्तना, सत्ता मे विद्यमान रस को कम करना अप-वर्तना और विवक्षित प्रकृति के रस को वध्यमान अन्यप्रकृति के रस रूप करना प्रकृत्यन्तरनयनसंक्रम कहलाता है। अर्थात् सत्ता मे विद्य-मान रस की जो वृद्धि हानि होती है और एक रूप मे रहा हुआ रस अन्य स्वरूप मे जैसे कि सातावेदनीय का असातावेदनीय रूप में होना। ये सब संक्रम के ही प्रकार हैं।

इस प्रकार से अनुभागसंक्रम का विशेष लक्षण जानना चाहिये। अब रसस्पर्धक की प्ररूपणा करते हैं—

रसस्पर्धक सर्वघाति, देशघाति और अघाति इस तरह तीन प्रकार के हैं। उनमे से अपने द्वारा घात किया जा सके दबाया जा सके ऐसे केवलज्ञानादि गुण का जो सर्वथा घात करे उन्हे सर्वघातिरसस्पर्धक कहते हैं। अपने द्वारा घात किया जा सके ऐसे ज्ञानादि गुण के मति-

ज्ञानादि रूप एक देश को जो दबाये, घात करे, वे देशघाति रसस्पर्धक कहलाते हैं और जो रसस्पर्धक आत्मा के किसी भी गुण को दबाते नही, परन्तु जैसे स्वय चोर न हो लेकिन चोर के सबध से चोर कहलाता है, उसी प्रकार सर्वघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से सर्वघाति कहलाते हैं, उन्हे अघाति रसस्पर्धक कहते है।

ये अघातिस्पर्धक स्वय आत्मा के किसी गुण का घात नही करते, दबाते नही, मात्र सर्वघाति स्पर्धको का जब तक सम्बन्ध है, तब तक उन जैसा काम करते है। जैसे निर्बल बलवान के साथ मिले तब वह बलवान जैसा काम करता है, वैसे ही अघातिरस सर्वघातिरस के सम्बन्ध वाला हो वहाँ तक उसी सरीखा कार्य करता है।

प्रकृतियो मे जो सर्वघाति, देशघाति या अघाति पना कहा गया है वह सर्वघाति आदि रसस्पर्धको के सम्बन्ध से समझना चाहिये। यानि उस-उस प्रकार के रस के सम्बन्ध से ही सर्वघाति, देशघाति या अघाति प्रकृतिया कहलाती है। इसी बात को गाथा मे **'रसकारणओ नेय घाइत्तविसेसणभिहाण'** पद से स्पष्ट किया कि सर्वघाति आदि रस रूप कारण की अपेक्षा से ही कर्मप्रकृतिया सर्वघातिनी, देशघातिनी या अघातिनी कहलाती है।

अब इसी बात को विशेष स्पष्ट करते है—

देसग्घाइरसेण, पगईओ होंति देसघाईओ।
इयरेणियरा एमेव, ठाणसन्ना वि नेयव्वा ॥५३॥

शब्दार्थ—**देसग्घाइरसेण**—देशघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से, **पगईओ**—प्रकृतिया, **होंति**—होती है, **देसघाईओ**—देशघातिनी, **इयरेणियरा**—इतर से इतर (सर्वघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से सर्वघाति), **एमेव**—इसी प्रकार **ठाणसन्नावि**—स्थानसज्ञा भी, **नेयव्वा**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—देशघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से प्रकृतिया देशघाति और सर्वघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से प्रकृतिया सर्वघाति है। इसी प्रकार स्थानसज्ञा भी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कर्मप्रकृतियो मे सर्वघातित्व, देशघातित्व और अघातित्व ये रस के सम्बन्ध से है। देशघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से मतिज्ञानावरण आदि पच्चीस प्रकृतिया देशघाति, सर्वघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से केवलज्ञानावरणादि बीस प्रकृतिया सर्वघाति और अघाति रसस्पर्धक के सम्बन्ध से सातावेदनीय आदि पचहत्तर प्रकृतिया अघाति कहलाती है।

आत्मा के ज्ञानादि गुणो को सूर्य और मेघ के दृष्टान्त से जो प्रकृतिया सर्वथा घात करती है वे सर्वघाति, गुणो के एक देश को देश से घात करती है, वे देशघाति और जो प्रकृतिया आत्मा के किसी गुण का घात नही करती, परन्तु साता आदि उत्पन्न करती है, वे कर्मप्रकृतिया अघाति कहलाती है।

इसी प्रकार एकस्थानक आदि स्थानसज्ञा भी रस के सम्बन्ध से ही जानना चाहिये। बध की अपेक्षा एक सौ बीस प्रकृतियो मे से मति-श्रुत-अवधि और मनपर्यायज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु-अवधिदर्शनावरण, पुरुषवेद, सज्वलनचतुष्क और अन्तरायपचक ये सत्रह प्रकृतिया एकस्थानक, द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतु स्थानक रस वाली है और शेष एक सौ तीन प्रकृतिया द्वि, त्रि और चतु स्थानक रस वाली है।

कर्मप्रकृतियो मे एकस्थानक आदि जो स्थानसज्ञा कही है, वह रस—अनुभाग रूप कारण की अपेक्षा से है। जैसे कि जिन मतिज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियो मे एकस्थानक—अति मद रस होता है, वे एकस्थानक रस वाली कहलाती है। इसी प्रकार द्विस्थानक आदि रस वाली भी समझ लेना चाहिये। अध्यवसायानुसार जिन प्रकृतियो मे जैसा रस उत्पन्न हुआ हो, उन प्रकृतियो मे उसके अनुरूप एकस्थानक आदि सज्ञा समझना चाहिये।

इस प्रकार से बधापेक्षा प्रकृतियो की घातित्व और स्थानसज्ञा

जानना चाहिये। किन्तु सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का बध नही होने से उनकी स्थान आदि सज्ञा नही बताई है। अत अब उनके तथा कतिपय प्रकृतियो के विषय में सक्रम की अपेक्षा कुछ विशेष स्पष्टीकरण करते हैं—

सव्वग्घाइ दुठाणो मीसायवमणुयतिरियआऊण।
इगदुट्ठाणो सम्मंमि तदियरोण्णासु जह हेट्ठा ॥५४॥

शब्दार्थ—सव्वग्घाइ—सर्वघाति, दुठाणो—द्विस्थानक, मीसायवमणुयतिरियआऊण—मिश्रमोहनीय, आतप और मनुष्य, तिर्यच आयु का, इगदुट्ठाणो—एकस्थानक द्विस्थानक, सम्मंमि—सम्यक्त्वमोहनीय मे, तदयिरो—उससे इतर (देशघाति), अण्णासु—अन्य प्रकृतियो मे, जह—जैसा, हेट्ठा—पूर्व मे।

गाथार्थ—मिश्रमोहनीय, आतप और मनुष्य-तिर्यच आयु का सक्रम की अपेक्षा रस सर्वघाति और द्विस्थानक होता है। सम्यक्त्वमोहनीय का सक्रम की अपेक्षा रस एकस्थानक, द्विस्थानक और देशघाति होता है तथा अन्य प्रकतियो मे जैसा पूर्व मे कहा है, उसी प्रकार सक्रम की अपेक्षा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अनुभाग—रससक्रम अधिकार मे कितना और कैसा रस सक्रमित होता है, इसका विचार करना अभीष्ट है। अतएव इस गाथा मे किन प्रकृतियो का कितना और कैसा रस सक्रमित होता है, यह स्पष्ट करते हैं—

मिश्रमोहनीय, आतप और मनुष्य-तिर्यंच आयु का रस द्विस्थानक और सर्वघाति सक्रमित होता है। उसमें से मिश्रमोहनीय का रस तो सर्वघाति और मध्यम द्विस्थानक ही होता है। इसीलिये उसका सक्रम की अपेक्षा सर्वघाति और मध्यम द्विस्थानक रस बतलाया है।

आतप, मनुष्यायु और तिर्यंचायु का यद्यपि द्वि, त्रि और चतु-स्थानक रस होता है। क्योकि इनका वैसा रस बधता है, किन्तु तथा-

स्वभाव से द्विस्थानक रस ही सक्रमित होता है तथा इन प्रकृतियो का रस अघाति है, जिससे स्वभावत ही आत्मा के किसी गुण को आवृत नही करती है। लेकिन सर्वघाति अन्यान्य प्रकृतियो के रस के सम्बन्ध से वे सर्वघाति है, अघाति नही है। इसीलिये ऐसी प्रकृतियो को सिद्धान्त मे सर्वघातिप्रतिभाग अर्थात् सर्वघातिसदृश कहा है, परन्तु सर्वघाति नही। क्योकि घातिप्रकृतियो का सर्वथा क्षय होने के बाद तेरहवे गुणस्थान मे वर्तमान चार अघाति कर्मो का अनुभाग आत्मा के किसी भी गुण का घात नही करता है। यदि अपने स्वभाव से ही सर्वघाति होता ता केवलज्ञानावरणादि के समान आत्मा के गुणो को आच्छादित करता।

सम्यक्त्वमोहनीय का एकस्थानक और मन्द द्विस्थानक तथा देशघाति रस सक्रमित होता है, अन्य प्रकार का नही और इसका कारण है उसमे अन्य प्रकार का रस होना असम्भव है।

उपर्युक्त प्रकृतियो के सिवाय शेष प्रकृतियो के बारे मे इसी ग्रथ के तीसरे बधव्य अधिकार मे बध की अपेक्षा जैसा एकस्थानक एव सर्वघाति आदि रस कहा है, यहाँ सक्रम के सदर्भ मे भी उसी प्रकार का रस जानना चाहिये। जितना एव जैसा बधता है, उतना और वैसा ही सक्रमित होता है।

इस प्रकार सामान्य से रस का सक्रम जानना चाहिये। अब यहाँ उत्कृष्ट और जघन्य रस के स्वरूप का प्रतिपादन करते है।

सक्रमापेक्षा उत्कृष्ट रस

दुट्ठाणो च्चिय जाण ताण उक्कोसओ वि सो चेव।
सकमइ वेयगे वि हु सेसासुक्कोसओ परमो ॥५५॥

शब्दार्थ—दुट्ठाणो—द्विस्थनाक, च्चिय—ही, जाण—जिनका, ताण—उनका, उक्कोसओ—उत्कृष्ट से, वि—भी, सो चेव—वही, सकमइ—सक्रमित

होता है, वेयगे—वेदकसम्यक्त्व का, वि—भी, हु—नियम से, सेसासुक्कोसओ—शेप प्रकृतियो का उत्कृष्ट, परमो—चरम—चतु स्थानक ।

गाथार्थ—जिन प्रकृतियो का रस सक्रम के विषय मे द्विस्थानक ही होता है, उनका उत्कृष्ट से वही रस सक्रमित होता है। वेदकसम्यक्त्व का भी नियम से उतना ही तथा शेप प्रकृतियो का उत्कृष्ट चतु स्थानक रस सक्रमित होता है ।

विशेषार्थ—मिश्रमोहनीय, आतप, मनुष्यायु और तिर्यचायु रूप प्रकृतियो का द्विस्थानक रस ही सक्रमित होता है। असभवता के कारण अथवा तथास्वभावरूप कारण से अन्य प्रकार का रस सक्रमित नही हो सकता है। इन प्रकृतियो का उत्कृष्ट भी द्विस्थानक रस ही सक्रमित होता है, किन्तु अन्य किसी प्रकार का रस सक्रमित नही होता है ।

वेदकसम्यक्त्व—सम्यक्त्वमोहनीय का भी उत्कृष्ट द्विस्थानक रस ही सक्रमित होता है। यद्यपि उसका एकस्थानक रस भी है, लेकिन वह जघन्य है तथा त्रि अथवा चतु स्थानक रस मिश्र एव सम्यक्त्व मोहनीय का होता ही नही है तथा शेष समस्त प्रकृतियो का सक्रम की अपेक्षा उत्कृष्ट से चतु स्थानक रस होता है ।

इस प्रकार से सक्रमापेक्षा उत्कृष्ट रस का स्वरूप जानना चाहिये। अव जघन्य रस कितने स्थानीय सक्रमित किया जाता है ? इसको स्पष्ट करते है ।

सक्रमापेक्षा जघन्य रस

एकट्ठाणजहन्न सकमइ पुरिससम्मसजलणे ।
इयरासु दोट्ठाणि य जहण्णरससकमे फड्ड ॥५६॥

शब्दार्थ—एकट्ठाण—एकस्थानक, जहन्न—जघन्य, सकमइ—सक्रमित होता है, पुरिससम्मसजलणे—पुरुपवेद, सम्यक्त्वमोहनीय और सज्वलनचतुष्क

का, इयरासु—इतर प्रकृतियो का, दोट्ठाणि—द्विस्थानक, य—और, जहण्ण-रस—जघन्य रस, सकमे—सक्रम मे, फड्डु—स्पर्धक ।

गाथार्थ—पुरुषवेद, सम्यक्त्वमोहनीय और सज्वलनचतुष्क का एकस्थानक जघन्य रसस्पर्धक तथा इतर प्रकृतियो का द्विस्थानक जघन्य रसस्पर्धक सक्रमित होता है ।

विशेषार्थ—पुरुषवेद, सम्यक्त्वमोहनीय एव सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का एकस्थानक रस सम्बन्धी अल्पातिअल्प रस वाला जो स्पर्धक, वह जव सक्रमित हो तब उसे उनका जघन्य अनुभाग-सक्रम हुआ कहते है ।[1]

इतर—शेष कर्मप्रकृतियो के जघन्य रससक्रम के विषय मे द्विस्थानक रसस्पर्धक समझना चाहिये । अर्थात् शेष प्रकृतियो मे उनका सर्व-जघन्य—अल्पातिअल्प रस वाला द्विस्थानक रसस्पर्धक जब सक्रमित हो तब वह उनका जघन्य अनुभागसक्रम हुआ कहलाता है ।

यद्यपि मति, श्रुत, अवधि और मनपर्याय ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शनावरण तथा अन्तरायपचक इन प्रकृतियो का एक-स्थानक रस भी बध मे होता है—बधता है, लेकिन क्षयकाल मे जव जघन्य रमस्पर्धक सक्रमित होता है, तब द्विस्थानक रस भी सक्रमित होता है अर्थात् द्विस्थानक रस के साथ एकस्थानक रस भी सक्रमित होता है, केवल एकस्थानक रस सक्रमित नही होता है । इसीलिये इन प्रकृतियो का जघन्य रमसक्रम का विषयभूत एकस्थानक रस नही कहा है ।

कदाचित् यहाँ यह कहा जाये कि जव उपर्युक्त प्रकृतियो का एक-स्थानक रस वधता है तव जघन्य रससक्रमकाल मे एकस्थानक रस

---

१ यह सक्रम कव होता है ? इसका स्पष्टीकरण आगे सक्रमस्वामित्व प्ररू-पणा मे किया जा रहा है ।

क्यो सक्रमित नही होता है ? तो इसका उत्तर यह है कि जघन्य रस-सक्रमकाल मे तथाजीवस्वभाव से केवल एकस्थानक रस सक्रमित नही होता है, किन्तु पूर्वबद्ध द्विस्थानक और एकस्थानक दोनो सक्रमित होते हैं। इसीलिये इन प्रकृतियो का सक्रम के विषय मे एकस्थानक रस नही कहा है। यदि इन प्रकृतियो का जघन्य रससक्रम के विषय मे एकस्थानक रस कहा होता तो अत मे जब जघन्य रससक्रम हो तब केवल एकस्थानक रस का ही हो, द्विस्थानक का हो ही नही सकता है, किन्तु सक्रम तो द्विस्थानक रस का भी होता है, इसलिये एकस्थानक रस का सक्रम न कहकर द्विस्थानक रस का सक्रम कहा है। द्विस्थानक मे एकस्थानक समाहित हो जाता है, किन्तु एकस्थानक मे द्विस्थानक समाहित नही हो सकता है।

यहाँ रस-अनुभाग के सक्रम का आशय उस-उस प्रकार के रस वाले पुद्गलो का सक्रम समझना चाहिये।

इस प्रकार से उत्कृष्ट और जघन्य रससक्रम का प्रमाण जानना चाहिये। सुगमता से समझने के लिये जिसका प्रारूप इस प्रकार है—

उत्कृष्ट अनुभागसक्रमप्रमाण

प्रकृतिया	स्थानप्रमाण	घातिप्रमाण
सम्यक्त्वमोहनीय	द्विस्थानक	देशघाति
मिश्र, मनुष्य-तिर्यंचायु	,,	सर्वघाति
आतप		
उक्त से शेष	चतु स्थानक	सर्वघाति

जघन्य अनुभागसक्रमप्रमाण

प्रकृतिया	स्थानप्रमाण	घातिप्रमाण
सम्यक्त्व, पुरुषवेद, सज्वलन-चतुष्क	एकस्थानक	देशघाति
उक्त से शेष	द्विस्थानक	सर्वघाति

अव उतने उतने रस का सक्रम करने वाला कौन होता है ? इसको स्पष्ट करने के लिये स्वामित्वप्ररूपणा करते है। उसमें भी पहले उत्कृष्ट अनुभागसक्रम के स्वामियो को बतलाते है।

उत्कृष्ट अनुभागसक्रम-स्वामित्व

बधिय उक्कोसरसं आवलियाओ परेण संकामे।
जावतमुहू मिच्छो असुभाण सव्वपयडीण ॥५७॥

शब्दार्थ—**बधिय**—बाधकर, **उक्कोसरस**—उत्कृष्ट रस को, **आवलियाओ**—आवलिका के, **परेण**—बाद, **सकामे**—सक्रमित करते है, **जावंतमुहू**—अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त, **मिच्छो**—मिथ्यादृष्टि, **असुभाण**—अशुभ, **सव्वपयडीण**—सभी प्रकृतियो का।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि जीव सभी अशुभ प्रकृतियो का उत्कृष्ट रस बाधकर आवलिका के बाद अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त उसको सक्रमित करते है।

विशेषार्थ—गाथा में अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभागसक्रम के स्वामी का निर्देश किया है—

ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणनवक, असातावेदनीय, मोहनीय की अट्ठाईस, नरकद्विक, तिर्यचद्विक, एकेन्द्रियादि जातिचतुष्क, प्रथम के सिवाय शेष पाच सहनन एव पाच सस्थान, अशुभ वर्णादि नवक, उपघात, अशुभ विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति, नीचगोत्र और अन्तरायपचक, कुल मिलाकर अठासी अशुभ प्रकृतियो का उत्कृष्ट रस बाधकर बधावलिका के बीतने के बाद बाधे हुए उस रस को सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त से लेकर सभी चारो गति के मिथ्यादृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सक्रमित करते हैं।

यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त को भी ग्रहण करने का कारण यह है कि यद्यपि उपर्युक्त अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस का बध सज्ञी मिथ्यादृष्टि करते है परन्तु वैसा रस बाधकर एकेन्द्रियादि मे उत्पन्न हो तो वे एकेन्द्रियादि जीव उत्कृष्ट रस का सक्रम कर सकते है।

इस सदर्भ मे इतना विशेप जानना चाहिये कि मात्र असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंच, मनुष्य और आनतादि कल्प के देव उत्कृष्ट रस को सक्रमित नही करते है। क्योकि मिथ्यादृष्टि होने पर भी तीव्र सक्लेश का अभाव होने मे वे उपर्युक्त अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को बाधते नही है और उत्कृष्ट रस के बध का अभाव होने से वे उत्कृष्ट रस को सक्रमित भी नही करते है।

प्रश्न—भोगभूमिज एव आनत आदि कल्प के देव तीव्र सक्लेश नही होने के कारण चाहे उत्कृष्ट रस को न बाधे परन्तु जिन सज्ञियो मे से वे आते है, वहाँ बधे हुए उत्कृष्ट रस को लेकर आते हैं, तो फिर वे क्यो सक्रमित नही करते है? जैसे एकेन्द्रिय पूर्वभव के बधे हुए उत्कृष्ट रस को सक्रमित करते है।

उत्तर—गाथा मे कहा है कि मिथ्यादृष्टि पुण्य अथवा पाप प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को अन्तर्मुहूर्त से अधिक स्थिर नही रख सकते है। युगलिको और आनत आदि देवो की आयु तो प्रशस्त प्रकृति होने से शुद्ध लेश्या से बधती है। जिस लेश्या से बधती है, वह लेश्या मनुष्य, तिर्यंच की अन्तर्मुहूर्त आयु शेष हो तब होती है। अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे प्रशस्त लेश्या होने के कारण पूर्व मे उत्कृष्ट रस कदाचित् बाधा हो, तथापि वह घट जाता है। जिससे अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस की सत्ता को लेकर युगलिक अथवा आनतादि मे जाता नही। इसलिये वे उत्कृष्ट रस के सक्रम के अधिकारी नही है।

मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट रस का सक्रम बधावलिका के बाद अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इससे अधिक समय नही। क्योकि अन्तर्मुहूर्त

के पश्चात् शुभ परिणामो के योग से उसके उत्कृष्ट रस का विनाश सम्भव है। मिथ्यादृष्टि जीव पाप या पुण्य प्रकृति के उत्कृष्ट रस को यथायोग्य रीति से बाधे तो भी बन्ध होने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त के बाद उन शुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस का सक्लेश द्वारा और अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस का विशुद्धि द्वारा अवश्य नाश करता है, इसीलिये उनको उत्कृष्ट रस के सक्रम का काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

आयावुज्जोवोराल पढमसंघयणणराणदुगाउण।
मिच्छा सम्मा य सामी सेसाण जोगि सुभियाण ॥५८॥

शब्दार्थ—**आयावुज्जोवोराल**—आतप, उद्योत, औदारिक (सप्तक), **पढमसघयणमणदुगाउण**—प्रथम सहनन, मनुष्यद्विक, आयुचतुष्क के, **मिच्छा**—मिथ्यादृष्टि, **सम्मा**—सम्यग्दृष्टि, **य**—और, **सामी**—स्वामी, **सेसाण**—शेष, **जोगि**—सयोगिकेवली, **सुभियाण**—शुभ प्रकृतियो के।

गाथार्थ—आतप, उद्योत, औदारिकसप्तक, प्रथम सहनन, मनुष्यद्विक और आयुचतुष्क के उत्कृष्ट रससक्रम के स्वामी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये और शेष शुभ प्रकृतियो के सयोगिकेवली है।

विशेषार्थ—आतप, उद्योत, औदारिकसप्तक, प्रथम सहनन और मनुष्यद्विक इन बारह प्रकृतियो के उत्कृष्ट रससक्रम के स्वामी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो प्रकार के जीव समझना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सम्यग्दृष्टि जीव शुभ प्रकृतियो के अनुभाग का विनाश नही करते है, किन्तु विशेषत एक सौ बत्तीस सागरोपम तक उसको सुरक्षित रखते है, जिससे आतप, उद्योत के सिवाय उपर्युक्त प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को सम्यग्दृष्टि होने पर भी बाधकर बधावलिका के अनन्तर उस उत्कृष्ट रस को उपर्युक्त काल पर्यन्त सम्यग्दृष्टि जीव सक्रमित करते है तथा उपर्युक्त काल पर्यन्त उस रस को सुरक्षित

रखकर बाद मे मिथ्यात्व मे भी जाते है, जिससे मिथ्यादृष्टि भी उपर्युक्त प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को सक्रमित करते है।

आतप, उद्योत का उत्कृष्ट अनुभाग मिथ्यादृष्टि ही वाधते है। इसलिये बधावलिका के व्यतीत होने के अनन्तर उन दोनो के उत्कृष्ट रस के सक्रम का तो उनको अभाव नही है और उत्कृष्ट रस सत्ता मे होने पर भी मिथ्यात्व से सम्यक्त्व मे जाने पर सम्यग्दृष्टि भी उन दो प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को सक्रमित करते है। क्योकि शुभ प्रकृति होने से सम्यग्दृष्टि उन दोनो के उत्कृष्ट रस को कम नही करते है, परन्तु सुरक्षित रखते हैं, जिससे सम्यग्दृष्टि को भी उनके उत्कृष्ट रस के सक्रम मे कोई विरोध नही है।

चार आयु के उत्कृष्ट रस को सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वाधकर बधावलिका के वीतने के वाद उस-उस आयु की समयाधिक आवलिका शेष रहे तव तक सम्यग् अथवा मिथ्या इस प्रकार दोनो दृष्टि वाले सक्रमित करते हैं। अर्थात् चार आयु के उत्कृष्ट रस-सक्रम के स्वामी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनो हैं।

यद्यपि तीन आयु का उत्कृष्ट रसबध मिथ्यादृष्टि और देवायु का अप्रमत्त जीव करता है। जिससे जहाँ-जहाँ बध करे, वहाँ-वहाँ तो उत्कृष्ट रस का सक्रम घटित हो सकता है और उत्कृष्ट रस सत्ता मे होने पर भी मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में जाते सम्यग्दृष्टि के तीन आयु के उत्कृष्ट रस का और सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व मे जाते मिथ्यादृष्टि को देवायु के उत्कृष्ट रस का सक्रम घट सकता है।

शेष सातावेदनीय, देवद्विक, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियसप्तक, आहारक-सप्तक, तैजससप्तक, समचतुरस्रसस्थान, शुभवर्णादि एकादश, प्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, अगुरुलघु, पराघात, त्रसदशक, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र रूप चौपन शुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को अपने-अपने बधविच्छेद के समय वाधकर बधावलिका के वाद सयोगिकेवली के चरम समय पर्यन्त उस उत्कृष्ट रस को सक्रमित

करता है। इसलिये इन चौपन प्रकृतियो के उत्कृष्ट रससक्रम के स्वामी सयोगिकेवली जीव जानना चाहिये तथा गाथोक्त 'च' शब्द से उन-उन प्रकृतियो का बधविच्छेद होने के बाद जिस-जिस गुणस्थान में वर्तता हो, उस-उस गुणस्थानवर्ती जीव भी समझना चाहिये। जैसे कि सातावेदनीय, यश कीर्ति और उच्चगोत्र के उत्कृष्ट रस को बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव और शेष प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को नौवे, दसवे और बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव भी सक्रम करने वाले जानना चाहिये।

इस प्रकार से उत्कृष्ट अनुभागसक्रम के स्वामियो का वर्णन जानना चाहिये। तद्दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

उत्कृष्ट अनुभागसक्रम-स्वामी

प्रकृतिया	स्वामी	उत्कृष्ट सक्रम सततकाल
नरकायुरहित शेष ८८ अशुभ प्रकृतिया	युगलिक आनतादि कल्पवासी देवो को छोडकर सभी मिथ्यादृष्टि जीव	अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त
आतप, उद्योत, मनुष्यद्विक औदारिकसप्तक, वज्रऋषभनाराच सहनन	सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि सभी जीव	१३२ सागरोपम पर्यन्त
आयुचतुष्क	उत्कृष्ट अनुभाग बधक सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि	समयाधिक आवलिका शेष पर्यन्त
पूर्वोक्त से शेष ५४ प्रकृति	क्षपक स्वस्वक्षय काल में	क्षयकाल से लेकर सयोगि पर्यन्त

अब जघन्य अनुभागसक्रम के स्वामियो का निर्देश करते है। जघन्य अनुभागसक्रम किसको हो सकता है ? इसका परिज्ञान कराने के लिये गाथासूत्र कहते हैं।

जघन्य अनुभागसक्रमस्वामित्व की सामान्य भूमिका

खवगस्सतरकरणे अकए घाईण जो उ अणुभागो।

तस्स अणतो भागो सुहुमेगिंदिय कए थोवो ॥५६॥

शब्दार्थ—खवगस्सतरकरणे—क्षपक के अन्तरकरण, अकए—न किया हो, घाईण—घाति प्रकृतियो का, जो उ अणुभागो—जो भी अनुभाग, तस्स—उसका, अणतो भागो—अनन्तवा भाग, सुहुमेगिंदिय—सूक्ष्म एकेन्द्रिय के, कए—करने के बाद, थोवो—स्तोक, अल्प।

गाथार्थ—अन्तरकरण न किया हो, तब तक क्षपक के घाति-प्रकृतियो का जो भी अनुभाग (सत्ता में) होता है, उसका अनन्तवा भाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय के होता है और अन्तरकरण करने के बाद स्तोक, अल्प होता है।

विशेषार्थ—जहाँ तक अन्तरकरण नही होता है, वहाँ तक सर्वघाति अथवा देशघाति कर्मप्रकृतियो का जो अनुभाग क्षपक जीव के सत्ता मे होता है, उसका अनन्तवा भाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव के सत्ता मे होता है। अर्थात् जब तक अन्तरकरण किया हुआ नही होता है, तब तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय के सत्तागत अनुभाग से क्षपक के सर्वघाति या देशघाति प्रकृतियो का सत्तागत अनुभाग अनन्तगुणा होता है, परन्तु अन्तरकरण होने के बाद सूक्ष्म एकेन्द्रिय के सत्तागत अनुभाग से रस-घात द्वारा बहुत-सा रस कम हो जाने से क्षपक के घातिकर्मप्रकृतियो का अनुभाग अत्यल्प होता है। तथा—

सेसाण असुभाण केवलिणो जो उ होई अणुभागो।

तस्स अणतो भागो असण्णिपचेंदिए होइ ॥६०॥

शब्दार्थ—सेसाण—शेष, असुभाण—अशुभ प्रकृतियो का, केवलिणो—केवली को, जो उ—जो भी, होइ—होता है, अणुभागो—अनुभाग, तस्स—उसका, अणतो भागो—अनन्तवा भाग, असण्णिपचेंदिए—असज्ञी पचेन्द्रिय को, होइ—होता है।

गाथार्थ—शेष अशुभ प्रकृतियो का केवली के जो अनुभाग होता है, उसका अनन्तवा भाग असज्ञी पचेन्द्रिय के होता है।

विशेषार्थ—शेष अशुभ प्रकृतियो का अर्थात् असातावेदनीय, प्रथम को छोडकर पाच सस्थान और पाच सहनन, अशुभ वर्णादि नवक, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अस्थिर, अशुभ, अपर्याप्त, अयश कीर्ति और नीचगोत्र रूप तीस अघाति अशुभ प्रकृतियो का केवली भगवन्तो को सत्ता मे जो अनुभाग होता, उसका अनन्तवा भाग असज्ञी पचेन्द्रिय के सत्ता मे होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि असज्ञी पचेन्द्रिय के अनुभाग से केवली के उक्त अशुभ प्रकृतियो का अनुभाग अनन्तगुणा होता है। जो अनुभाग जिसके अनन्तवे भाग हो उससे वह अनन्तगुण होता है, यानि कि सर्वघाति अथवा देशघाति प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग का सक्रम क्षपक के अन्तरकरण करने के वाद जानना चाहिये और शेप असातावेदनीय आदि अशुभ अघातिप्रकृतियो का अनुभागसक्रम सयोगिकेवली को नही, किन्तु जिसके रस की सत्ता का अधिक नाग हो गया है, ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रियादि के जानना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण आगे किया जा रहा है

यहाँ एक वात ध्यान मे रखना चाहिये कि मिथ्यादृष्टि शुभ प्रकृतियो के अनुभाग को सक्लेश द्वारा और अशुभ प्रकृतियो के अनुभाग को विशुद्धि द्वारा अन्तर्मुहूर्त के वाद अवश्य नाश करता है, यह पूर्व मे कहा जा चुका है। अतएव जघन्य अनुभाग किसको

सम्भव है, उसके ज्ञान से यह समझ मे आ जायेगा कि जघन्य अनुभागसक्रम कौन करता है।

अब यह स्पष्ट करते है कि सम्यग्दृष्टि अशुभ प्रकृतियो और शुभ प्रकृतियो के रस का क्या करता है—

सम्मद्दिट्ठी न हणइ सुभाणुभाग दु चेव दिट्ठीण।
सम्मत्तमीसगाण उक्कोस हणइ खवगो उ ॥६१॥

शब्दार्थ—सम्मद्दिट्ठी—सम्यग्दृष्टि, न हणइ—कम नही करता है, सुभाणुभाग—शुभ अनुभाग को, दु चेव दिट्ठीण—और दोनो दृष्टियो के, सम्मत्तमीसगाण—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के, उक्कोस—उत्कृष्ट रस का, हणइ—विनाश करता है, खवगो—क्षपक, उ—और।

गाथार्थ—सम्यग्दृष्टि शुभ अनुभाग को कम नही करता है तथा सम्यक्त्व एव मिश्र मोहनीय इन दो दृष्टियो के उत्कृष्ट रस का क्षपक विनाश करता है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि सातावेदनीय, देवद्विक, मनुष्यद्विक, पचेन्द्रियजाति, प्रथम सस्थान और सहनन, औदारिकसप्तक, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक, तैजससप्तक, शुभवर्णादि एकादश, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रसदशक, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र इन छियासठ पुण्यप्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग का विनाश नही करता है परन्तु दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त सुरक्षित रखता है।

यहाँ दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त कहने का कारण यह है कि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का छियासठ सागरोपम उत्कृष्ट निरतर काल है। उतने काल तक जीव सम्यक्त्व का पालन कर अन्तर्मुहूर्त के लिये मिश्र मे जाकर पुन दूसरी वार क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है और उसे भी छियासठ सागरोपम पर्यन्त सुरक्षित रखता है।

तत्पश्चात् या तो मोक्ष प्राप्त करता है अथवा गिरकर मिथ्यात्व मे जाता है। यदि मोक्ष मे जाये तो सर्वथा कर्म का क्षय करता है और यदि मिथ्यात्व मे जाये तो वहाँ जाने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर उत्कृष्ट रस का नाश करता है। जिससे ऊपर के गुणस्थानो मे दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त ही पुण्य प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस को सुरक्षित रखता है।

सम्यक्त्वादि गुणस्थानवर्ती जीव परिणाम प्रशस्त होने से पुण्य प्रकृतियो के रस को सुरक्षित रख सकता है और पाप प्रकृतियो के रस को कम करता है, किन्तु मिथ्यादृष्टि अन्तर्मुहूर्त से अधिक पुण्य अथवा पाप किसी भी प्रकृति के रस को सुरक्षित नही रख सकता है।

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि ये दोनो सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय के उत्कृष्ट रस का नाश नही करते है, परन्तु क्षपक ही नाश करता है। क्षपक क्षयकाल में उन दोनो प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस का विनाश करता है।[1]

इस प्रकार जघन्य अनुभागसक्रम का स्वामी कौन हो सकता है? इसकी सम्भावना का विचार करने के पश्चात् अब जघन्य अनुभागसक्रमस्वामित्व की प्ररूपणा करते है।

जघन्य अनुभागसक्रमस्वामित्व

घाईण जे खवगो जहण्णरससकमस्स ते सामी।
आऊण जहण्णठिइ-बधाओ आवली सेसा ॥६२॥

शब्दार्थ—**घाईण**—घाति प्रकृतियो का, **जे खवगो**—जो क्षपक, **जहण्ण-रससकमस्स**—जघन्य रससक्रम का, **ते**—वह, **सामी**—स्वामी, **आऊण**—

---

१ सम्मद्दिट्ठि न हणइ सुभाणुभाग असम्मदिट्ठी वि।
सम्मत्तमीसगाण उक्कस्स वज्जिया खवण ॥
—कर्मप्रकृति सक्रमकरण गा ५६

आयु का, जहण्णठिइ—जघन्यस्थिति, बधाओ—बध से, आवली सेसा—एक आवलिका शेष तक।

गाथार्थ—जो क्षपक है, वह घाति प्रकृतियो के जघन्य रस-सक्रम का स्वामी है। आयु के जघन्य रससक्रम के स्वामी उस-उस आयु के जघन्य स्थितिबध से लेकर अपनी समयाधिक आवलिका शेष रहने तक के जीव है।

विशेषार्थ—घातिकर्म प्रकृतियो के जघन्य रससक्रम के स्वामी क्षपकश्रेणि मे वर्तमान जीव है। वे क्षपकश्रेणि मे अन्तरकरण करने के बाद स्थितिघातादि द्वारा क्षय करते-करते उन-उन प्रकृतियो की जघन्य स्थिति जहाँ-जहाँ सक्रमित करते है, वहाँ-वहाँ जघन्य रस को भी सक्रमित करते है। अर्थात् अन्तरकरण करने के बाद अनिवृत्ति-बादरसपरायगुणस्थानवर्ती क्षपक नव नोकषाय और सज्वलनचतुष्क का अन्तरकरण करने के बाद उनका अनुक्रम से क्षय करने पर उस-उस प्रकृति की जघन्य स्थिति के सक्रमकाल मे जघन्य रस भी सक्रमित करते हैं।[1]

ज्ञानावरणपचक, अन्तरायपचक, दर्शनावरणचतुष्क, निद्राद्विक, इन सोलह प्रकृतियो का समयाधिक आवलिका रूप शेष स्थिति मे वर्तमान क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अनुभाग सक्रमित करता है।[2]

---

१ क्षपक सूक्ष्मसपरायगुणस्थानवर्ती समयाधिक आवलिका शेष रहे, उसी समय जघन्य स्थितिसक्रम के स्वामी है। अत सज्वलन लोभ के जघन्य अनुभागसक्रम के स्वामी वे ही सम्भव है।

२ सामान्य से यह कथन जानना चाहिये। क्योकि निद्राद्विक का तो असख्येयभागाधिक आवलिकाद्विक शेष रहने पर क्षीणकषायगुणस्थान मे जघन्य अनुभागसक्रम होता है।

सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय का क्षपक जीव अपने-अपने चरम खण्ड के सक्रमकाल मे जघन्य अनुभाग सक्रमित करता है।

चार आयु की जघन्य स्थिति को बाधकर बधावलिका के जाने के बाद उस-उस आयु की समयाधिक एक आवलिका शेष रहे वहाँ तक जघन्य अनुभाग सक्रमित करता है।[1] यहाँ जघन्य स्थिति का ग्रहण इसलिये किया है कि आयुकर्म मे जघन्य स्थिति बधे तब रस भी जघन्य बधता है। तथा—

अणतित्थुव्वलगाण सभवओ आवलिए परएणं।
सेसाण इगिसुहुमो घाइयअणुभागकम्मसो ॥६३॥

शब्दार्थ—अणतित्थुव्वलगाण—अनन्तानुबधी, तीर्थकरनाम और उद्वलन योग्य प्रकृतियो के, सभवओ—सम्भव से, आवलिए परएण—आवलिका के वाद, सेसाण—शेष प्रकृतियो के, इगिसुहुमो—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, घाइयअणुभागकम्मसो—जिसने प्रभूत अनुभाग का घात किया है।

गाथार्थ—जघन्य रसबध के सम्भव से लेकर आवलिका के वाद अनन्तानुबधी, तीर्थंकर और उद्वलनयोग्य प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग को सक्रमित करता है। शेष प्रकृतियो के जघन्य

---

1 किसी भी कर्म की वध होने तक उद्वर्तना होती है। अर्थात् उद्वर्तना का वध के साथ सम्बन्ध है, किन्तु अपवर्तना का वध के साथ सम्बन्ध नही है। वध हो या न हो पर अपवर्तनायोग्य अध्यवसाय चाहे जब होते है। चार आयु की जघन्य स्थिति बधने पर उसका रस भी जघन्य वधता है। यदि उस जघन्य आयु के वधकाल तक मे उसके रस की उद्वर्तना न हो तो वैसा ही जघन्य रस सत्ता मे रहता है और उसे समयाधिक आवलिका शेष रहे वहाँ तक सक्रमित करता है तथा जहाँ-जहाँ अन्यस्वरूप करने रूप सक्रम घटित हो सकता है, वहाँ-वहाँ वह सक्रम तथा अन्य स्थान मे उद्वर्तना, अपवर्तना जो सम्भव हो वह समझना चाहिये।

रस का सक्रम जिसने सत्ता मे से प्रभूत अनुभाग का घात किया है ऐसा सूक्ष्म एकेन्द्रिय करता है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबधिचतुष्क, तीर्थंकरनाम और उद्वलन-योग्य—नरकद्विक, मनुष्यद्विक, देवद्विक, वैक्रियसप्तक, आहारक-सप्तक, उच्चगोत्र रूप इक्कीस प्रकृतियो का जघन्य रसबध के सभव से लेकर बधावलिका के व्यतीत होने के बाद यानि कि उक्त प्रकृतियो का जघन्य रस वाधकर आवलिका—बधावलिका के बीतने के अनन्तर जघन्य अनुभाग सक्रमित करता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वैक्रियसप्तक, देवद्विक, नरकद्विक का जघन्य अनुभाग असज्ञी पचेन्द्रिय सक्रमित करता है। मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र का सूक्ष्म-निगोदिया जीव, आहारकसप्तक का अप्रमत्त, तीर्थंकरनाम का अवि-रतसम्यग्दृष्टि, अनन्तानुबधिकषाय का पश्चात्कृतसम्यक्त्व—सम्यक्त्व से गिरा हुआ मिथ्यादृष्टि जघन्य रस सक्रमित करता है। असज्ञी आदि उस-उस प्रकृति का जघन्य रस वाधकर बधावलिका के बीतने के बाद सक्रमित कर सकते है।

इन छब्बीस प्रकृतियो का जघन्यानुभागसक्रम एक समय मात्र होता है, तत्पश्चात् अजघन्य सक्रम प्रारम्भ होता है।

पूर्वोक्त से शेष रही सत्तानवै प्रकृतियो का जिसने सत्ता मे से बहुत से रस का नाश किया हे, ऐसा तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय को जितने रस की सत्ता होती है, उससे भी अल्प रस को वाधने वाला और उस भव मे या अन्य द्वीन्द्रियादि भव मे रहते जब तक अन्य अधिक अनुभाग न वाधे, तब तक जघन्य अनुभाग को सक्रमित करता हुआ सूक्ष्म एकेन्द्रिय तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव जघन्य अनुभागसक्रम का स्वामी है। क्योकि अत्यन्त अल्प रस की सत्ता वाला और अत्यन्त अल्प रस वाधता सूक्ष्म एकेन्द्रिय तेजस्कायिक या वायुकायिक उसी भव मे

वर्तता हो अथवा अन्य द्वीन्द्रियादि के भव मे वर्तता हो, परन्तु जब तक अधिक रस न बाधे तब तक ही जघन्य रस सक्रमित करता है।

इस प्रकार से जघन्य अनुभागसक्रम-स्वामित्व-प्ररूपणा जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये जिसका प्रारूप पृष्ठ १४६ पर देखिए।

अब क्रम प्राप्त साद्यादि प्ररूपणा का विचार करते है।

साद्यादि प्ररूपणा

अनुभागसक्रम की साद्यादि प्ररूपणा के दो प्रकार है—मूलप्रकृति-विपयक और उत्तरप्रकृतिविषयक। उसमे से पहले मूलप्रकृतिविषयक साद्यादि प्ररूपणा करते है—

साइयवज्जो अजहण्णसंकमो पढमदुइयचरिमाण।
मोहस्स चउविगप्पो आउसणुक्कोसओ चउहा ॥६४॥

शब्दार्थ—**साइयवज्जो**—सादि के बिना, **अजहण्णसकमो**—अजघन्य अनुभागसक्रम, **पढमदुइयचरिमाण**—पहले, दूसरे और अतिम कर्म का, **मोहस्स**—मोहनीयकर्म का, **चउविगप्पो**—चार प्रकार का, **आउसणुक्कोसओ**—आयु का अनुत्कृष्ट अनुभाग, **चउहा**—चार प्रकार का।

गाथार्थ—पहले, दूसरे और अतिम कर्म का अजघन्य अनुभाग-सक्रम सादि के बिना तीन प्रकार का तथा मोहनीय का चार प्रकार का और आयु का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम चार प्रकार का है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय इन तीन कर्म का अजघन्य अनुभागसक्रम सादि भग को छोडकर अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का है। जिसका स्पष्टीकरण यह है—

इन तीनो कर्मों का जघन्य अनुभागसक्रम क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक एक आवलिका स्थिति शेष हो तब होता है, वह एक समय

जघन्य अनुभागसक्रम-स्वामित्व

प्रकृतिया	स्वामी
घाति प्रकृतिया	जघन्य स्थितिसक्रमक अन्तरकरण के बाद
नव नोकपाय, सज्वलनचतुष्क	क्षपक, जघन्य स्थितिसक्रमक नौवे गुणस्थानवर्ती
ज्ञानावरणपचक, अतरायपचक दर्शनावरणषट्क	क्षीणमोही, समयाधिक आवलिका शेष
सम्यक्त्व मिश्र मोहनीय	क्षयकाल मे अतिम खड सक्रमक
आयुचतुष्टय	जघन्य स्थितिबधक
नरकद्विक, देवद्विक, वैक्रियसप्तक	जघन्य अनुभागबधक असज्ञी पचेन्द्रिय
मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र	सूक्ष्म निगोदजीव
आहारकसप्तक	अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती
तीर्थंकरनाम	अविरत सम्यग्दृष्टि
अनन्तानुवधिकपायचतुष्क	पश्चात्कृतसम्यक्त्व वाले मिथ्या-दृष्टि
उक्त से शेप ६७ प्रकृतिया	प्रभूत अनुभाग की सत्ता के नाश करने वाले अग्निकायिक, वायुकायिक, अन्य भव मे भी ये दोनो जव तक वृहदनुभाग का वध नही करते हैं

मात्र होने से सादि-सात है, उसके सिवाय अन्य सव अजघन्य अनुभाग-सक्रम प्रवर्तमान रहता है और वह प्रत्येक आत्मा को अनादिकाल से प्रवर्तित होते रहने से अनादि है, अभव्य के भविष्य मे किसी भी काल मे नाश नही होने से ध्रुव-अनन्त है और भव्य वारहवे गुणस्थान के चरम समय मे अजघन्य अनुभाग-सक्रम का नाश करेगा, इसलिये उसकी अपेक्षा अध्रुव-सात है। वारहवे गुणस्थान से पतन नही होने से अजघन्य अनुभागसक्रम की सादि-शुरुआत नही होती है।

मोहनीय का अजघन्य अनुभागसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार है। वह इस प्रकार से जानना चाहिये—

क्षपकश्रेणि मे वर्तमान जीव के दसवे गुणस्थान की समयाधिक एक आवलिका शेप स्थिति हो तव मोहनीय का जघन्य अनुभागसक्रम होता है। एक समय मात्र ही होने से वह सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य समस्त अनुभागसक्रम अजघन्य है, वह उपशमश्रेणि मे वर्तमान क्षायिकसम्यक्त्वी के उपशातमोहगुणस्थान मे नही होता है, किन्तु उपशातमोहगुणस्थान से पतन हो तब होता है, इसलिये सादि है, उस स्थान को जिन्होने अभी तक प्राप्त नही किया, उनकी अपेक्षा अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सात है।

आयु का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि आदि चार प्रकार का है। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

अप्रमत्तसयतगुणस्थान मे देवायु का उत्कृष्ट अनुभाग बाधकर उसकी बधावलिका के जाने के बाद सक्रमित करने की शुरुआत करता है और उसे—उत्कृष्ट रस को—अनुत्तर देव के भव मे आवलिका न्यून तेतीस सागरोपम पर्यन्त सक्रमित करता है। अर्थात् अनुत्तर देव के भव मे रहते उत्कृष्ट रस को वहाँ तक सक्रमित करता है यावत् तेतीस सागरोपम प्रमाण स्थिति जाये और मात्र उसकी एक अतिम आवलिका स्थिति शेप रहे। उसके सिवाय आयु का समस्त अनुभाग-

सक्रम अनुत्कृष्ट है। अनुत्तर देव मे से मनुष्य मे आते अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम प्रवर्तमान रहता है, इसलिये सादि है, उस स्थान को जिसने प्राप्त नही किया, उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सात है। तथा—

साइयवज्जो वेयणियनामगोयाण होइ अणुक्कोसो ।
सव्वेसु सेसभेया साई अधुवा य अणुभागे ॥६५॥

शब्दार्थ—**साइयवज्जो**—सादि के विना, **वेयणियनामगोयाण**—वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म का, **होइ**—होता है, **अणुक्कोसो**—अनुत्कृष्ट, **सव्वेसु**—सभी के, **सेसभेया**—शेष भेद, **साई अधुवा**—सादि, अध्रुव, **य**—और, **अणुभागे**—अनुभागसक्रम मे ।

गाथार्थ—वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि के बिना तीन प्रकार का है। सभी कर्मों के शेष भेद सादि और अध्रुव है।

विशेषार्थ—वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि के सिवाय अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के उत्कृष्ट अनुभाग का बध क्षपकश्रेणि मे सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय मे होता है। वहाँ उत्कृष्ट रस वाधकर उसकी वधावलिका के वीतने के बाद सयोगिकेवली के चरमसमय पर्यन्त सक्रमित करता है और अमुक नियत काल पर्यन्त ही उत्कृष्ट रस का सक्रम होने से वह सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य समस्त अनुभागसक्रम अनुत्कृष्ट है, वह सामान्यत सभी जीवो को अनादिकाल से होता है, इसलिये अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सात है।

सभी मूलकर्मो के अनुभागसक्रमसम्बन्धी पूर्वोक्त के सिवाय शेप विकल्प सादि, अध्रुव (सात) है। जैसे कि चार घातिकर्म के उत्कृष्ट,

अनुत्कृष्ट और जघन्य ये तीन शेप है। उनमे जघन्य सादि-सात है। जिसका स्पष्टीकरण अजघन्यभग के विचार मे किया जा चुका है। चार घातिकर्म का मिथ्यादृष्टि जब उत्कृष्ट रस वाधे और उसकी वधावलिका के जाने के वाद जव तक सत्ता रहे, तव तक सक्रमित करता है, उसके बाद अनुत्कृष्ट को सक्रमित करता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव के एक के वाद एक के क्रम से उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट रस का सक्रम होते रहने से वे दोनो सादि-सात है तथा चार अघातिकर्म के जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट ये तीन विकल्प शेप है। उनमे से अनुत्कृष्ट रससक्रम के प्रसग मे उत्कृष्ट रससक्रम का विचार किया जा चुका है। जघन्य रससक्रम सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय के होता है तथा अजघन्य भी उसी के होता है, इसलिये वे दोनो सादि-सात है।

इस प्रकार से अनुभागसक्रम विषयक मूलकर्मसम्वन्धी साद्यादि प्ररूपणा जानना चाहिये। अव उत्तरप्रकृतिसम्वन्धी साद्यादि प्ररूपणा करते है।

अनुभागसक्रमापेक्षा उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा

अजहण्णो चउभेओ पढमगसंजलणनोकसायाणं।
साइयवज्जो सो च्चिय जाणं खवगो खविय मोहो ॥६६॥

शब्दार्थ—अजहण्णो—अजघन्य, चउभेओ—चार प्रकार का, पढमगसजलणनोकसायाण—प्रथम कपाय, सज्वलन और नव नोकषायो का, साइयवज्जो—सादि के विना, सो च्चिय—वही (अजघन्य), जाण—जिनका, खवगो—क्षपक, खविय मोहो—मोह का क्षय किया है।

गाथार्थ—प्रथम कपाय (अनन्तानुवधिकपाय), सज्वलनकपाय और नव नोकपाय का अजघन्य अनुभागसक्रम चार प्रकार का है तथा जिन प्रकृतियो का क्षपक—जिसने मोह का क्षय किया ऐसा—जीव है, उनका अजघन्य अनुभागसक्रम सादि के विना तीन प्रकार का है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबधिकषायचतुष्क, सज्वलनकषायचतुष्क तथा नव नोकषाय इन सग्रह प्रकृतियो का अजघन्य अनुभागसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। जिसका स्पष्टीकरण यह है—अनन्तानुबधिकषायचतुष्क के सिवाय शेष तेरह प्रकृतियो का जघन्य अनुभागसक्रम उन-उन प्रकृतियो के क्षयकाल में उनकी जघन्य स्थिति का जब सक्रम होता है, तब होता है और अनन्तानुबधिकषायचतुष्क का जघन्य अनुभागसक्रम सम्यक्त्व अवस्था मे उन कषायो की उद्वलनासक्रम द्वारा सर्वथा उद्वलना हो जाये, उसके बाद गिरकर मिथ्यात्व मे आने पर और वहाँ मिथ्यात्व रूप हेतु के द्वारा पुन बध हो तो बधावलिका के बीतने के पश्चात् दूसरी आवलिका के प्रथम समय में होता है।

प्रश्न—सज्वलनचतुष्क आदि प्रकृतियो का जघन्य रससक्रम उनके जघन्य स्थितिसक्रमकाल मे कहा और अनन्तानुबधि का उस कपाय के सर्वथा उद्वलित हो जाने के वाद मिथ्यात्व में आकर पुन बाधे और उसकी बधावलिका के जाने के बाद दूसरी आवलिका के प्रथम समय मे कहा है, तो इसका कारण क्या है ? जघन्य स्थितिसक्रमकाल में उसका जघन्य रससक्रम क्यो नही वताया है ?

उत्तर—अनन्तानुवधि की जघन्यस्थिति का सक्रम अनन्तानुवधि की विसयोजना करने पर उसका चरम खड सर्वथा सक्रमित करे तब होता है। उस समय चरम खड में कालभेद से अनेक समय के बधे हुए दलिक होते है। अनेक समय के वधे हुए दलिक होने के कारण उसमें शुद्ध एक ही समय के वधे हुए दलिको के रस से अधिक रस होना स्वाभाविक है। इसीलिये ऊपर के गुणस्थान मे अनन्तानुवधि का नाश करके गिरने पर पहले गुणस्थान में आये तब वहाँ तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम की शक्यतानुरूप अल्प स्थिति और रस वाले दलिक वाधे, वधावलिका के वीतने के अनन्तर दूसरी आवलिका के प्रथम समय में वह शुद्ध एक समय के वधे हुए जघन्य रस युक्त दलिक को सक्रमित

करता है, उसे जघन्य रससक्रम कहा है। अनन्तानुबधि के सिवाय दूसरी कोई भी मोहप्रकृति सत्ता मे से सर्वथा नष्ट होने के बाद पुन बधकर सत्ता प्राप्त नही करती, किन्तु अनन्तानुबधिकषाय ही ऐसी है कि सत्ता मे से सर्वथा नाश होने के बाद मिथ्यात्व रूप बीज नाश न हुआ हो तो पुन सत्ता मे आ सकती है। इसीलिये उसके जघन्य रस-सक्रम का काल और सज्वलनादि के जघन्य रससक्रम का काल पृथक्-पृथक् बताया है।[1]

इसके अतिरिक्त इन सत्रह प्रकृतियो का समस्त अनुभागसक्रम अजघन्य है। उपशमश्रेणि मे सर्वथा उपशान इन सत्रह प्रकृतियो का अजघन्य अनुभागसक्रम नही होता है। किन्तु वहाँ से गिरने पर होता है, इसलिये वह सादि है। जिसने उस स्थान को प्राप्त नही किया, उसकी अपेक्षा अनादि, भव्य की अपेक्षा अध्रुव और अभव्य की अपेक्षा ध्रुव है।

ज्ञानावरणपचक, स्त्यानर्द्धित्रिक रहित दर्शनावरणषट्क और अन्तरायपचक रूप सोलह प्रकृतियो का क्षपक क्षीणमोहगुणस्थानवर्ती जीव है। इन प्रकृतियो का अजघन्य अनुभागसक्रम सादि के सिवाय अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का है। वह इस तरह जानना चाहिये—इन सोलह प्रकृतियो का जघन्य अनुभागसक्रम क्षीण-कषायगुणस्थान की समयाधिक एक आवलिका स्थिति शेष रहे, तब होता है। एक समय प्रमाण होने से वह सादि-सात है। उसके सिवाय शेष समस्त अनुभागसक्रम अजघन्य है। उसकी आदि नही है, अत अनादि है। भव्य के अध्रुव और अभव्य के ध्रुव है। तथा—

---

१ इसी प्रकार प्राय जिन प्रकृतियो का नाश होने के पश्चात् पुन बध हो सकता हो, उनका जघन्य अनुभागसक्रम अनन्तानुबधि के समान कहना चाहिये।

सुभधुवचउवीसाए होइ अणुक्कोस साइपरिवज्जो ।
उज्जोयरिसभओरालियाण चउहा दुहा सेसा ॥६७॥

शब्दार्थ—सुभधुवचउवीसाए—ध्रुवबधिनी शुभ चौवीस प्रकृतियो का, होइ—होता है, अणुक्कोस—अनुत्कृष्ट, साइपरिवज्जो—सादि के बिना, उज्जोयरिसभओरालियाण—उद्योत, वज्रऋषभनाराचसहनन और औदारिकसप्तक का, चउहा—चार प्रकार का, दुहा—दो प्रकार के, सेसा—शेष ।

गाथार्थ—ध्रुवबधिनी शुभ चौवीस प्रकृतियो का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि के बिना तीन प्रकार का है तथा उद्योत, वज्रऋषभनाराचसहनन और औदारिकसप्तक का अनुत्कृष्ट रससक्रम चार प्रकार का है और शेष विकल्प दो प्रकार के है।

विशेषार्थ—प्राय जिन प्रकृतियो का सम्यग्दृष्टि जीवो के ध्रुव बध होता है ऐसी शुभ ध्रुव—त्रसदशक, सातावेदनीय, पचेन्द्रियजाति, अगुरुलघु, उच्छ्वास, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, समचतुरस्रसस्थान, पराघात, तैजस, कार्मण, शुभवर्णचतुष्क—चौवीस प्रकृतियो का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि को छोडकर अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का है । यदि तैजस और कार्मण के ग्रहण से उसका सप्तक और शुभवर्णादि चतुष्क के स्थान पर शुभवर्णादि एकादश को लिया जाये तो चौवीस में बारह को मिलाने पर छत्तीस प्रकृतिया होती है ।[1] अत विस्तार से इन छत्तीस प्रकृतियो के अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम के भगो का विचार किया जाये तो वह अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार का जानना चाहिये ।

अब इन तीन भगो को घटित करते है—इन चौवीस प्रकृतियो

---

१ कर्मप्रकृति मे 'तिविहो छत्तीसाए अणुक्कोसो' इस पद से छत्तीस प्रकृतिया ग्रहण की है । अतएव विवक्षावशात् बधन, सघातन और वर्णादि के भेद ग्रहण करें तो भी कोई विरोध नही है ।

का उत्कृष्ट अनुभाग क्षपकश्रेणि में वर्तमान क्षपक अपने-अपने बध-विच्छेद के समय बाधता है। उस उत्कृष्ट रस को बाधने के अनन्तर बधावलिका के बीतने के बाद सक्रमित करना प्रारम्भ करता है और उसको वहाँ तक सक्रमित करता है, यावत् सयोगिकेवली का चरम समय प्राप्त हो। क्षपक बादरसपराय, सूक्ष्मसपराय, क्षीणमोह और सयोगिकेवली के सिवाय शेष सबको इन प्रकृतियो का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम होता है। उसकी आदि नही है, अनादि काल से हो रहा है, इसलिये अनादि है। अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सात है।

उद्योत, वज्रऋषभनाराचसहनन और औदारिकसप्तक का अनुत्कृष्ट अनुभागसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—उद्योत के सिवाय शेष उक्त आठ प्रकृतियो का उत्कृष्ट अनुभाग अत्यन्त विशुद्ध परिणामी सम्यग्दृष्टि देव बाधता है और बाधकर आवलिका के व्यतीत होने के अनन्तर सक्रमित करता है तथा उद्योतनाम का सम्यक्त्व को प्राप्त करता हुआ अनिवृत्तिकरण के चरम समय में वर्तमान मिथ्यादृष्टि सातवी नरक पृथ्वी का जीव उत्कृष्ट अनुभाग बाधता है और उसे बधावलिका के बीतने के बाद सक्रमित करता है। वह नौ प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग को जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त सक्रमित करता है। यद्यपि सातवी नरक पृथ्वी मे सम्यक्त्व में वर्तमान जीव अतिम अन्तर्मुहूर्त में तो अवश्य मिथ्यात्व में जाता है, तो भी आगे के तिर्यंचभव में जो जीव अपर्याप्तावस्था के अन्तर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, उसको यहाँ ग्रहण नही किया है। यहाँ बीच में थोडा-सा मिथ्यात्व का काल होने पर भी उसकी विवक्षा नही की है। इसलिये दो छियासठ सागरोपम उत्कृष्ट अनुभागसक्रम का काल कहा है। उत्कृष्ट से गिरने पर अनुत्कृष्ट अनुभाग का सक्रम होता है। वह जब होता है, तब सादि, जिसने उस स्थान को प्राप्त नही किया उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है।

उक्त प्रकृतियो के शेप विकल्प सादि, अध्रुव (सात) इस तरह दो प्रकार के हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—अनन्तानुबधिचतुष्क आदि सत्रह और ज्ञानावरणादि सोलह प्रकृतियो का उत्कृष्ट अनुभाग-सक्रम अतिसक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि के होता है। उत्कृष्ट अनु-भाग का बधक सक्लिष्ट मिथ्यात्वी है और बधावलिका के जाने के वाद सक्रमित करता है। अन्तर्मुहूर्त के वाद अनुत्कृष्ट होता है तथा जव उत्कृष्ट रस वाधे, तव उत्कृष्ट अनुभागसक्रम, तत्पश्चात् अनु-त्कृष्ट रससक्रम होता है। इस प्रकार अदल-वदल के क्रम से होने के कारण वे दोनो सादि-सात है। जघन्य के सादि, अध्रुव (सात) होने के सम्बन्ध मे पहले विचार किया जा चुका है तथा शुभ ध्रुव चौवीस प्रकृतियो का जघन्य अनुभागसक्रम जिसने वहुत से रस की सत्ता का नाश किया है, ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय के होता है। जव तक उस प्रकार के बहुत से रस की सत्ता का नाश न किया हो, तव तक उसे भी अजघन्य रससक्रम होता है, इसलिये वे दोनो भी सादि-अध्रुव (सात) हैं। उत्कृष्ट विपयक विचार तो अनुत्कृष्ट के भग कहने के प्रसग मे किया जा चुका है।

शेष प्रकृतियो मे से शुभ प्रकृतियो का विशुद्ध परिणाम से और अशुभ प्रकृतियो का सक्लेश परिणाम से उत्कृष्ट अनुभागबध सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त को होता है और शेष काल मे अनुत्कृष्ट रसबध होता है। जैसे बध होता है, उसी प्रकार सक्रम भी होता है, इसलिये वे दोनो सादि-सात है तथा जघन्य अनुभागसक्रम जिसने वहुत से रस की सत्ता का नाश किया हो ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव के होता है। जब तक उस प्रकार के वहुत से रस की सत्ता का नाश न हुआ हो, तब तक अजघन्य रससक्रम उस सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अथवा अजघन्य रस की सत्ता वाले अन्य जीवो के भी होता है, इसलिये वे दोनो सादि-सात है।

इस प्रकार से उत्तर प्रकृतियो के जघन्यादि विकल्पो की सादि-आदि भगो की प्ररूपणा जानना चाहिये। सुगम बोध के लिये मूल और उत्तर [illegible] य। के अनुभागसक्रम की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारुप इस प्रकार है—

मूलप्रकृति सम्बन्धी अनुभागसंक्रम की साद्यादि प्ररूपणा

प्रकृतियां	अजघन्य				जघन्य		अनुत्कृष्ट				उत्कृष्ट	
	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव
ज्ञानावरण दर्शनावरण, अन्तराय	/	भव्य	अक्षीण मोही	अभव्य	१२ वे गुण मे समयाधिक आवली शेष	सादि होने से	उत्कृष्ट से आने वाले के प्रथम समय मे	सादि होने से	×	×	नियत काल होने से	सादि होने से
मोहनीय	११वें गुण से पतित औपशमिक सम्यक्त्वी	,,	सादि स्थान अप्राप्त के	,,	क्षपक १०वें गुण समयाधिक आवली शेष	,,	,,	,,	×	×	,,	,,
आयु	अल्प प्रभूत अनुभाग वाले के	सादि होने से	[illegible]	[illegible]	हत प्रभूत अनुभाग वाले के	,,	उत्कृष्ट से अन्य बंधकों के	भव्य	सादि अप्राप्त के	अभव्य	उत्कृष्ट सत्ता का मनुष्य अनुत्तर देवों के	,,
नाम, गोत्र, वेदनीय	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	,,	आदि का अभाव होने से	,,	क्षपक १२, १३ वें गुण	,,

इस प्रकार अनुभागसक्रम का विचार समाप्त हुआ।

प्रदेशसक्रम

अब क्रमप्राप्त प्रदेशसक्रम का प्रतिपादन करते है। इसके विचार करने के पाच अधिकार है—१ भेद, २ लक्षण, ३ साद्यादि प्ररूपणा, ४ उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामी और ५ जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामी। इन पाच अधिकारो मे से पहले भेद और लक्षण इन दो अधिकारो का प्रतिपादन करते है।

प्रदेशसक्रम के भेद एव लक्षण

विज्झा-उव्वलण-अहापवत्त-गुण-सव्वसकमेहि अणू।
ज नेइ अण्णपगइ पएससकामण एय ॥६८॥

शब्दार्थ—विज्झा-उव्वलण-अहापवत्त-गुण-सव्वसकमेहि—विध्यात, उद्वलन, यथाप्रवृत्त, गुण और सर्व सक्रम द्वारा, अणू—परमाणुओ को, ज—जो, नेइ—ले जाया जाता है, अण्णपगइ—अन्यप्रकृतिरूप, पएससकामण—प्रदेशसक्रमण, एय—वह।

गाथार्थ—विध्यात-उद्वलन-यथाप्रवृत्त-गुण और सर्व सक्रम द्वारा कर्मपरमाणुओ को जो अन्यप्रकृति रूप ले जाया जाता है, वह प्रदेशसक्रम कहलाता है।

विशेषार्थ—विध्यातसक्रम, उद्वलनासक्रम, यथाप्रवृत्तसक्रम, गुणसक्रम और सर्वसक्रम के भेद से प्रदेशसक्रम पाच प्रकार का है।

इन पाच सक्रम प्रकारो द्वारा जिनकी बधावलिका व्यतीत हो चुकी है, ऐसे सत्तागत कर्मपरमाणुओ—वर्गणाओ को पतद्ग्रहप्रकृति मे प्रक्षेप करके उस रूप करना प्रदेशसक्रम कहलाता है। इन पाचो सक्रम द्वारा जीव अन्य स्वरूप मे रहे हुए सत्तागत कर्मपरमाणुओ को पतद्ग्रहप्रकृति रूप करता है। जैसे कि सातावेदनीय के परमाणुओ को

वधती हुई असाता रूप मे अथवा असाता के परमाणुओ को वधती हुई साता रूप करे तो वह सव प्रदेशसक्रम कहलाता है। अर्थात् विध्यातादि सक्रमो द्वारा कर्मपरमाणुओ को जो अन्यप्रकृति रूप किया जाता है, उसे प्रदेशसक्रम कहते है।

इस प्रकार सामान्य से प्रदेशसक्रम का लक्षण और उसके भेद जानना चाहिये। अव पूर्वोक्त पाचो भेदो में से क्रमानुसार पहले विध्यातसक्रम का स्वरूप वतलाते है।

विध्यातसक्रम

जाण न वधो जायइ आसज्ज गुण भव व पगईणं।

विज्झाओ ताणगुलअसखभागेण अण्णत्थ ॥६६॥

शब्दार्थ—जाण न वधो जायइ—जिनका वध नही होता हो, आसज्ज गुण भव व—गुण अथवा भव के आश्रय से, पगईण—प्रकृतियो का, विज्झाओ—विध्यातसक्रम, ताणगुलअसखभागेण—उनको अगुल के असख्यातवें भाग के द्वारा, अण्णत्थ—अन्यत्र (परप्रकृतिरूप)।

गाथार्थ—जिन कर्मप्रकृतियो का गुण अथवा भव के आश्रय से वध न होता हो, उन प्रकृतियो का विध्यातसक्रम होता है। प्रथम समय मे विध्यातसक्रम द्वारा जितना दलिक परप्रकृति में सक्रमित किया जाता है, उस प्रमाण से शेष दलिको को भी सक्रमित किया जाये तो उनको अगुल के असख्यातवे भाग मे विद्यमान आकाश प्रदेश जितने समयो द्वारा सक्रान्त किया जाता है।

विशेषार्थ—सक्रम का सामान्य लक्षण तो प्रकरण के प्रारभ में कहा जा चुका है और प्रदेशसक्रम द्वारा सत्तागत कर्मपरमाणुओ को अन्य स्वरूप किया जाता है। वे कर्मपरमाणु अन्य स्वरूप कैसे होते है, यह प्रदेशसक्रम के पाचो भेदो का स्वरूप जानने से समझा जा सकेगा

अतएव प्रथम विध्यातसक्रम का स्वरूप और वह किन प्रकृतियो का होता है, इसको वतलाते है—

विध्यात—विशिष्ट सम्यक्त्व आदि गुण अथवा देवादि भव के आश्रय से जिन कर्मप्रकृतियो का वध शात हुआ है—नष्ट हुआ है, वध नही होता है, वैसी प्रकृतियो का जो सक्रम होता है, उसे विध्यात-सक्रम कहते है ।

यह विध्यातसक्रम किन प्रकृतियो का होता है, इसको स्पष्ट करने के लिये भव या गुण के आश्रय से जिन प्रकृतियो का वध नही होता है, उन प्रकृतियो को वतलाते है कि मिथ्यात्वगुणस्थान मे सोलह प्रकृतियो का वधविच्छेद होता है, जिससे उन सोलह प्रकृतियो का सासादन आदि गुणस्थानो मे गुणनिमित्तक वध नही होता है । इसी प्रकार से सासादनगुणस्थान मे पच्चीस प्रकृतियो का वधविच्छेद होता है, उनका मिश्र आदि गुणस्थानो मे वध नही होता है । अविरत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थान मे दस प्रकृतियो का बधविच्छेद होता है, उनका देशविरत आदि गुणस्थानो मे, देशविरतगुणस्थान मे चार का बध-विच्छेद होता है, उनका प्रमत्त आदि गुणस्थानो मे, प्रमत्तगुणस्थान मे छह प्रकृतियो का बधविच्छेद होता है, उनका अप्रमत्त आदि गुण-स्थानो मे बध नही होता है । जिस-जिस गुणस्थान से बध नही होता है, उन-उन प्रकृतियो का वहाँ से विध्यातसक्रम प्रवर्तित होता है ।

वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक, देवद्विक, नरकद्विक, एकेन्द्रियादि जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त और आतप इन सत्ताईस प्रकृतियो को नारक और सनत्कुमार आदि स्वर्ग के देव भव-निमित्त से बाधते नही है । तिर्यंचद्विक और उद्योत के साथ पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियो को आनत आदि के देव बाधते नही हैं । सहनन-षट्क, प्रथम सस्थान को छोडकर शेष सस्थान, नपु सकवेद, मनुष्य-द्विक, औदारिकसप्तक, एकान्त तिर्यंचगतिप्रायोग्य स्थावरदशक, दुर्भग-

गत्रिक, नीचगोत्र और अप्रशस्त विहायोगति, इन प्रकृतियो को भव-स्वभाव से युगलिक बाधते नही है।

इस प्रकार जो-जो प्रकृतिया जिस-जिस गति मे भवनिमित्त मे बधती नही, उन-उनका वहाँ-वहाँ विध्यातसक्रम प्रवर्तित होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस-जिस कर्म का जिस-जिसको अथवा जहाँ-जहाँ गुणनिमित्त अथवा भवनिमित्त से बध नही होता है, वह-वह कर्म, उस-उस को अथवा वहाँ-वहाँ विध्यातसक्रमयोग्य है। अर्थात् उन-उन कर्मप्रकृतियो का वहाँ-वहाँ विध्यातसक्रम प्रवर्तित होता है, ऐसा समझना चाहिये।

अब दलिक के प्रमाण का निरूपण करते है—

विध्यातसक्रम द्वारा पहले समय मे जितने कर्मदलिक परप्रकृति मे प्रक्षेप किया जाता है, उतने प्रमाण मे शेप दलिक को भी परप्रकृति मे प्रक्षेप किया जाये तो अगुलमात्र क्षेत्र के असख्यातवे भाग मे जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतने समयो द्वारा पूर्ण रूप से सक्रमित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम समय मे जितना कर्म-दलिक विध्यातसक्रम द्वारा अन्यप्रकृति मे सक्रमित किया जाता है, उस प्रमाण से यदि उस प्रकृति के अन्य दलिक को सक्रमित किया जाये तो उसको पूर्ण रूप से सक्रमित करने मे उपर्युक्त आकाशप्रदेशो की सख्या प्रमाण समयो जितना (असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण) काल व्यतीत होगा।

इस सक्रम द्वारा किसी भी कर्मप्रकृति के सभी दलिक सत्ता में से नि शेप नही होते है। यहाँ तो असत्कल्पना से इस क्रम से यदि सक्र-मित हो तो कितना काल व्यतीत होगा, इसका सकेतमात्र किया है।

यह विध्यातसक्रम प्राय यथाप्रवृत्तसक्रम के अन्त मे प्रवर्तित होता है। ऐसा कहने का कारण यह है कि यथाप्रवृत्तसक्रम सामान्य

विध्यातसक्रम-प्रारूप

प्रकृतिया	स्वामित्व	प्रत्यय
मिथ्यात्व, नरकायुवर्जित मिथ्यात्वगुण मे अत होने वाली (१४)	सासादनादिक गुणस्थान	गुणप्रत्यय से
तिर्यंचायुवर्जितसासादन मे अत होने वाली (२४)	मिश्रादिक	"
मिथ्यात्व, मिश्रमो	अविरतादिक	"
मनुष्यायुरहित चतुर्थ गुण मे अत होने वाली (८)	देशविरतादिक	"
पचम गुणस्थान मे अत होने वाली (४)	प्रमत्तसयतादिक	"
प्रमत्तसयतगुण मे अत होने वाली (६)	अप्रमत्तादिक	"
वैक्रिय ७ देवद्विक, नरकद्विक, एके जाति ४ स्थावर, सूक्ष्म, साधा अपर्याप्त, आतप (२०)	सभी नारक, सनत्कुमारादिक देव	भवप्रत्यय से
नरकद्विक, देवद्विक, वैक्रिय ७ विकलत्रिक, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधा (१७)	ईशान पर्यन्त के देव	"
तिर्यंचद्विक, उद्योत, पूर्वोक्त (२०)	आनतादिक के देव	"
सह ६, कुसस्थान ५, नपु मनु, द्विक, औदा ७ तिर्यंचप्रायोग्य १० अप नरकद्विक, दुर्भगत्रिक, नीचगोत्र, अशुभ विहायोगति (३९)	युगलिक तिर्यंच, मनुष्य	"

है, बधयोग्य सभी प्रकृतियो का वह होता है और विध्यातसक्रम तो गुण अथवा भव निमित्त से जो-जो प्रकृतिया बध मे से विच्छिन्न हुई, उन-उनका होता है। जिससे साधरणतया पहले यथाप्रवृत्तसक्रम प्रवर्तित होता है और बध मे से विच्छिन्न होने के बाद विध्यातसक्रम की प्रवृत्ति होती है। इसीलिये यह कहा है कि यथाप्रवृत्तसक्रम के अन्त मे विध्यातसक्रम प्रवर्तित होता है तथा प्राय कहने का कारण यह है कि अन्य सक्रमो के प्रवर्तित होने के बाद भी यदि विध्यातसक्रम प्रवर्तित हो तो इसमे कोई बाधा नही है। जैसे कि उपशमश्रेणि मे गुणसक्रम प्रवर्तित होने के अनन्तर मरण प्राप्त करके अनुत्तरविमान मे जाये तो गुणनिमित्त से नही बधने वाली प्रकृतियो का विध्यातसक्रम होता है और उपशमसम्यक्त्व प्राप्ति के अतरकरण मे मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय के गुणसक्रम के अत मे विध्यातसक्रम होता है। उक्त समग्र कथन का दर्शक प्रारूप पृष्ठ १६२ पर देखिये।

इस प्रकार से विध्यातसक्रम का स्वरूप जानना चाहिये। अब उद्वलनासक्रम का स्वरूप निर्देश करते है।

उद्वलनासंक्रम

पलियस्ससंखभागं अंतमुहुत्तेण तीए उव्वलइ।
एवं पलियासंखियभागेणं कुणइ निल्लेव ॥७०॥

शब्दार्थ—पलियस्ससखभाग—पल्योपम के असख्यातवें भाग प्रमाण खड को, अतमुहुत्तेण—अन्तर्मुहूर्त काल मे, तीए—उसको, उव्वलइ—उद्वलना करता है, एव—इसी प्रकार, पलियासंखियभागेण—पल्योपम के असख्यातवें भाग प्रमाण काल द्वारा, कुणइ—करता है, निल्लेव—निर्लेप।

गाथार्थ—(सत्तागत स्थिति के अग्रभाग से) पल्योपम के असख्यातवें भाग प्रमाण खड को अन्तर्मुहूर्त काल मे उद्वलित करता है। इसी प्रकार से उद्वलना करते हुए पल्योपम के असख्यातवे भाग मात्र काल मे उसको सर्वथा निर्लेप करता है।

विशेषार्थ—कर्मों को सत्ता मे से निर्मूल करने मे जो उपयोगी साधन है, उनमे उद्वलनासक्रम भी एक प्रवल साधन है। उद्वलना का अर्थ है उखाडना, सत्ता मे से निर्मूल-नि शेष करना अर्थात् जिस सक्रम द्वारा सत्तागत स्थिति के अग्रभाग मे से पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने खड को लेकर अन्तर्मुहूर्त काल मे नाश करना, फिर दूसरा खड लेकर उसे अन्तर्मुहूर्त काल मे नष्ट करना, इस प्रकार पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिखड को लेते हुए और उसे अन्तर्मुहूर्त काल मे नाश करते हुए सत्तागत सपूर्ण स्थिति को अन्तर्मुहूर्त काल मे या पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल मे नाश करना ।

पहले गुणस्थान मे सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय आदि को निर्मूल करते पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण काल जाता है और ऊपर के गुणस्थान मे अनन्तानुबधि आदि कर्मप्रकृतियो को निर्मूल करते अन्तर्मुहूर्त काल जाता है।

इसी बात को तथा किन-किन प्रकृतियो मे उद्वलनासक्रम प्रवर्तित होता है, अव क्रमपूर्वक स्पष्ट करते है—

पहले उद्वलनयोग्य कर्मप्रकृतियो के पल्योपम के असख्यातवे भगा मात्र स्थितिखड को अन्तर्मुहूर्त काल मे उद्वलित करता है, उसके वाद पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण दूसरे स्थितिखड को उद्वलित करता है, उसके वाद तीसरे स्थितिखड को उद्वलित करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त मे पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिखड को उद्वलित-खडित-नाश करता हुआ उद्वेलित उस कर्म को पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने काल में निर्लेप करता है, यानि कि सपूर्ण रूप मे निर्मूल करता है, सत्ता रहित करता है। लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी कर्म को निर्मूल करना हो तब स्थिति के अग्र—ऊपर के भाग से निर्मूल करता आता है, परन्तु वीच मे से अथवा उदय समय से निर्मूल नही करता है।

अब पल्योपम के असख्यातव भाग प्रमाण स्थितिखड के विषय मे जो विशेष है, उसको कहते हैं—

पढमाओ बीअखडं विसेसहीणं ठिइए अवणेइ ।
एव जाव दुचरिम असखगुणिय तु अतिमयं ॥७१॥

शब्दार्थ—पढमाओ—प्रथम स्थितिखड से, बीअखड—दूसरा खड, विसेसहीण—विशेषहीन, ठिइए—स्थिति से, अवणेइ—दूर करता है, एव—इसी प्रकार, जाव—पर्यन्त, तक, दुचरिम—द्विचरमखड, असखगुणिय—असख्यातगुण, तु—और, अतिमय—अन्तिम ।

गाथार्थ—स्थिति के प्रथम स्थितिखड से स्थिति का दूसरा खड विशेषहीन स्थिति से (अन्तर्मुहूर्त से) दूर करता है । इस प्रकार द्विचरमखड तक जानना चाहिये । अतिम खड असख्यातगुण बडा जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—उद्‌वलनासक्रम द्वारा पल्योपम के असख्यातवे-असख्यातवे भाग प्रमाण जो स्थिति के खड दूर किये जाते है—नष्ट किये जाते है, उनमे पहले स्थितिखड से दूसरा स्थिति का खड विशेषहीन दूर किया जाता है, तीसरा उससे भी हीन दूर किया जाता है, इस प्रकार पूर्व-पूर्व से हीन-हीन स्थिति के खडो को द्विचरम स्थितिखड पर्यन्त दूर किया जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिस्थानो मे रहे हुए दलिको को एक साथ दूर करने का प्रयत्न किया जाये तो उतने समस्त स्थानो मे से पहले समय मे अमुक प्रमाण मे दलिक लेकर दूर किया जाता है, दूसरे समय मे समस्त मे से दलिक लेकर दूर किया जाता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल मे पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण खड को एक साथ दूर किया जाता है ।

जैसे कि पल्योपम के असख्यातवे भाग के असत्कल्पना से सौ स्थान मान लिये जाये तो पहले समय मे उन सौ मे से दलिक लेकर दूर किये

जाते है, दूसरे समय में भी सौ मे से दलिक दूर किये जाते है, इसी प्रकार से अन्तर्मुहूर्त के अतिम समय में भी उन्ही सौ मे से दलिक लेकर उस खड को नि शेष किया जाता है। तत्पश्चात् दूसरा खड लो, उसे भी पूर्वोक्त क्रम से दूर किया जाता है, फिर तीसरा खड लो, उसे भी इसी क्रम से निर्लेप किया जाता है। विशेष यह है कि पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण खड लेने का जो कहा है, वह उत्तरोत्तर हीन समझना चाहिये। पहला खड वडा, दूसरा उससे छोटा, तीसरा उससे भी छोटा, इस तरह द्विचरमखड पर्यन्त समझना चाहिये। उत्तरोत्तर छोटे-छोटे खड लेने के सकेत का कारण यह है कि असख्यात के असख्यात भेद होने से यह सम्भव है।

इस प्रकार यहाँ स्थिति के खडो मे तारतम्य होने से उनका अनन्तरोपनिधा और परपरोपनिधा इस तरह दो प्रकार से विचार करते हैं। दोनो मे अनतरोपनिधा द्वारा तो द्विचरमखडपर्यन्त पूर्व-पूर्व खड से उत्तरोत्तर खड हीन-हीन है। जिसका पूर्व मे सकेत भी किया जा चुका है।

अव परपरोपनिधा द्वारा विचार करते है —पहले स्थितिखड की अपेक्षा कितने ही स्थिति के खड स्थिति की अपेक्षा असख्यातभाग-हीन होते है, कितने ही सख्यातभागहीन, कितने ही सख्यातगुणहीन तो कितने ही असख्यातगुणहीन होते है।

जब प्रदेशपरिमाण की अपेक्षा विचार करते है तब स्थिति के पहले खड में कुल मिलाकर जो दलिक होते है, उससे स्थिति के दूसरे खड में विशेषाधिक होते है, उससे तीसरे खड में विशेषाधिक होते हैं। इस प्रकार पूर्व-पूर्व खड से उत्तरोत्तर खड मे विशेषाधिक-विशेषाधिक दलिक द्विचरमखडपर्यन्त होते हैं। यह दलिको की अपेक्षा अनन्तरोपनिधा द्वारा विचार किया गया।

अब यदि परपरोपनिधा द्वारा दलिको की अपेक्षा से विचार किया जाये तो वह इस प्रकार है—पहले स्थितिखड से दलिक की अपेक्षा

कोई स्थितिखड असख्यातभाग अधिक होता है, कोई सख्यातभाग अधिक, कोई सख्यातगुण अधिक तो कोई असख्यातगुण अधिक होता है।

अव अनुक्त अन्तिम खड का विचार करते है--द्विचरम स्थितिखड से चरम स्थितिखड स्थिति की अपेक्षा असख्यातगुण है, यानि कि जितना वडा पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण द्विचरम स्थिति-खड है, उससे असख्यातगुण वडा पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण चरम स्थितिखड है तथा गाथा गत 'तु' शब्द अधिक अर्थ का सूचक होने से चरम स्थितिखड पहले स्थितिखड की अपेक्षा दलिको की दृष्टि से असख्यातगुण वडा है और स्थिति की अपेक्षा असख्यातवे भाग-मात्र है।

इस प्रकार उद्वलनासक्रम द्वारा दूर करने के लिये जो खड है वे कितने प्रमाण वाले है ? इसका विचार किया, अव द्विचरमखड तक के खडो मे के दलिको को कहाँ निक्षिप्त किया जाता है, इसको वत-लाते है—इतनी स्थिति कम हुई, अमुक स्थितिखड दूर किया यह कव कहलाता है जबकि जितनी-जितनी स्थिति दूर होना हो, उतने-उतने स्थानों मे के दलिको को दूर करके उतनी भूमिका साफ की जाये, दलविना की कीजाये। यहाँ उद्वलनासक्रम द्वारा पल्योपम के असख्या-तवे भाग प्रमाण खड लेकर उतने स्थानो मे के दलिक दूर करके भूमिका साफ करना है, यानि कि उन दलिको को कहाँ निक्षिप्त किया जाता है, यह वताना चाहिये, इसलिये अव उसको स्पष्ट करते हैं—

खडदल सट्ठाणे समए समए असखगुणणाए।
सेढीए परट्ठाणे विसेसहीणाए सछुभइ ॥७२॥

शब्दार्थ—खडदल—स्थितिखड के दलिको को, सट्ठाणे—स्वस्थान मे, समए समए—प्रतिसमय, असखगुणणाए—असख्यातगुण रूप, सेढीए—श्रेणि से,

परट्ठाणे--परस्थान मे, विसेसहीणाए—विशेषहीन रूप, सछुभइ किया जाता है।

गाथार्थ—प्रतिसमय प्रत्येक स्थितिखड के दलिक स्व असख्यातगुण रूप श्रेणि से और परस्थान मे विशेषहीन से सक्रमित किया जाता है।

विशेषार्थ—पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण खड मे से स्थिति दूर करने के लिये समय-समय जो दलिक सक्रमित क लिये ग्रहण किये जाते है, उनमे से पहले समय मे अल्प दलिक उ किये जाते है, यानि उखाडे जाते है—वहाँ से उन दलिको को अन्यत्र प्रक्षिप्त किया जाता है, दूसरे समय में असख्यातगुण, तीसरे समय मे असख्यातगुण उत्कीर्ण किये जाते हैं। इस प्रका उत्कीर्ण करते हुए—उस प्रथम खड को दूर करते जो अन्तर्मुहूर्त व जाता है, उसके चरम समय मे द्विचरम समय से असख्यात उत्कीर्ण किये जाते हैं। यह प्रथम खड के उत्कीर्ण करने के वि जानना चाहिये। इसी क्रम से द्विचरम खड तक के समस्त स्थितिखड को उत्कीर्ण किया जाता है।

अब इन दलिको का कहाँ प्रक्षेप किया जाता है ? इसको स्पष्ट करते हैं—स्थितिखड के दलिक को प्रतिसमय स्वस्थान मे असख्यात-गुणाकार रूप और परस्थान मे विशेषहीन श्रेणि से सक्रमित किया जाता है। वह इस प्रकार-पहले समय मे स्थितिखड का जो कर्मदलिक अन्यप्रकृति मे प्रक्षिप्त किया जाता है—अन्यप्रकृति रूप किया जाता है, वह अल्प है, उससे उसी समय स्वस्थान मे नीचे जो प्रक्षिप्त किया है, वह पर मे प्रक्षिप्त किया उससे असख्यातगुण होता है।

उद्‌वलनासक्रम द्वारा स्थितिखड मे से ग्रहण किया गया दलिक कितना ही पररूप करता है और कितना ही जिस प्रकृति को उद्‌व-लनासक्रम द्वारा निर्मूल किये जाने का प्रयत्न किया जाता है, उसके अपने जो स्थान उद्‌वलित किये जाते हैं, उनके सिवाय शेष नीचे के

शब्दार्थ—दुचरिमखंडस्स—द्विचरमखंड का, दल—दलिक, चरिमे—चरमसमय मे, ज—जो, देइ—प्रक्षिप्त किया जाता है, सपरट्ठाणम्मि—स्व और पर स्थान मे, तम्माणेणस्स—इस प्रमाण से, दल—दलिक, पल्लगुलसखभागेहिं—पल्योपम के असख्यातवे भाग काल और अगुल के असख्यातवे भाग मे रहे हुए आकाश प्रदेश के समय प्रमाण।

गाथार्थ—चरम समय मे द्विचरमखड का जो दलिक स्व और पर में प्रक्षिप्त किया जाता है, उस प्रमाण से चरमखड का वह दलिक पर मे प्रक्षेप करते अनुक्रम से पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने काल और अगुल के असख्यातवे भाग में रहे आकाश प्रदेश के समय प्रमाण काल मे दूर होता है, निर्लेप होता है।

विशेषार्थ—चरमसमय मे द्विचरमस्थितिखड का जो प्रदेशप्रमाण अपने ही चरम स्थितिखड रूप स्वस्थान मे प्रक्षिप्त किया जाता है, उस प्रमाण से चरम स्थितिखड का दलिक प्रतिसमय अन्य मे सक्रमित करते पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने काल मे वह चरमखड पूर्ण रूप से निर्मूल किया जाता है। अर्थात् उस चरमखड को सर्वथा निर्मूल करने मे पल्योपम का असख्यातवा भाग जितना काल लगता है तथा चरमसमय मे द्विचरम स्थितिखड का दलिक जितना परप्रकृति मे प्रक्षिप्त किया जाता है, उस प्रमाण से अपहृत किया जाता चरमखड का दलिक अगुल के असख्यातवे भाग मे रहे हुए आकाश प्रदेश प्रमाण समयो द्वारा अपहृत किया जाता है। अर्थात् चरमसमय मे द्विचरम स्थितिखड के दलिक को जितना पर मे प्रक्षिप्त किया जाता है, उस प्रमाण से चरमखड को पर मे सक्रमित किया जाये तो उस चरमखड को सम्पूर्ण रूप से निर्मूल होने मे अगुल के असख्यातवे भाग के आकाश प्रदेशप्रमाण समय व्यतीत हो जाते है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अगुल मात्र क्षेत्र के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने चरमस्थितिखड के ऊपर कहे गये प्रमाण वाले दलिक के खड होते है।

यह क्षेत्र की अपेक्षा मार्गण—विचार हुआ और कालापेक्षा विचार इस प्रकार है—द्विचरम स्थितिखड का जितने प्रमाण वाला कर्मदलिक चरमसमय मे परप्रकृति मे प्रक्षिप्त किया जाता है, उतने प्रमाण वाले चरम स्थितिखड का दलिक यदि प्रतिसमय परप्रकृति मे प्रक्षिप्त किया जाये तो वह चरम स्थितिखड असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल मे निर्लेप होता है—निर्मूल, नष्ट, सत्तारहित होता है। इस प्रकार अमुक प्रमाण द्वारा चरमस्थितिखड का दलिक पर मे सक्रात किया जाता है तो उसमे कितना काल व्यतीत होता है, इसका विचार जानना चाहिये। अर्थात् उद्‌वलनासक्रम द्वारा स्व मे नीचे अधिक दलिक उतरते हैं, जिससे उस प्रमाण से सक्रमित करते समय कम लगता है और पर मे अल्प सक्रमित किया जाता है, जिससे उस प्रमाण द्वारा सक्रमित करते काल अधिक लगता है। किसी प्रकृति को सत्ता मे से निर्मूल करने के लिये जहाँ मात्र उद्‌वलना प्रवृत्त होती है, वहाँ पल्योपम का असख्यातवा भाग जितना काल लगता है और यदि साथ मे गुणसक्रम भी होता है तब अन्तर्मुहूर्त मे कोई भी कर्मप्रकृति निर्मूल हो जाती है।

यहाँ 'चरमसमय' शब्द द्वारा द्विचरमखड उद्‌वलित करते जो अन्तर्मुहूर्त काल जाता है, उसका चरमसमय ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार से उद्‌वलनासक्रम का अर्थ क्या है, वह किस प्रकार से होता है और दलिक कहाँ सक्रमित होते हैं, इस सबका कथन किया। अव उद्‌वलित की जाती प्रकृतियो के स्वामियो का निर्देश करते हैं। अर्थात् किस-किस प्रकृति की कौन-कौन उद्‌वलना करता है, इसका विचार करते है।

उद्‌वलनासक्रम के स्वामी

एव उव्वलणासकमेण नासेइ अविरओ आहार।
सम्मोऽणमिच्छमीसे छत्तीस नियट्ठी जा माया ॥७४॥

शब्दार्थ—एव—इस प्रकार से, उव्वलणासकमेण—उद्वलनासक्रम द्वारा, नासेइ—निर्मूल करता है, अविरओ—अविरत, आहार—आहारकसप्तक को, सम्मो—सम्यग्दृष्टि, अणमिच्छमीसे—अनन्तानुबधि, मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय, छत्तीस—छत्तीस प्रकृतियो का, नियट्ठी—अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती, जा—यावत्, पर्यन्त की, माया—माया।

गाथार्थ—इस प्रकार से उद्वलनासक्रम द्वारा अविरत जीव आहारकसप्तक को निर्मूल करता है, सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबधि, मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का नाश करता है और माया तक की छत्तीस प्रकृतियो का अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव नाश करता है।

विशेषार्थ—उद्वलनासक्रम द्वारा जिस प्रकार से कर्मप्रकृतियो को सत्ता मे से निर्मूल करने की विधि पूर्व मे कही है, उस प्रकार से अविरत जीव आहारकसप्तक को निर्मूल करता है। यानि कि विरतिपने मे से जिस समय आहारकसप्तक की सत्ता वाला जीव अविरतपने को प्राप्त करता है, उस समय से अन्तर्मुहूर्त जाने के बाद आहारकसप्तक की उद्वलना प्रारभ करता है और उसे पल्योपम के असख्यातवे भाग मे निर्मूल करता है। क्योकि आहारकसप्तक की सत्ता अविरत के नही होती है। विरत के ही पाई जाती है तथा अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत या सर्वविरत जीव अनन्तानुबधि, मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय की अन्तर्मुहूर्त काल मे पूर्व की तरह उद्वलना करता है तथा मध्यम आठ कषाय, नव नोकषाय, स्त्यानर्धित्रिक, नामकर्म की तेरह प्रकृति और सज्वलन क्रोध, मान, माया इन छत्तीस प्रकृतियो को अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव पूर्वोक्त प्रकार से अन्तर्मुहूर्त काल मे उद्वलित करता है। तथा—

सम्ममीसाई मिच्छो सुरदुगवेउव्विछक्कमेगिंदी।
सुहुमतसुच्चमणुदुग अतमुहुत्तेण अणिअट्टी ॥७५॥

शब्दार्थ—सम्ममीसाई—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय को, मिच्छो—मिथ्यादृष्टि जीव, सुरदुगवेउव्विछक्कमेगिंदी—देवद्विक, वैक्रियषट्क का एकेन्द्रिय, सुहुमतसुच्चमणुदुग—सूक्ष्मत्रस उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का, अतमुहुत्तेण—अन्तर्मुहूर्त काल मे, अणिअट्टी—अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव ।

गाथार्थ—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय का मिथ्यादृष्टि जीव तथा देवद्विक एव वैक्रियषट्क का एकेन्द्रिय जीव नाश (उद्‌वलना) करता है और उच्चगोत्र तथा मनुष्यद्विक का सूक्ष्मत्रस नाश करता है। अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव अन्तर्मुहूर्त काल मे (छत्तीस प्रकृतियो की) उद्‌वलना करता है ।

विशेषार्थ—मोहनीय की अट्‌ठाईस प्रकृतियो की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की पूर्वोक्त प्रकार से पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल मे उद्‌वलना करता है। नामकर्म की पचानवै प्रकृतियो की सत्ता वाला एकेन्द्रिय जीव पहले देवद्विक की उद्‌वलना करता है, तत्पश्चात् वैक्रियशरीर, वैक्रिय-अगोपाग, वैक्रियबधन, वैक्रियसघातन और नरकद्विक रूप वैक्रियषट्क को एक साथ पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल मे उद्‌वलित करता है तथा सूक्ष्मत्रस—तेजस्काय और वायुकाय के जीव पहले उच्चगोत्र को और उसके बाद मनुष्यद्विक को पूर्वोक्त क्रम से पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल मे उद्‌वलित करते है ।

गाथा ७० के 'पलियासखियभागेण कुणइ णिल्लेव' इस अश मे उद्‌वलनासक्रम द्वारा उद्‌वलित की जाती कर्मप्रकृतियो का सामान्य से पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण जो काल बतलाया है, उसका यहाँ अपवाद कहते है—'अणिअट्टी अतमुहुत्तेण' अर्थात्, अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानवर्ती जीव पूर्वोक्त गाथा मे कही गई छत्तीस प्रकृतियो को अन्तर्मुहूर्त काल मे पूर्ण रूप से उद्‌वलित करता है—नाश करता है तथा गाथा ७४ मे कहा गया 'छत्तीस नियट्ठी'

पद अन्य का उपलक्षण रूप होने से क्षायिक सम्यक्त्व उपर्जित करते हुए चौथे से सातवे गुणस्थान तक के जीव अनन्तानुबंधि, मिथ्यात्व-मोहनीय और मिश्रमोहनीय को भी अन्तर्मुहूर्त काल मे उद्वलित करते है। इस गाथा मे तेरह प्रकृतियो की उद्वलना के स्वामियो का निर्देश किया है।

यहाँ जितनी प्रकृतियो के लिये उद्वलना का अन्तर्मुहूर्त काल बताया है, उनके सिवाय शेष अन्य प्रकृतियो के लिये पल्योपम का असंख्यातवे भाग प्रमाण उद्वलना का काल समझना चाहिये। इसी प्रसग मे यह भी जान लेना चाहिये कि ७४वी गाथा मे उनचास और ७५वी गाथा मे तेरह कुछ बासठ प्रकृतियो के स्वामियो का निर्देश किया है। उनमे से मिश्रमोहनीय पहले गुणस्थान मे और क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते हुए भी उद्वलित की जाती है और नरकद्विक का एकेन्द्रिय मे तथा नौवे गुणस्थान मे भी उद्वलन होता है। इसलिये इन तीन प्रकृतियो को दो बार न गिनकर एक बार ही लेने से कुल बासठ प्रकृतियो मे से तीन प्रकृतियो को कम करने पर उनसठ होती है तथा ७४वी गाथा मे बधन के पन्द्रह भेद की विवक्षा से आहारकसप्तक को लिया है, जब कि ७५वी गाथा मे बधन के पाच भेदो की विवक्षा करके वैक्रियचतुष्क को ग्रहण किया है। यदि दोनो स्थानो पर बधन के पन्दह भेदो की विवक्षा की जाये तो ७४वी गाथा मे कही गई उनचास और ७५वी गाथा मे बताई गई सोलह को मिलाने पर पैसठ प्रकृति होती है। उनमे से मिश्र और नरकद्विक को कम करने पर बासठ प्रकृतिया उद्वलनायोग्य होती है और यदि दोनो स्थानो पर पाच बधन की विवक्षा की जाये तो गाथा ७४ मे कही गई छियालीस और गाथा ७५ मे कही गई तेरह कुल उनसठ प्रकृतियो मे से मिश्र-मोहनीय और नरकद्विक को कम करने पर छप्पन प्रकृतिया उद्वलना-योग्य होती है। उद्वलनयोग्य इतनी ही प्रकृतिया है। अन्य प्रकृतिया उद्वलनासक्रम योग्य नही है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि सम्यक्त्वमोहनीय की उद्‌वलना पहले कही किन्तु क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जित करते हुए जो नही कही है, तो उसका कारण यह है कि उद्‌वलनासक्रम द्वारा स्व और पर दोनो मे दलिको का प्रक्षेप किया जाता है। चौथे आदि मे सम्यक्त्वमोहनीय के दलिक दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय का परस्पर सक्रम नही होने से पर मे नही जाते है, मात्र स्व मे ही सक्रात होते है, इसीलिये चतुर्थ आदि गुणस्थानो उसकी उद्‌वलना नही होती है।

उद्‌वलनासक्रमयोग्य प्रकृतियो का स्वामित्व और काल दर्शक प्रारूप पृष्ठ १७७ पर देखिये।

इस प्रकार से उद्‌वलनासक्रम का स्वरूपनिर्देश करने के अनन्तर अब यथाप्रवृत्तसक्रम का वर्णन करते है।

यथाप्रवृत्तसक्रम

ससारत्था जीवा सबधजोगाण तद्दलपमाणा।
सकामे तणुरूव अहापवत्तीए तो णाम ॥७६॥

शब्दार्थ—**ससारत्था**—ससारस्थ, **जीवा**—जीव, **सबधजोगाण**—स्वबध-योग्य प्रकृतियो के दलिको को, **तद्दलपमाणा**—दल के प्रमाण मे, **सकामे**—सक्रमित करता है, **तणुरूव**—तदनुरूप—योगानुसार, **अहापवत्तीए**—यथा-प्रवृत्ति से, **तो**—इसलिये, **णाम**—नाम।

गाथार्थ—ससारस्थ जीव स्वबधयोग्य प्रकृतियो के दलिको को उन-उन प्रकृतियो के सत्तागत दल के प्रमाण मे (अनुरूप) योगा-नुसार सक्रमित करता है, इसलिये उसका यथाप्रवृत्त ऐसा नाम है।

विशेषार्थ—यथाप्रवृत्तसक्रम यानि योग की प्रवृत्ति के अनुरूप होने वाला सक्रम। यदि योग की प्रवृत्ति अल्प हो तो अल्प दलिको का सक्रम होता है, मध्यम प्रवृत्ति हो तो मध्यम और यदि योग

की प्रवृत्ति उत्कृष्ट हो तो-उत्कृष्ट अधिक दलिको का सक्रम होता है। योग की प्रवृत्ति के अनुसार ही इस सक्रम के होने से यथाप्रवृत्त यह सार्थक नाम है।

इस सक्रम द्वारा ससारस्थ जीव स्वबधयोग्य ध्रुवबधिनी अथवा अध्रुवबधिनी प्रकृतियो के दलिको के—जिस कर्मप्रकृति के दलिको को सक्रमित करते है, उसके सत्तागत दलिको के—अनुरूप सक्रमित करते है। उस काल मे यदि ध्रुवबधिनी या अध्रुवबधिनी प्रकृतियो के दलिक अधिक बधते हो अथवा तद्भव बधयोग्य कितनी ही अध्रुवबधिनी प्रकृतियो का उस समय बध न हो, परन्तु पूर्व के बधे हुए बहुत से दलिक सत्ता में हो तो अधिक सक्रमित करते है, अल्प हो तो अल्प सक्रमित करते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सत्ता में विद्यमान दलिको के अनुसार—दलिको के प्रमाण में सक्रमित करते हैं। वे भी जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट जिस प्रकार की योगप्रवृत्ति हो तदनुरूप—उस प्रकार से सक्रमित करते है। जघन्य योग मे वर्तमान अल्प दलिक, मध्यम योग में वर्तमान मध्यम और उत्कृष्ट योग में वर्तमान उत्कृष्ट—अधिक दलिको को सक्रमित करते है। इसी कारण इस सक्रम का यथाप्रवृत्तसक्रम यह सार्थक नाम है।

'स्वबधयोग्य प्रकृतियो को सक्रमित करते हैं' इस कथन का आशय है कि यद्यपि कितनी ही अध्रुवबधिनी प्रकृतियो का सक्रमकाल मे बध न हो किन्तु जिन प्रकृतियो की उस भव में बध की योग्यता हो, परन्तु उनके बध का अभाव होने पर भी यथाप्रवृत्तसक्रम की प्रवृत्ति होती है। जिन प्रकृतियो का बध हो उन्ही का यथाप्रवृत्तसक्रम होता है, यदि ऐसा कहना होता तो 'बध्यमान' ऐसा गाथा में सकेत होता। लेकिन ग्रथकार ने गाथा में ऐसा सकेत नही किया है। इसलिये बधती हो या उस भव में बधयोग्य हो अथवा सक्रमकाल मे बधती न हो तो भी उनका यथाप्रवृत्तसक्रम होना सम्भव है।

ध्रुवबधिनी प्रकृतियो के यथाप्रवृत्तसक्रमक तद्‌बधक है तथा तद्‌भवयोग्य परावर्तमानबधिनी प्रकृतियो के सक्रमक तद्‌बधक और अबन्धक दोनो है।

यह सक्रम योगानुरूप होता है। इसके बाधक विध्यात या गुण सक्रम है।

इस प्रकार से यथाप्रवृत्तसक्रम का स्वरूप जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त गुणसक्रम का निर्देश करते है।

गुणसक्रम

असुभाण पएसग्ग बज्झतीसु असखगुणणाए।
सेढीए अपुव्वाई छुभंति गुणसंकमो एसो ॥७७॥

शब्दार्थ—**असुभाण**—अशुभ प्रकृतियो के, **पएसग्गं**—प्रदेशाग्र, **बज्झतीसु**—वध्यमान प्रकृतियो मे, **असखगुणणाए**—असख्यातगुण, **सेढीए**—श्रेणि से, **अपुव्वाइ**—अपूर्वकरणादि **छुभंति**—सक्रमित करते है, **गुणसकमो**—गुणसक्रम **एसो**—यह।

गाथार्थ—(अवध्यमान) अशुभ प्रकृतियो के प्रदेशाग्र को वध्यमान प्रकृति मे असख्यात गुणश्रेणि से अपूर्वकरण आदि जीव जो सक्रमित करते है, यह गुणसक्रम कहलाता है।

विशेषार्थ—अवध्यमान अशुभ प्रकृतियो के दलिको को अपूर्वकरण आदि गुणस्थानवर्ती जीव प्रति समय असख्य गुणश्रेणि से वध्यमान प्रकृतियो मे जो सक्रमित करते है, वह गुणसक्रम है। पूर्व-पूर्व समय से उत्तर-उत्तर समय मे असख्य-असख्य गुणाकार रूप से जो सक्रम वह गुणसक्रम, यह गुणसक्रम शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है।

अपूर्वकरण आदि गुणस्थान से जिन अशुभ प्रकृतियो का गुण-सक्रम होता है, वे इस प्रकार है—मिथ्यात्व, आतप और नरकायु को छोडकर मिथ्यादृष्टि के वधयोग्य तेरह तथा अनन्तानुवधिचतुष्क, तिर्यचायु और उद्योत को छोडकर शेष सासादनगुणस्थानयोग्य उन्नीस तथा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क रूप आठ

कषाय, अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति, शोक, अरति, असातावेदनीय इन चौदह प्रकृतियो को मिलाने पर कुल छियालीस अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो का अपूर्वकरण आदि गुणस्थानो से गुणसक्रम होता है।

ऊपर जो प्रकृतिया छोडी है, उनके छोडने का कारण यह है कि मिथ्यात्व और अनन्तानुबधिचतुष्क को अपूर्वकरणगुणस्थान प्राप्त होने के पूर्व ही अविरतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते हुए क्षय करते है। आतप, उद्योत शुभ प्रकृतिया हैं, अत उनका गुणसक्रम नही होता है तथा आयु का परप्रकृति में सक्रम नही होता है, इसीलिये मिथ्यात्व आदि प्रकृतियो का निषेध किया है।

निद्राद्विक, उपघात, अशुभवर्णादि नवक, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन अशुभ प्रकृतियो का अपूर्वकरणगुणस्थान मे जिस समय बधविच्छेद होता है, उसके बाद से गुणसक्रम होता है।

इस प्रकार अपूर्वकरणगुणस्थान से जिन प्रकृतियो का गुण-सक्रम होता है, उनके नाम जानना चाहिये।

अब गुणसक्रम का दूसरा अर्थ कहते है—अपूर्वकरण आदि सज्ञा वाले करण की अर्थात् सम्यक्त्वादि प्राप्त करते जो तीन करण होते हैं, उनमे के अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण[1] की प्रवृत्ति जब से होती है, तब से अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो के दलिको को असख्यात गुणश्रेणि से बध्यमान प्रकृतियो मे जो प्रक्षेप किया जाता है, उसे भी गुणसक्रम कहते हैं। गुणसक्रम का ऐसा भी अर्थ होने से क्षपण-काल मे मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय और अनन्तानुबधिचतुष्क का अपूर्व-करण रूप करण से लेकर गुणसक्रम होता है, इसमें कोई विरोध नही है। किन्तु अबध्यमान समस्त अशुभप्रकृतियो का गुणसक्रम तो आठवे गुणस्थान से ही होता है।

---

१ इन करणो मे भी चौथे से सातवें गुणस्थान तक मे मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्व-मोहनीय और अनन्तानुबधिचतुष्क का गुणसक्रम होना है।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि अप्रमत्तसयतगुणस्थान तक मे बधविच्छेद होने वाली छियालीस और अपूर्वकरण गुणस्थान मे बधविच्छेद को प्राप्त होने वाली निद्राद्विक आदि सोलह, इस प्रकार बासठ तथा अपूर्वकरण सज्ञा वाले अपूर्वकरण से अनन्तानुबधिचतुष्क, मिथ्यात्व और मिश्र ये छह कुल मिलाकर अडसठ प्रकृतियो का गुण-सक्रम बताया है। यदि इनमे अशुभ वर्णादि के उत्तर भेदो को न लेकर सामान्य से अशुभ वर्णचतुष्क को लिया जाये तो पाच प्रकृतियो को कम करने पर कुल त्रेसठ प्रकृतियो का गुणसक्रम होना बताया है। परन्तु पुरुषवेद और लोभ के विना सज्वलनत्रिक, इन चार प्रकृतियो का भी गुणसक्रम सम्भव है। क्योकि अपूर्वकरण से अबध्यमान समस्त अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम होता है, जिससे निद्राद्विक आदि प्रकृतियो का गुणसक्रम बताया है। इसी प्रकार नौवे गुणस्थान मे अपने-अपने बधविच्छेद के बाद इन चार प्रकृतियो का गुणसक्रम होने मे कोई बाधा नही दिखती है। क्यो कि छठे कर्म-ग्रथ की गाथा ६७ की टीका मे भी बधविच्छेद के समय मे समयन्यून दो आवलिका काल मे बधे हुए सत्तागत दलिको का उतने ही काल मे गुणसक्रम द्वारा क्षय करता है, ऐसा बताया है तथा उद्वलना-सक्रम द्वारा भी जिन प्रकृतियो का अन्तर्मुहूर्तकाल मे क्षय होता है, वहाँ भी उद्वलनासक्रम के अतर्गत गुणसक्रम माना है। परन्तु यदि उस उद्वलनानुविद्ध गुणसक्रम की विवक्षा न करे तो नौवे गुणस्थान मे उद्वलनासक्रम द्वारा क्षय को प्राप्त होती मध्यम आठ कषायादि शेष प्रकृतियो का भी गुणसक्रम घटित नही हो सकता है, लेकिन उन प्रकृतियो को गुणसक्रम मे ग्रहण किया है, इसलिये इन चार प्रकृतियो (पुरुषवेद, लोभ विना सज्वलनत्रिक) का भी गुणसक्रम अवश्य सम्भव है, तथापि यहाँ उनकी विवक्षा क्यो नही की गई है? विद्वज्जन इसको स्पष्ट करने की कृपा करे।

इस प्रकार से गुणसक्रम की वक्तव्यता जानना चाहिये। अब सर्वसक्रम का स्वरूप प्रतिपादन करते हैं।

सर्वसक्रम

चरमठिईए रइय पइसमयमसखिय पएसग्ग।
ता छुभइ अन्नपगइ जावते सव्वसकामो ।।७८।

शब्दार्थ—चरमठिईए—चरम स्थितिखड मे, रइय—रचित, पइसमय—प्रतिसमय, असखिय—असख्यात गुणाकर रूप से, पएसग्ग—प्रदेशाग्र, ता—तब तक, छुभइ—सक्रमित करता है, अन्नपगइ—अन्य प्रकृति मे, जावते—यावत् अतिम, सव्वसकामो—सर्वसक्रम ।

गाथार्थ—उद्‌वलनासक्रम करते हुए चरमस्थितिखड में स्वस्थानप्रक्षेप द्वारा जो दलिक रचित हैं, उन्हे अन्य प्रकृति में प्रतिसमय असख्यात गुणाकार रूप से तब तक सक्रमित करता है, यावत् द्विचरम प्रक्षेप प्राप्त हो और अतिम जो प्रक्षेप होता है उसे सर्वसक्रम कहते है।

विशेषार्थ—यह पूर्व में वताया जा चुका है कि उद्‌वलनासक्रम द्वारा पर और स्व मे दलिक प्रक्षेप होता है और उसमें भी पर मे अल्प एव स्व मे अधिक प्रक्षेप होता है। ऐसे उद्‌वलनासक्रम द्वारा सक्रमित किये जाते स्वस्थानप्रक्षेप द्वारा चरमस्थितिखड में जो दलिक रचित किया गया है—प्रक्षिप्त किया गया है, उसे पूर्व-पूर्व समय से उत्तरोत्तर समय मे असख्यात-असख्यात गुणाकार रूप से अतर्मुहूर्त पर्यन्त परप्रकृति मे प्रक्षिप्त करता है और अन्तर्मुहूर्त काल मे वह चरमखड निर्लेप होता है।

यह उद्‌वलनासक्रम कहाँ तक कहलाता है और सर्वसक्रम किसे कहते है ? इसका स्पष्टीकरण यह है—

उद्‌वलनासक्रम करते हुए स्वस्थान-प्रक्षेप द्वारा चरम स्थितिखड मे जो कर्मदलिक प्रक्षिप्त किया है, उसे प्रतिसमय परप्रकृति मे असख्यात-असख्यात गुणाकार रूप से वहाँ तक सक्रमित करता है कि यावत् द्विचरम प्रक्षेप आता है। यहाँ तक तो उद्‌वलनासक्रम कहलाता है और अन्तर्मुहूर्त के अन्तिम समय मे जो चरम प्रक्षेप —होता है, उसे सर्वसक्रम कहते है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकृति मे

उद्वलनासक्रम प्रवृत्त होता है, उस प्रकृति के चरम खड का चरमसमय मे पूर्ण रूप से पर मे जो प्रक्षेप होता है, उसे सर्वसक्रम कहते है।

इस प्रकार से सर्वसक्रम का स्वरूप जानना चाहिये। अव किस सक्रम को रोक कर कौन-सा सक्रम प्रवृत्त हो सकता है, इसका विचार करते है।

परस्पर वाधक सक्रम

वाहिय अहापवत्तं सहेउणाहो गुणो व विज्झाओ ।

उव्वलणसंकमस्सवि कसिणो चरिमम्मि खडम्मि ।।७६।।

शब्दार्थ—**वाहिय**—वाधित कर, रोककर, **अहापवत्त**—यथाप्रवृत्त-सकम को, **सहेउणाहो**—अपने हेतु के द्वारा, **गुणो**—गुणसक्रम, **व**—अथवा **विज्झाओ**—विध्यातसक्रम, **उव्वलणसंकमस्सवि**—उद्वलनासक्रम के भी, **कसिणो**—सर्वसक्रम, **चरिमम्मि खडम्मि**—चरम खड मे।

गाथार्थ—स्व हेतु के सामर्थ्य से यथाप्रवृत्तसक्रम को रोक कर गुणसक्रम अथवा विध्यातसक्रम प्रवृत्त होता है। उद्वलना-सक्रम के चरमखड मे चरमप्रक्षेप रूप सर्वसक्रम भी होता है।

विशेषार्थ—अपने गुण या भव रूप निमित्त को प्राप्त करके अबध होने रूप हेतु की प्राप्ति—सबन्ध के सामर्थ्य द्वारा यथाप्रवृत्तसक्रम को रोककर गुणसक्रम या विध्यातसक्रम प्रवृत्त होता है। यथा-प्रवृत्तसक्रम सामान्य है, जिससे गुण या भव रूप हेतु के द्वारा कर्म-प्रकृतियो का वधविच्छेद होने के पश्चात् विध्यातसक्रम या गुण-सक्रम प्रवृत्त होता है। अतएव यथाप्रवृत्तसक्रम को बाध कर, उसको हटा कर गुणसक्रम या विध्यातसक्रम प्रवृत्त होता है तथा सर्वसक्रम उद्वलनासक्रम के चरमखड का चरमप्रक्षेप रूप है। इसलिये यह सर्वसक्रम भी उद्वलनासक्रम को हटा कर प्रवृत्त होता है, यह समझना चाहिये।[1]

---

१ प्रदेशसक्रम के उक्त पाच भेदो मे सकलित प्रकृतियो की सूची परिशिष्ट मे देखिये।

उक्त पाच सक्रम के अतिरिक्त स्तिवुकसक्रम नाम का भी एक छठा प्रदेशसक्रम है। किन्तु उसे छठे भेद के रूप मे नही कहा है। क्योकि उसमे करण का लक्षण घटित नही होता है। करण तो सलेश्य जीव के व्यापार को कहते है। अत जहाँ-जहाँ लेश्यायुक्त वीर्य का व्यापार होता है वहाँ सक्रम, बधन आदि करणो की प्रवृत्ति होती है। लेकिन स्तिवुकसक्रम की प्रवृत्ति मे वीर्यव्यापार कारण नही है, वह तो साहजिक रूप से होता है। इसके द्वारा किसी भी प्रकार के वीर्यव्यापार के विना फल देने के सन्मुख हुआ एक समय मात्र मे भोगा जाये इतना दलिक अन्य रूप होता है तथा यह भी विशेष है कि सक्रमकरण द्वारा अन्य स्वरूप हुआ कर्म अपने मूलस्वरूप को छोड देता है, जवकि स्तिवुकसक्रम द्वारा अन्य मे गया दलिक सर्वथा अपने मूल स्वरूप को छोडता नही है, यानि कि सर्वथा पतद्ग्रहप्रकृति रूप मे परिणमित नही होता है। सक्रमकरण द्वारा बधावलिका के जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर का दलिक अन्य रूप होता है और स्तिवुकसक्रम द्वारा उदयावलिका के उदयगत एक स्थान का ही दलिक उदयवती प्रकृति के उदयसमय मे किसी भी प्रकार के प्रयत्न के सिवाय जाता है। यह स्तिवुकसक्रम तो अलेश्य अयोगिकेवली भगवान को अयोगिकेवलिगुणस्थान के द्विचरमसमय मे तिहत्तर प्रकृतियो का होता है। इस कारण स्तिवुकसक्रम को आठ करण के अन्तर्गत ग्रहण नही किया है, फिर भी यहाँ उसका स्वरूप इसलिये कहते है कि वह भी एक प्रकार का सक्रम है।

स्तिवुकसक्रम

पिडपगईण जा उदयसगया तीए अणुदयगयाओ।
सकामिऊण वेयइ ज एसो थिबुगसकामो ॥८०॥

शब्दार्थ—पिडपगईण—पिंडप्रकृतियो का, जा—जो, उदयसगया—उदयप्राप्त, तीए—उसमे, अणुदयगयाओ—अनुदयप्राप्त, सकामिऊण—सक्रामित

करके, वेयइ—वेदन की जाती है, ज—जो, एसो—यह, थिबुगसकामो—स्तिबुकसक्रम ।

गाथार्थ—पिड प्रकृतियो की उदयप्राप्त जो प्रकृति है, उसमे अनुदयप्राप्त प्रकृति सक्रामित करके वेदन की जाती है, यह स्तिबुकसक्रम कहलाता है ।

विशेषार्थ—गति, जाति, शरीर, अगोपाग, बधन, सघातन, सहनन, सस्थान, वर्ण, गध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी और विहायोगति रूप चौदह पिडप्रकृतियो मे से प्रत्येक की उदय प्राप्त जो प्रकृति होती है, उसके समान काल वाली उदयस्थिति मे जिस प्रकृति का उदय नही है, अनुदय है, उसको सक्रामित करके जो अनुभव किया जाता है, उसे स्तिबुकसक्रम कहते है । जैसे उदयप्राप्त मनुष्यगति मे शेष तीन गति के दलिको को, उदयप्राप्त एकेन्द्रियजाति मे शेष जाति के दलिको को जो सक्रमित किया जाता है, यह स्तिबुकसक्रम कहलाता है। प्रदेशोदय भी इसका अपरनाम है। दोनो समानार्थक ही है।

सत्ता मे असख्य स्थितिस्थान होते है और वे क्रमश अनुभव किये जाते है। एक साथ एक से अधिक स्थितिस्थान अनुभव नही किये जाते है। जिस कर्मप्रकृति के फल को अपने स्वरूप से साक्षात् अनुभव किया जाता है, उसके अनुभव किये जाते—उदय समय मे जिसका अबाधाकाल बीत गया है, परन्तु स्वरूप से फल दे सके ऐसी स्थिति मे नही है, वैसी प्रकृति का उदयसमय—उदयप्राप्त स्थितिस्थान जीव की किसी भी प्रकार की वीर्यप्रवृत्ति के विना सहजभाव से सक्रमित होता है। जिससे ऊपर कहे गये 'समानकाल वाली उदयस्थिति मे' पद का यह तात्पर्य हुआ कि सक्रमित होने वाली प्रकृति का उदयस्थान होना चाहिये एव पतद्ग्रहप्रकृति का भी उदयस्थान होना चाहिये। उदयस्थान मे उदयस्थान का सक्रमण होना। यहाँ उदयस्थान मे उदयस्थान का सक्रमण होता है, जिससे

दोनो की उदयकाल रूप समानस्थिति घट सकती है। अवाधाकाल वीतने के अनन्तर तो प्रत्येक कर्म अवश्य फल देने के सन्मुख होता है। उसमे कोई कर्म अपने स्वरूप से फल दे, ऐसी स्थिति मे तो कोई कर्म अन्य मे मिल कर फल दे, ऐसी स्थिति मे होता है। जैसे कि जिस गति की आयु का उदय हो उसके अनुकूल सभी प्रकृतियो का स्वरूपत और उनके सिवाय अन्य प्रकृतियो का पररूप से उदय होता है। पररूप से जो उदय उसी का नाम ही प्रदेशोदय या स्तिबुकसक्रम कहलाता है। यहाँ यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि अबाधाकाल वीतने के बाद प्रत्येक कर्मप्रकृति फल देने के उन्मुख होती है, यानि जो स्वरूप मे अनुभव की जाये, उसकी जैसे उदयावलिका होती है, उसी प्रकार जो पररूप से अनुभव की जाये, स्वरूप से अनुभव न की जाये उसकी भी उदयावलिका होती है। उदयावलिका अर्थात् उदयसमय से लेकर एक आवलिका काल मे भोगे जाये, उतने स्थितिस्थान। वे स्थितिस्थान तो दोनो मे है ही, किन्तु एक को रसोदयावलिका कहते है और दूसरे को प्रदेशोदयावलिका-स्तिबुकसक्रम कहते है।

नामकर्म की अनेक प्रकृतिया है। किन्तु सभी का नही, अमुक का ही रसोदय होता है और शेष प्रकृतिया प्रदेशोदय के रूप मे अनुभव की जाती है। इसीलिये गाथा मे जो मात्र पिंडप्रकृतियो का सकेत किया है, वह वहुत्व की अपेक्षा से है। जिससे अन्य प्रकृतियो मे भी यदि उनका स्वरूप से उदय न हो तो उनमे भी स्तिबुकसक्रम प्रवृत्त होता है, ऐसा समझना चाहिये। जैसे कि क्षयकाल मे सज्वलन क्रोधादि की शेषीभूत उदयावलिका सज्वलन मान आदि मे स्तिबुकसक्रम द्वारा सक्रमित होती है।

इस प्रकार से स्तिबुकसक्रम की लाक्षणिक व्याख्या जानना चाहिये। अब विध्यात आदि गुणसक्रम पर्यन्त के अपहारकाल के अल्पवहुत्व का निर्देश करते है।

विध्यात आदि संक्रमो के अपहारकाल का अल्पबहुत्व

गुणमाणेण दलिअ हीरतं थोवएण निट्ठाइ।
कालोऽसखगुणेण अहविज्झ उव्वलणगाणं ॥८१॥

शब्दार्थ—गुणमाणेण—गुणसक्रम के प्रमाण से, दलिअ—दलिक, हीर त—अपहरण किया जाता, थोवएण—अल्पकाल मे, निट्ठाइ—निर्लेप होता है, कालोऽसखगुणेण—असख्यातगुण काल, अहविज्झ उव्वलणगाण—यथाप्रवृत्त, विध्यात और उद्वलना सक्रमो द्वारा ।

गाथार्थ—गुणसक्रम के प्रमाण द्वारा अपहरण किया जाता चरमखड का दलिक अल्पकाल मे निर्लेप होता है और यथाप्रवृत्त, विध्यात और उद्वलना सक्रमो द्वारा उसी खड के दलिक का अपहरण किये जाने मे अनुक्रम से असख्यातगुण असख्यातगुण काल होता है ।

विशेषार्थ—उद्वलनासक्रम के स्वरूपकथन के प्रसग मे जो चरम खड का निर्देश किया था, उस चरमखड के दलिक को गुणसक्रम के प्रमाण से अपहार किया जाये—पर मे निक्षेप किया जाये तो वह चरमखड अल्पकाल मे ही—अन्तर्मुहूर्तकाल मे पूर्ण रूप से निर्लेप होता है तथा उसी चरमखड के दलिक को यथाप्रवृत्त, विध्यात और उद्वलना सक्रम के प्रमाण से यानि कि उस-उस सक्रम के द्वारा जितना-जितना अपहृत किया जा सके—पर मे सक्रमित किया जा सके, उस प्रमाण से यदि अपहरण किया जाये तो अनुक्रम से असख्यात-असख्यातगुण काल मे अपहरण किया जा सकता है। इसीलिये उनका अपहरण काल अनुक्रम से असख्यात-असख्यातगुण जानना चाहिये ।

असख्यातगुण काल कहने का कारण यह है कि यदि उस चरम-खड को यथाप्रवृत्तसक्रम के द्वारा अपहार किया जाये तो वह खड पल्योपम के असख्यातवे भाग जितने काल मे निर्लेप होता है। इसीलिये गुणसक्रम द्वारा होने वाले अपहारकाल से यथाप्रवृत्त-सक्रम द्वारा होने वाला अपहारकाल असख्यातगुण होता है ।

यदि उसी चरमखड को विध्यातसक्रम द्वारा अपहार किया जाये तो वह चरमखड असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल मे निर्लेप होता है। इसीलिये यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा होने वाले अपहारकाल से विध्यातसक्रम द्वारा होने वाला अपहारकाल असख्यातगुण है तथा उसी चरमखड को द्विचरमस्थितिखड के चरमसमय मे पर-प्रकृति मे जितना दलिक निक्षिप्त किया जाता है, उस प्रमाण से उद्वलनासक्रम द्वारा अपहार किया जाये तो वह चरमखड अति प्रभूत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी द्वारा निर्लेप होता है, जिससे विध्यातसक्रम द्वारा होने वाले अपहारकाल से उद्वलनासक्रम द्वारा होने वाला अपहारकाल इस प्रकार से असख्यातगुणा होता है।

यदि विध्यात और उद्वलना सक्रमो द्वारा होने वाले अपहार का क्षेत्रापेक्षा विचार किया जाये तो अगुल के असख्यातवे भाग मे वर्तमान आकाश प्रदेश जितने समय प्रमाण काल मे होता है। मात्र उद्वलनासक्रम द्वारा होने वाले अपहारकाल मे बृहत्तम अगुल का असख्यातवा भाग ग्रहण करना चाहिये।

यहाँ जो सक्रमविषयक काल का अल्पबहुत्व कहा है, उससे यह जाना जा सकता है कि किस सक्रम का कितना बल है। सबसे अधिक बलशाली गुणसक्रम है, उससे कम यथाप्रवृत्तसक्रम और उससे भी कम बलवान विध्यातसक्रम है। यद्यपि योगानुसार सक्रम होता है, परन्तु कालभेद से होने के कारण यह अल्पबहुत्व सभव है। गुणसक्रम द्वारा होने वाला सक्रम तो सदा अधिक ही होता है। बधयोग्य प्रकृतियो का सक्रम और बध-विच्छेद होने के बाद होने वाला उसी का सक्रम, इसमें हीनाधिकता रहती है। बधयोग्य का अधिक और बधविच्छेद होने के बाद अल्प दलिक का सक्रम होता है। उद्वलनासक्रम तो ऊपर के गुणस्थानो मे होता है, उसका बल यथाप्रवृत्त से अधिक है। क्योकि उसके द्वारा अन्तर्मुहूर्त मे कर्मप्रकृति निसत्ताक होती है। उद्वलनासक्रम मे स्व मे प्रक्षिप्त किया जाता है, उस हिसाब से यदि निक्षिप्त किया

जाये तो यथाप्रवृत्तसक्रम जितना वल और पर मे जो प्रक्षेप किया जाता है, उस हिसाव से निक्षिप्त किया जाये तो उससे वहुत ही अल्प वल है। प्रकृति का नि सत्ताक करने मे उद्वलनासक्रम उपयोगी है। जहाँ-जहाँ वह सभव है, वहाँ-वहाँ वह-वह प्रकृति नि सत्ताक होती है। प्रथम गुणस्थान मे कतिपय प्रकृतियो का उद्वलनासक्रम होता है, परन्तु ऊपर के गुणस्थान से पहले गुणस्थान मे हीनवल वाला होता है।

इस प्रकार से गुणसक्रम आदि के काल का अल्पवहुत्व जानना चाहिये। परन्तु द्विचरमखड तक के खडो का दलिक उद्वलनासक्रम द्वारा पर और स्व मे इस प्रकार दो रूप से सक्रमित किया जाता है। यहाँ जो अल्पवहुत्व कहा है, उसमें द्विचरमखड को पर मे यदि सक्रमित किया जाता है, उस हिसाव से चरमखड का दलिक पर मे निक्षिप्त किया जाये तो जितना काल हो उतना काल उद्वलनासक्रम का लेना है, यह वताने के लिये तथा यथाप्रवृत्तसक्रम का भी प्रमाण वताने के लिये आचार्य गाथासूत्र कहते है—

ज दुचरिमस्स चरिमे सपरट्ठाणेसु देई समयम्मि।
ते भागे जहकमसो अहापवत्तुव्वलणमाणे ॥८२॥

शब्दार्थ—ज—जो, दूचरिमस्स—द्विचरमखड के, चरिमे—चरम, सपरट्ठाणेसु—स्व और पर स्थान मे, देई—प्रक्षिप्त किया जाता है, समयम्मि—समय मे, ते—वे, भागे—भाग, जहक्कमसो—यथाक्रम से, अहापवत्तुव्वलणमाणे—यथाप्रवृत्त और उद्वलना सक्रम का प्रमाण।

गाथार्थ—द्विचरमखड के चरम समय मे स्व और पर स्थान मे जो दलिकभाग प्रक्षिप्त किया जाता है, वे दलिकभाग यथाक्रम—अनुक्रम से यथाप्रवृत्त और उद्वलना सक्रम के प्रमाण है।

विशेषार्थ—द्विचरमखड का चरमसमय मे जो दलिकभाग स्व और पर स्थान मे प्रक्षिप्त किया जाता है, सक्रमित किया जाता है,

वे दलिक-भाग अनुक्रम से यथाप्रवृत्तसक्रम और उद्वलनासक्रम के प्रमाण हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि पूर्वगाथा में चरमखड को गुणसक्रम आदि के द्वारा सक्रमित किये जाते होने वाले काल का जो अल्प-बहुत्व कहा है, उसमें यथाप्रवृत्त और उद्वलना सक्रम द्वारा चरम-खड को सक्रमित किये जाते कौन-सा प्रमाण लेना चाहिये इसका उल्लेख नही किया है। जिसको यहाँ स्पष्ट करते है कि उद्वलना-सक्रम मे द्विचरमखड का चरमप्रक्षेप करने पर जितना दलिक स्व-स्थान मे निक्षिप्त किया जाता है, वह प्रमाण यथाप्रवृत्तसक्रम में ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् उस प्रमाण से चरमखड को सक्रमित करते हुए जितना काल हो उतना काल यथाप्रवृत्तसक्रम का लेना चाहिये। इसी हेतु से ही उद्वलनासक्रम द्वारा द्विचरमखड का चरम प्रक्षेप करने पर जितना दलिक स्व मे निक्षिप्त करता है, उस प्रमाण से चरमखड के सक्रमित करते जितना काल होता है उसके तुल्य यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करने पर काल होता है, यह कहा है।

उद्वलनासक्रम मे द्विचरमखड का चरमप्रक्षेप करने पर जितना दलिक पर मे प्रक्षिप्त किया जाता है वह प्रमाण उद्वलनासक्रम मे लेना चाहिये। यानि द्विचरमखड का चरमप्रक्षेप करने पर पर मे जितना दलिक प्रक्षिप्त किया जाता है उस प्रमाण से चरमखड को अन्यत्र सक्रमित करते हुए जितना काल होता है उतना काल उद्वलना का लेना चाहिये। उक्त प्रमाण से लेने पर उपर्युक्त अल्पबहुत्व सम्भव है।

इस प्रकार से सविस्तार पाचो प्रदेशसक्रमणो का स्वरूप जानना चाहिये। अव क्रमप्राप्त साद्यादि प्ररूपणा करते है। किन्तु मूल कर्मो का परस्पर सक्रम नही होता है। अतएव उत्तरप्रकृतियो के सक्रम के विपय मे साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

उत्तर प्रकृतियो सबधी साद्यादि प्ररूपणा

चउहा धुवछव्वीसगसयस्स अजहन्नसकमो होइ ।
अणुक्कोसो विहु वज्जिय उरालियावरणनवविग्घ ॥८३॥

शब्दार्थ—चउहा—चार प्रकार का, ध्रुवछव्वीसगसयस्स—ध्रुव एक सौ छब्बीस प्रकृतियो का, अजहन्नसकमो—अजघन्य सक्रम, होइ—होता है, अणुक्कोसो—अनुत्कृष्ट, विहु—भी, वज्जिय—छोडकर, उरालियावरणनवविग्घ—औदारिकसप्तक, नव आवरण और अतरायपचक ।

गाथार्थ—पूर्वोक्त ध्रुव एक सौ छब्बीस प्रकृतियो का अजघन्य सक्रम चार प्रकार का है और औदारिकसप्तक, नव आवरण और अतरायपचक को छोडकर शेष प्रकृतियो का अनुत्कृष्ट भी चार प्रकार का है ।

विशेषार्थ—पूर्व मे कही गई ध्रुवसत्ता वाली एक सौ छब्बीस प्रकृतियो का अजघन्य प्रदेशसक्रम सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार का है । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जिसका स्वरूप आगे कहा जायेगा ऐसा और कर्मक्षय करने के लिये प्रयत्नवत क्षपितकर्मांश जीव सभी ध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का जघन्य प्रदेशसक्रम करता है और वह नियत कालपर्यन्त ही होने से सादि-सात है । उसके सिवाय जो प्रदेशसक्रम अन्य जीवो के होता है, वह सब अजघन्य है । वह अजघन्य प्रदेशसक्रम उपशमश्रेणि मे बधविच्छेद होने के बाद पतद्ग्रह का अभाव होने से किसी भी प्रकृति का नही होता है, किन्तु वहाँ से गिरने पर होता है, इसलिये सादि है । उस स्थान को जिसने प्राप्त नही किया, उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है । तथा—

औदारिकसप्तक, ज्ञानावरणपचक, चक्षुदर्शनावरण आदि दर्शनावरणचतुष्क और अतरायपचक को छोडकर शेष एक सौ पाच ध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियो का अनुत्कृष्ट प्रदेशसक्रम भी सादि आदि चार प्रकार है । जिसका स्वरूप आगे कहा जायेगा ऐसा और

कर्मक्षय के लिये उद्यत गुणितकर्मांश जीव उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम है, अन्य कोई नही करता है। उसको यह नियतकाल पर्यन्त से सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य सब प्रदेशसक्रम अनुत्‌ और वह उपशमश्रेणि में बधविच्छेद होने के बाद नही ह वहाँ से गिरने पर होता है, इसलिए सादि है, उस स्थान क नही करने वाले की अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और अध्रुव है। तथा—

सेसं साइ अधुव जहन्न सामी य खवियकम्मसो।
ओरालाइसु मिच्छो उक्कोसगस्स गुणियकम्मो ॥८४॥

शब्दार्थ—सेस—शेष विकल्प, साइ अध्रुव—सादि, अध्रुव, ज जघन्य प्रदेशसक्रम, सामी—स्वामी, य—और, खवियकम्मसो—.. कर्मांश, ओरालाइसु—औदारिकादि का, मिच्छो—मिथ्यात्व मे, उक्क स्स—उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का, गुणियकम्मो—गुणितकर्मांश।

गाथार्थ—शेष सर्व विकल्प सादि, अध्रुव है। जघन्य प्र सक्रम का स्वामी क्षपितकर्मांश है और उत्कृष्ट प्रदेशसक्र गुणितकर्मांश स्वामी है। औदारिकादि का उत्कृष्ट प्रदेशर मिथ्यात्व में होता है।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा में जिन प्रकृतियो के विकल्पो के कहा गया है, उनके उक्त विकल्पो के सिवाय जघन्य आदि सादि-सात जानना चाहिये। उनमें एक सौ पाच प्रकृतियो के जघन्य और उत्कृष्ट ये दो विकल्प शेप है और उनका विचार प्र अनुत्कृष्ट और अजघन्य का स्वरूप कहने के प्रसग में किया जा चु है। उनके नियतकाल पर्यन्त ही होने से जघन्य और उत्कृष्ट सा अध्रुव (सात) ही होते हैं।

औदारिकसप्तक आदि इक्कीस प्रकृतिया जिनको पूर्व गाथा वर्जित किया है, उनका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम गुणितकर्मांश मिथ्यादृ के होता है, उसके अतिरिक्त शेप काल में अनुत्कृष्ट होता है

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि मे एक के बाद एक के क्रम से होने के कारण वे दोनो सादि-सात है और उनके जघन्य विकल्प का विचार तो अजघन्य कहने के प्रसग मे किया जा चुका है कि वह सादि-सात होता है।

ध्रुवसत्ता वाली एक सौ तीस प्रकृतिया है। उनमे से एक सौ छब्बीस प्रकृतियो के विकल्पो का विचार किया जा चुका है और शेष चार प्रकृतियो का कहते हैं कि मिथ्यात्वमोहनीय की ध्रुवसत्ता है, लेकिन सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय रूप उसका पतद्ग्रह स्थायी नही होने से उसका किसी भी प्रकार का कोई सक्रम सदैव होता नही है। किन्तु जब पतद्ग्रह प्रकृति हो तब होता है और वह भी भव्यात्मा को नियतकाल पर्यन्त होता है, इसलिये इसके जघन्य आदि चारो विकल्प सादि-सात है। अभव्य के तो मिथ्यात्व के प्रदेशो का सक्रम ही नही होता है।

नीचगोत्र और साता-असाता वेदनीय परावर्तमान प्रकृति होने से उनके अजघन्यादि सादि-सात जानना चाहिये। क्योकि जब साता का बध हो तब असातावेदनीय का सक्रम हो और असाता का बध हो तब सातावेदनीय का सक्रम हो। उच्चगोत्र का बध होने पर नीचगोत्र का सक्रम होता है और नीचगोत्र का बध हो तब उच्च-गोत्र का सक्रम होता है। जो प्रकृति बधती हो उसमे अबध्यमान प्रकृति का अजघन्य प्रदेशसक्रम होता है, इसलिये उन प्रकृतियो के अजघन्य आदि सक्रम स्थायी नही होने से उनमे सादि-सात भग ही घटित हो सकते है तथा अध्रुव सत्ता वाली अट्ठाईस प्रकृतियो के अजघन्यादि प्रदेशसक्रम उनके अध्रुवसत्ता वाली होने से ही सादि-सात हैं।

इस प्रकार से साद्यादि भग प्ररूपणा जानना चाहिये। सुगमता से बोध कराने वाला जिसका प्रारूप इस प्रकार है—

प्रदेशसंक्रम की साद्यादि भंग प्ररूपणा

प्रकृतियां	अजघन्य				जघन्य		अनुत्कृष्ट				उत्कृष्ट	
	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	सादि	अध्रुव
अनन्तरोक्त २१ रहित १०५ ध्रुव सत्ताका	उपशम श्रेणि से पतित	भव्य	साद्या-प्राप्त	अभव्य	क्षपणोद्यत क्षपित कर्मांश	सादि होने से	उपशम श्रेणि से पतित	भव्य	सादि अप्राप्त	अभव्य	क्षपणोद्यत गुणित कर्मांश	सादि होने से
ज्ञाना ५ दर्शना ४ अतराय ५ औदारिक सप्तक(२१)	,,	,,	,,	,,	,,	,,	गुणित कर्मांश मिथ्या कदाचित् होने से	सादि होने से	×	×	गुणित कर्मांश मिथ्या कदाचित् होने से	,,
शेष २८ अध्रुव सत्ताका	अध्रुव सत्तावाली होने से	अध्रुव होने से	×	×	अध्रुव होने से	अध्रुव होने से	अध्रुव सत्ता होने से	अध्रुव सत्ता होने से	×	×	अध्रुव सत्ता	अध्रुव सत्ता
मिथ्यात्व	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से	पतद्ग्रहाध्रुव होने से	×	×	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से	पनद्ग्रहा ध्रुव होने से	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से	×	×	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से	पतद्ग्रहा ध्रुव होने से
नीचगोत्र, साता-असाता वेदनीय	परावर्तमाना होने से	परावर्तमाना होने से	×	×	परावर्तमाना होने से	परावर्त होने से	परावर्त होने से	परावर्त होने से	×	×	परावर्त होने से	परावर्तमाना होने से

स्वामित्व प्ररूपणा

अब स्वामित्व प्ररूपणा करने का क्रम प्राप्त है। वह दो प्रकार की है—उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व और जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व। जघन्य प्रदेशसक्रम का स्वामी क्षपितकर्माश और उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का स्वामी गुणितकर्माश जीव है। उसमे भी औदारिक-सप्तक, ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क और अतरायपचक इन इक्कीस प्रकृतियो के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का स्वामी गुणितकर्माश मिथ्यादृष्टि है और शेप प्रकृतियो के स्वामी यथासभव ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव है। जिसका स्पष्टीकरण यथास्थान आगे किया जा रहा है। परन्तु गुणितकर्माश किसे कहते है, उसका क्या स्वरूप है? इसको स्पप्ट करने के लिये पहले गुणितकर्माश की व्याख्या करते है।

गुणितकर्माश

बायरतसकालूण कम्मठिइ जो उ बायरपुढवीए।
पज्जत्तापज्जत्तदीहेयर आउगो वसिउं ॥८५॥
जोगकसाउक्कोसो बहुसो आउ जहन्न जोगेणं।
बधिय उवरिल्लासु ठिइसु निसेग बहु किच्चा ॥८६॥
बायरतसकालमेव वसित्तु अते य सत्तमक्खिइए।
लहुपज्जत्तो बहुसो जोगकसायाहिओ होउ ॥८७॥
जोगजवमज्झ उवरिं मुहुत्तमच्छित्तु जीवियवसाणे।
तिचरिमदुचरिमसमए पूरित्तु कसायमुक्कोस ॥८८॥
जोगुक्कोस दुचरिमे चरिससमए उ चरिमसमयमि।
सपुन्नगुणियकम्मो पगय तेणेह सामित्ते ॥८९॥

शब्दार्थ—बायरतसकालूण—बादर त्रसकाय की कायस्थिति काल से न्यून, कम्मठिइ—कर्मस्थिति, जो—जो, उ—और बायरपुढवीए—बादर

पृथ्वी मे, पज्जत्तापज्जत्त—पर्याप्त और अपर्याप्त भवो मे, दीहेयर आउगो—दीर्घ और अल्प आयु से, वसिउ—रहकर।

जोगकसाउक्कोसो—उत्कृष्ट योग और कपाय मे, बहुसो—अनेक वार, आउ—आयु को, जहन्न जोगेण—जघन्य योग से, बधिय—बाधकर, उवरिल्लासु—ऊपर के, ठिइसु—स्थितिस्थानो मे, निसेग—निपक को, बहु—प्रभूत, किच्चा—करके।

बायरतसकालमेव—वादर त्रसकाल मे भी इसी प्रकार, वसित्तु—रहकर, अते—अत मे, य—और, सत्तमक्खिइए—सातवी नरकपृथ्वी मे, लहुपज्जत्तो—शीघ्र पर्याप्तपना प्राप्त कर, बहुसो—अनेक बार, जोगकसायाहिओ—उत्कृष्ट योग एव कपाय वाला, होउ—होकर।

जोगजवमज्झ—योग यवमध्य से, उवरिं—ऊपर, मुहुत्तमच्छित्तु—अन्तर्मुहूर्त रहकर, जीवियवसाणे—आयु के अन्त मे, तिचरिमदुचरिससमए—त्रिचरम और द्विचरम समय मे, पूरित्तु—पूरित कर, कसायमुक्कोस—उत्कृष्ट कपाय।

जोगुक्कोस—उत्कृष्ट योग, दुचरिमे—द्विचरम मे, चरिमसमए—चरम समय मे, उ—और, चरिमसमयमि—चरम समय मे, सपुन्नगुणिकम्मो—सपूण गुणितकर्माश, पगय—प्रकृत, तेणेह—उसका यहाँ, सामित्ते—स्वामित्व मे।

गाथार्थ—कोई जीव वादर त्रसकाय की कायस्थितिकाल न्यून कर्मस्थिति पर्यन्त वादर पृथ्वी मे पर्याप्त और अपर्याप्त भवो मे दीर्घ और अल्प आयु से रहकर—

अनेक बार उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट कपाय मे रहते एव आयु को जघन्य योग से वाध कर तथा ऊपर के स्थितिस्थानो मे कर्म का निषेक प्रभूत (अधिक) करके वादर त्रस मे उत्पन्न हो, तथा—

वहाँ (वादर त्रस मे) भी इसी प्रकार अपने कायस्थितिकाल पर्यन्त रहकर और अत मे सातवी नरक पृथ्वी मे शीघ्र पर्याप्तपना प्राप्त करके और वहाँ अनेक वार उत्कृष्ट योग एव उत्कृष्ट

कषाय वाला होकर—

अपनी आयु के अत मे योग के यवमध्य के ऊपर के योग-स्थानो मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त रहकर तथा त्रिचरम एव द्विचरम समय मे उत्कृष्ट कषाय और द्विचरम एव चरम समय मे उत्कृष्ट योग पूरित करके—

द्विचरम और चरम समय में उत्कृष्ट योग वाला हो। इस विधि से अपने आयु के चरम समय में वह सप्तम नरकपृथ्वी का जीव सपूर्ण गुणितकर्माश होता है। ऐसा जीव ही प्रकृत में—उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के स्वामित्व के विषय में—अधिकृत है। अर्थात् ऐसे जीव का ही यहाँ अधिकार है। ऐसा गुणितकर्मांश जीव उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का स्वामी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन पाच गाथाओ में आचार्य ने गुणितकर्माश जीव की स्वरूपव्याख्या की है। गुणितकर्माश अर्थात् प्रभूत कर्मवर्गणाओ से सम्पन्न-युक्त जीव। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

त्रस जीव दो प्रकार के है—१ सूक्ष्म त्रस और २ वादर त्रस। द्वीन्द्रियादि जीव बादर त्रस और तेजस्काय तथा वायुकाय के जीव सूक्ष्म त्रस कहलाते है। यहाँ सूक्ष्म त्रसो का व्यवच्छेद करने के लिये ग्रथकार आचार्य ने वादर पद ग्रहण किया है। द्वीन्द्रिय आदि वादर त्रसो की पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरोपम प्रमाण जो कायस्थितिकाल कहा है, उससे न्यून मोहनीयकर्म की सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति पर्यन्त कोई जीव वादर पृथ्वीकाय के भवो में से पर्याप्त के भवो मे दीर्घ आयुष्य से और अपर्याप्त के भवो मे अल्प आयुष्य से रहे।

यहाँ वादर और पर्याप्त विशेषण युक्त पृथ्वीकाय के जीव को ग्रहण करने का कारण यह है कि शेप एकेन्द्रियो की अपेक्षा वादर पृथ्वीकाय की आयु अधिक होती है तथा शेप एकेन्द्रियो की अपेक्षा पर्याप्त खर वादर पृथ्वीकाय के अत्यन्त वलवान होने से दु ख सहन

करने की क्षमता उसमे अधिक होती है, जिससे उसे बहुत से कर्म-पुद्गलो का क्षय नही होता है, अर्थात् ऐसे जीव के कर्मबन्ध अधिक होता है और क्षय अल्प प्रमाण में।

'पज्जत्तापज्जत्त' पद से पर्याप्त के बहुत से भव और अपर्याप्त के अल्प भव ग्रहण करने का सकेत किया है। निरतर पर्याप्त के भव नही करने और बीच मे अल्प (कुछ) अपर्याप्त के भी भव ग्रहण करने का कारण यह है कि सिर्फ पर्याप्त की उतनी कायस्थिति नही होती है, किन्तु पर्याप्त-अपर्याप्त दोनो को मिलाकर होती है। जिससे पूर्ण कायस्थिति को ग्रहण करने के लिये बीच में अपर्याप्त के भव लिये है, अर्थात् दो हजार सागरोपम न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्वकायस्थिति में जितने कम मे कम हो सकते हैं उतने अपर्याप्त के भव और शेष सब पर्याप्त के भव ग्रहण करना चाहिये।

इन भवो मे भी अपर्याप्त के भव अल्प और पर्याप्त के भव अधिक ग्रहण करने का कारण यह है कि अधिक कर्मपुद्गलो का सत्ता मे से क्षय न हो। अन्यथा निरन्तर जन्म और मरण को प्राप्त करते हुए प्रभूत (बहुत) कर्मपुद्गलो का सत्ता मे से क्षय होता है। किन्तु यहाँ उसका प्रयोजन नही है, यहाँ तो बध अधिक हो और सत्ता मे से क्षय अल्प हो उससे प्रयोजन है। क्योकि यहाँ गुणितकर्माश का स्वरूप बताया जा रहा है।

इस प्रकार से पर्याप्त के अनेक-बहुत से और अपर्याप्त के अल्प भवो को करके अनेक बार उत्कृष्ट योगस्थान में और कषायोदय-जन्य सक्लेशस्थान मे रहकर अर्थात् अनेक वार उत्कृष्ट योग एव उत्कृष्ट सक्लिष्ट परिणाम वाला होवे।

यहाँ उत्कृष्ट योग में और उत्कृष्ट सक्लेश मे रहने के सकेत करने का कारण यह है कि उत्कृष्ट योगस्थान में वर्तमान जीव अधिक मात्रा मे कर्मपुद्गलो को ग्रहण करता है और उत्कृष्ट सक्लेशस्थान में वर्तमान जीव उत्कृष्ट स्थिति बाधता है, अधिक कर्मपुद्गलो की उद्वर्तना और अल्प कर्मदलिक की अपवर्तना करता है। अधिक

उद्वर्तना और अल्प अपवर्तना करने का कारण ऊपर के स्थानो को कर्मदलिको से पुष्ट करने का सकेत करना है।

इसके बाद प्रत्येक भव मे आयु के बधकाल मे जघन्य योग से आयु का बध करके और यहाँ जघन्य योग से आयु का बध करने का कारण यह है कि यद्यपि आयु के योग्य उत्कृष्ट योग मे रहता जीव आयुकर्म के बहुत से पुद्गलो को ग्रहण करता है, परन्तु तथाप्रकार के जीवस्वभाव से ज्ञानावरणकर्म के अधिक पुद्गलो का क्षय करता है। यहाँ जो मात्र ज्ञानावरण कर्म के ही अधिक पुद्गलो का क्षय करने को कहा है उसमे जीवस्वभाव ही कारण है। किसी भी कर्म के प्रभूत पुद्गल सत्ता मे से कम हो, उसका यहाँ प्रयोजन नही है, इसीलिये जघन्य योग से आयु बध करने का सकेत किया है।

इसके बाद ऊपर के स्थितिस्थानो मे कर्मपुद्गलो को क्रमबद्ध व्यवस्थित निक्षिप्त करने रूप निषेक अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार अधिक करके और (क्योकि ऊपर के स्थानो मे अधिक निक्षेप करने के कथन का कारण यह है कि नीचे के स्थान तो उदय द्वारा भोगे जाकर क्षय हो जायेगे, परन्तु ऊपर के स्थानो मे प्रक्षिप्त दलिक ही गुणितकर्माश होने तक स्थित रह सकेगे) इस प्रकार से बादर पृथ्वीकाय मे पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक दो हजार सागरोपम न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम पर्यन्त रहकर वहाँ से निकले और निकलकर बादर त्रसकाय मे उत्पन्न हो।

फिर ऊपर जो गुणितकर्माश के योग्य विधि कही है, उस विधि पूर्वक पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक दो हजार सागरोपम प्रमाण बादर त्रस-काय के कायस्थितिकालपर्यन्त बादर त्रस मे रहकर, उतने काल मे अधिक से अधिक जितनी बार सातवी नरकपृथ्वी मे जा सके उतनी बार उस पृथ्वी मे जाये और उन नारक भवो मे के अतिम सातवी नरकपृथ्वी के भव मे अन्य समस्त दूसरे नारको से शीघ्र पर्याप्तभाव को प्राप्त हो—शीघ्र पर्याप्त हो।

यहाँ अपर्याप्तावस्था मे काल कम जाये, इसीलिये शीघ्र पर्याप्त-भाव प्राप्त करने का सकेत किया है तथा सातवी नरकपृथ्वी मे अनेक बार उत्कृष्ट योगस्थान और उत्कृष्ट कपायोदयजन्य उत्कृष्ट सक्लेश-स्थान को प्राप्त होता है और सातवी नरकपृथ्वी के भव मे वर्तमान जीव की आयु दीर्घ होती है एव उत्कृष्ट कषायजन्य उत्कृष्ट सक्लेश तथा उत्कृष्ट योग हो सकता है। इसलिये जितनी बार जाया जा सके, उतनी बार सातवी नरकपृथ्वी मे जाये यह सकेत किया है तथा अपर्याप्त की अपेक्षा पर्याप्त का योग असख्यातगुणा होता है और अधिक योग होने के कारण अधिक कर्मपुद्गलो को ग्रहण कर सकता है तथा गुणितकर्माश के प्रसग मे जो अधिक कर्मपुद्गलो का ग्रहण करे और अल्प दूर करे, ऐसे जीव का प्रयोजन होने से शीघ्र पर्याप्ति हो यह कहा है।

इसके वाद जो पहले योगाधिकार मे आठ समय कालमान वाले योगस्थान कहे है, उनकी यवमध्य सज्ञा है। अत पहले जिसका वर्णन किया है ऐसा वह सातवी नरकपृथ्वी का जीव अपनी अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब यवमध्य योगस्थान से ऊपर के सात, छह आदि समय के काल वाले योगस्थानो मे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अनुक्रम से बढता जाये अर्थात् अनुक्रम से वृद्धिगत योगस्थानो मे जाये। योग मे बढने के कारण वह अधिक कर्मपुद्गलो को ग्रहण करता है तथा अपनी आयु के अत समय से पूर्व तीसरे और दूसरे समय मे उत्कृष्ट कषायोदय-जन्य उत्कृष्ट सक्लिष्ट परिणामी हो और दूसरे समय मे तथा पहले—अपनी आयु के अतिम समय मे उत्कृष्ट योग वाला हो।

यहाँ उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट सक्लेश दोनो एक साथ एक समय, काल ही होते है, अधिक काल नही होते है, इसीलिये तीसरे और दूसरे समय मे उत्कृष्ट सक्लेश तथा दूसरे और पहले समय अर्थात् नरकायु के अतिम समय मे उत्कृष्ट योग इस प्रकार सम-विपम रूप से उत्कृष्ट सक्लेश एव उत्कृष्ट योग ग्रहण किया है। त्रिचरम और द्विचरम समय मे उत्कृष्ट सक्लेश ग्रहण करने

का कारण उद्‌वर्तना अधिक हो और अपवर्तना अल्प हो, यह है तथा चरम और द्विचरम समय में उत्कृष्ट योग ग्रहण करने का कारण कर्म-पुद्‌गलो का परिपूर्ण सचय हो, यह है। इस प्रकार के स्वरूप वाला नारक अपनी आयु के चरम समय में सम्पूर्ण गुणितकर्मांश होता है।

उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम की स्वामित्वप्ररूपणा में उपर्युक्त स्वरूप वाले गुणितकर्मांश जीव का ही अधिकार है। क्योंकि वैसा उत्कृष्ट प्रदेश का सचय-सत्ता वाला जीव ही उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कर सकता है।

इस प्रकार से गुणितकर्मांश—अधिक-से-अधिक कर्मांश की सत्ता वाले जीव का स्वरूप जानना चाहिये। अब किस प्रकृति का कौन उत्कृष्ट प्रदेश का सक्रम करता है, इसके लिये आचार्य गाथासूत्र कहते है।

औदारिकसप्तक आदि का उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमस्वामित्व

तत्तो तिरियागय आलिगोवरिं उरलएक्कवीसाए।
साय अणतर बधिऊण आली परमसाए ॥९०॥

शब्दार्थ—तत्तो—वहां से—सातवी नरक पृथ्वी से निकलकर, तिरिया-गय—तिर्यंचगति मे आगत-आया हुआ, आलिगोवरिं—एक आवलिका के जाने के बाद, उरलएक्कवीसाए—औदारिकादि इक्कीस प्रकृतियो का, साय—सातावेदनीय को, अणतर—अनन्तर, बधिऊण—बाधकर, आली—आव-लिका, परमसाए—बाद मे असातावेदनीय मे।

गाथार्थ—वहाँ से—सातवी नरकपृथ्वी से निकलकर तिर्यंच-गति में आया हुआ वह जीव आवलिका जाने के बाद औदारिक आदि इक्कीस प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है। तिर्यंचगति में साता को बाधकर आवलिका के अनन्तर बध्यमान असातावेदनीय मे सातावेदनीय का सक्रम करे, वह उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम है।

विशेषार्थ—पूर्व में जिसका स्वरूप कहा है, ऐसा वह गुणित-कर्मांश जीव सातवी नरकपृथ्वी से निकलकर पर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय में उत्पन्न हो और वहाँ वह तिर्यंच अपने भव की प्रथम आवलिका के चरम समय में औदारिकसप्तक, ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क और अतरायपचक रूप इक्कीस प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है।[1] इसका कारण यह है कि नरकभव के चरम समय में उत्कृष्ट योग द्वारा उपर्युक्त इक्कीस प्रकृतियो के प्रभूत कर्मदलिक ग्रहण किये है, उनको बधावलिका के बाद सक्रमित करता है, उससे पूर्व नही तथा अन्य कोई दूसरे स्थान पर इतने अधिक कर्मदलिक सत्ता में हो नही सकते है, इसलिये नारकी में से निकलकर तिर्यंच में आने के बाद उस भव की प्रथम आवलिका के चरम समय में उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। तथा—

नारकभव से निकलकर तिर्यचभव में आये, वहाँ उस भव के प्रथम समय से लेकर सातावेदनीय को उसके उत्कृष्ट बधकाल पर्यन्त बाधकर तत्पश्चात् असातावेदनीय का बध करे। उस असातावेदनीय की बधावलिका के चरम समय में जिसकी बधावलिका बीत चुकी है, ऐसे तिर्यंच के भव मे प्रथम समय से उत्कृष्ट बधकाल तक बधा हुआ सम्पूर्ण प्रदेशसत्ता वाला सातावेदनीय कर्म वध्यमान उस असाता-

---

१ सातवी नरकपृथ्वी का जीव वहाँ से निकलकर सख्यात वर्षायु वाले गर्भज पर्याप्त तिर्यंच मे ही उत्पन्न होता है, इसीलिये नारकी के बाद का अनन्तरवर्ती तिर्यंच का भव ग्रहण किया है। सातवी नरकपृथ्वी के जीव मे अपनी आयु के चरम समय मे बाधे हुए कर्म की बधा-वलिका तिर्यंचगति मे अपनी प्रथम आवलिका के चरम समय में पूर्ण होती है, इसी कारण यहाँ प्रथम आवलिका का चरम समय ग्रहण किया है।

वेदनीय मे यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करते हुए सातावेदनीय का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है ।[1] तथा—

कम्मचउक्के असुभाणबज्झमाणीण सुहुमरागते ।
सछोभणम्मि नियगे चउवीसाए नियट्टिस्स ॥९१॥

शब्दार्थ—**कम्मचउक्के**—चार कर्म की, **असुभाणबज्झमाणीण**—अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो का, **सुहुमरागते**—सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय मे, **सछोभणम्मि**—सक्रमण, **नियगे**—अपने-अपने, **चउवीसाए**—चौबीस प्रकृतियो का, **नियट्टिस्स**—अनिवृत्तिबादर को ।

गाथार्थ—चार कर्म की अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो का सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय मे उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है तथा अनिवृत्तिबादर को अपने-अपने चरम सक्रम के समय मे चौबीस प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसपराय अवस्था मे अबध्यमान दर्शनावरण, वेदनीय, नाम और गोत्र इन चार कर्मों की निद्राद्विक, असातावेदनीय, प्रथम बिना पाच सस्थान और पाच सहनन, अशुभ वर्णादि नवक, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति और नीचगोत्र रूप बत्तीस अशुभ

---

१ साता-असाता ये दोनो परावर्तमान प्रकृति है, अत अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल बधती नही है । यहाँ सातवी नरकपृथ्वी मे जितनी बार अधिक-से-अधिक बध सके, उतनी बार असाता को बाधकर उसको पुष्ट दलिक वाली करे, फिर वहाँ से मरण कर तिर्यंच मे आकर प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त मे साता का बध करे और पूर्व की असाता को सक्रमित करे । इस प्रकार सक्रम द्वारा और बध द्वारा सातावेदनीय पुष्ट हो, जिससे उसकी बधावलिका बीतने के बाद अनन्तर समय मे बधती हुई असाता मे साता का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करे । इस प्रकार से सातावेदनीय का उत्कृष्ट प्रदेश-सक्रम सम्भव हो सकता है ।

प्रकृतियो का गुणितकर्मांश क्षपक जीव के सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के चरम समय में (गुणसक्रम द्वारा) उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

'नियट्टिस्स' अर्थात् अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थान में वर्तमान गुणितकर्मांश क्षपक के मध्यम आठ कषाय, स्त्यानर्द्धित्रिक, तिर्यंच-द्विक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्दिय जाति, सूक्ष्म, साधारण और छह नोकषाय इन चौबीस कर्मप्रकृतियो का जिस समय चरम सक्रम होता है, उस समय सर्वसक्रम द्वारा उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। तथा—

सछोभणाए दोण्ह मोहाण वेयगस्स खणसेसे।

उप्पाइय सम्मत्त मिच्छत्तगए तमतमाए ॥९२॥

शब्दार्थ—सछोभणाए—सक्रम, दोण्ह—दोनो, मोहाण—मोहनीय का, वेयगस्स—वेदक का, खणसेसे—क्षण अन्तर्मुहूर्त शेष हो, उप्पाइय—उत्पन्न करके, सम्मत्त—सम्यक्त्व को, मिच्छत्तगए—मिथ्यात्व मे जायें, तमतमाए—तमस्तमा नरकपृथ्वी मे।

गाथार्थ—दोनो मोहनीय—मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का अपने-अपने चरम सक्रम के समय उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है तथा तमस्तमा नरकपृथ्वी में अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब सम्यक्त्व उत्पन्न करके मिथ्यात्व में जाये तब वेदक सम्यक्त्व-मोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—'दोण्ह मोहाण'—मोहद्विक अर्थात् मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का क्षायिक सम्यक्त्व उपार्जन करते क्षपक जीव के उन दो प्रकृतियो का जिस समय चरम सछोभ-सक्रम हो उस समय सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करते हुए उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय के चरमखड की उद्वलना करते उस चरमखड के दल को पूर्व-पूर्व समय से उत्तर-उत्तर समय में असख्य-असख्य गुणाकार से पर में—सम्यक्त्वमोहनीय मे चरम समय पर्यन्त निक्षिप्त करता है, जिससे चरम समय मे सर्वोत्कृष्ट प्रदेशसक्रम घटित हो सकता है। चरम समय में जो समस्त दल पर मे सक्रमित किया

जाता है, उसे ही सर्वसक्रम कहते है, इसीलिये यहाँ सर्वसक्रम द्वारा यह कहा है।

तमस्तमा नामक सातवी नरकपृथ्वी मे अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तव औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करके और उस सम्यक्त्व के काल मे जितना शक्य हो, उतने दीर्घ अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त गुणसक्रम द्वारा सम्यक्त्वमोहनीय को मिथ्यात्व एव मिश्र मोहनीय के दल को सक्रमित करने के द्वारा पुष्ट करके सम्यक्त्व से पतित होकर मिथ्यात्व मे जाये, वहाँ उसके—मिथ्यात्व के प्रथम समय मे ही सम्यक्त्वमोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है।

अव अनन्तानुवधि के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के स्वामी का निर्देश करते है।

अनन्तानुवधि उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमस्वामित्व

> **भिन्नमुहुत्ते सेसे जोगकसाउक्कसाइ काऊण।**
> **सजोअणाविसजोयगस्स संछोभणाए सि ॥६३॥**

शब्दार्थ—भिन्नमुहुत्ते—अन्तर्मुहूर्त, सेसे—शेप, जोगकसाउक्कसाइ—योग और कपाय को उत्कृष्ट, काऊण—करके, सजोअणाविसजोयगस्स—अनन्तानुवधि के विसयोजक के, सछोभणाए—सक्षोभ के समय, सिं—इनकी।

गाथार्थ—अन्तर्मुहूर्त आयु शेप रहे तव योग और कपाय को उत्कृष्ट करके (नरक मे से निकलकर तिर्यंच मे आकर) अनन्तानुवधि के विसयोजक के चरम सक्षोभ-सक्रम के समय इनका (अनन्तानुवधि कपायो का) उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—सातवी नरकपृथ्वी मे वर्तमान गुणितकर्माश जीव अपनी जव अन्तर्मुहूर्त आयु शेप रहे, तव उत्कृष्ट योगस्थानो और उत्कृष्ट कपायस्थानो को करके उत्कृष्ट योगस्थानो और उत्कृष्ट कपायोदय-जन्य सक्लेशस्थानो को प्राप्त करके उस सातवी नरकपृथ्वी मे से

निकलकर (तिर्यंच मे आकर) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करे और उसके बाद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के रहते अनन्तानुबधि कषायो की विसयोजना—क्षय करने के लिये प्रयत्न करे और क्षय करते हुए अनन्तानुबधि के चरमखड का चरमप्रक्षेप करे तब सर्वसक्रम द्वारा उनका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। इसका तात्पर्य यह है कि चरमखड का समस्त दलिक चरमसमय मे सर्वसक्रम द्वारा जितना पर मे सक्रमित किया जाये, वह अनन्तानुबधि कषायो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहलाता है।

अब वेदत्रिक के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम-स्वामित्व का निर्देश करते है।

वेदत्रिक . उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

> **ईसाणागयपुरिसस्स इत्थियाए व अट्ठवासाए।**
> **मासपुहुत्तब्भहिए नपु सगस्स चरिमसछोभे ।।६४।।**

शब्दार्थ—**ईसाणागयपुरिसस्स**—ईशान देवलोक से आगत पुरुष के, **इत्थियाए**—स्त्री के, **व**—अथवा, **अट्ठवासाए**—आठ वर्ष की उम्र वाले, **मासपुहुत्तब्भहिए**—मासपृथक्त्व अधिक के, **नपु सगस्स**—नपु सकवेद का, **चरिमसछोभे**—चरम सक्षोभ के समय।

गाथार्थ—मासपृथक्त्व अधिक आठ वर्ष की उम्र वाले ईशान देवलोक से आगत पुरुष अथवा स्त्री के चरम समय मे नपु सक-वेद का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—वेद मोहनीय के पुरुष, स्त्री और नपु सक वेद ये तीन भेद है। इन तीन भेदो मे से यहाँ नपु सकवेद के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के स्वामी का निरूपण करते हुए बताया है—

कोई गुणितकर्मांश ईशान देवलोक का देव सक्लिष्ट परिणामो द्वारा एकेन्द्रियप्रायोग्य कर्मबध करते हुए नपु सकवेद को बार-बार बाधकर, उसके बाद ईशान देवलोक मे से च्युत हो पुरुप अथवा स्त्री

हो और वह पुरुष अथवा स्त्री अपनी मासपृथक्त्व अधिक आठ वर्ष की उम्र वाला हो, तब क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो, तब क्षपकश्रेणि मे नपुसकवेद का क्षय करते हुए उस पुरुष अथवा स्त्री को चरमप्रक्षेप[1] काल मे सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करते हुए नपुसकवेद का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

अब स्त्रीवेद के सक्रमस्वामित्व का कथन करते है—

पूरित्तु भोगभूमीसु जीविय वासाणि-संखियाणि तओ।
हस्सठिइं देवागय लहु छोभे इत्थिवेयस्स ॥६५॥

शब्दार्थ—पूरित्तु—पूरित करके, भोगभूमीसु—भोगभूमि मे, जीविय—जीवित रहकर, वासाणि-सखियाणि—असख्यात वर्ष, तओ—तदनन्तर, हस्सठिइं—जघन्य स्थिति, देवागय—देव मे उत्पन्न हो, लहु छोभे—चरम सक्षोभ काल मे, इत्थिवेयस्स—स्त्रीवेद का।

गाथार्थ—भोगभूमि मे असख्य वर्ष पर्यन्त स्त्रीवेद को बाधकर सब पूरितकर और उतना काल वहाँ जीवित रहकर जघन्य स्थिति वाले देव में उत्पन्न हो और वहाँ से च्यव कर मनुष्य मे उत्पन्न हो और शीघ्र क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो, वहाँ स्त्रीवेद

1 चरमप्रक्षेप अर्थात् नपुसकवेद को उद्वलनासक्रम द्वारा पल्योपम के असख्यातवे भाग जैसे खड कर-करके दूर करते हुए चरमखड के सिवाय शेष समस्त खडो को स्व और पर मे सक्रमित करके निर्लेप करता है। प्रत्येक खड को सक्रमित करते हुए अन्तर्मुहूर्त काल जाता है। इसी प्रकार चरमखड को पूर्व-पूर्व समय मे उत्तरोत्तर समय मे असख्यात-असख्यात गुणाकार रूप मे पर मे सक्रमित करते अन्तर्मुहूर्त के चरम समय मे जो समस्त पर मे सक्रमित करता है—वह चरमप्रक्षेप कहलाता है।

इसी प्रकार जहाँ भी चरमप्रक्षेप शब्द आये वहाँ चरमखड का चरम समय मे जो समस्त प्रक्षेप हो, उसका ग्रहण करना चाहिये।

का क्षय करते हुए चरम सक्षोभकाल मे उसका उत्कृष्ट प्रदेश-सक्रम होता है ।

विशेषार्थ—भोगभूमि मे असख्यात वर्षपर्यन्त स्त्रीवेद को बाधकर और अन्य प्रकृतियो के दलिको के सक्रम द्वारा पूरित कर तथा वहाँ उतने ही वर्ष पर्यन्त जीवित रहकर पल्योपम के असख्यातवे भाग जितना काल जाये तब अकालमृत्यु[1] द्वारा मरण प्राप्त करके दस हजार वर्ष प्रमाण देव की जघन्य स्थिति बाधकर देवरूप मे उत्पन्न हो। इसका तात्पर्य यह है कि युगलिकभव मे मात्र पल्योपम के असख्यातवे भाग जीवित रहकर और उतने काल मे स्त्रीवेद को वार-बार वाधकर तथा अन्य प्रकृतियो के दलिको के सक्रम द्वारा पुष्ट करके दस हजार वर्ष की जघन्य आयु बाधकर देवरूप से उत्पन्न हो और देव भव मे भी स्त्रीवेद का बध कर एव पूर्ण कर अपनी आयु के अत मे मरण प्राप्त कर कोई भी वेदयुक्त मनुष्य हो, वहाँ मास-पृथक्त्व अधिक आठ वर्ष की आयु वीतने के बाद क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो और वहाँ स्त्रीवेद का क्षय करते हुए उसके चरम प्रक्षेप-काल मे सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करने पर स्त्रीवेद का उत्कृष्ट प्रदेश-सक्रम होता है ।

अव पुरुषवेद के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व का निर्देश करते है ।

> वरिसवरित्थि पूरिय सम्मत्तमसखवासिय लभिय ।
> गन्तु मिच्छत्तमओ जहन्नदेवट्ठिइ भोच्चा ॥६६॥
> आगन्तु लहु पुरिस सछुभमाणस्स पुरिसवेअस्स ।

---

1 इस पद से ऐसा प्रतीत होता है कि युगलिको की अकाल मृत्यु सभव है । परन्तु सिद्धान्त मे इसमे विरोध आता है । विद्वज्जन स्पष्ट करने की कृपा करें ।

शब्दार्थ—वरिसवरित्थि—नपुसक और स्त्री वेद को, पूरिय—पूर कर, सम्मत्तमसखवासिय—असख्यात वर्षप्रमाण सम्यक्त्व को, लभिय—प्राप्त कर, पालन कर, गतु—जाकर, मिच्छत्तं—मिथ्यात्व मे, अओ—इसके बाद, जहन्नदेवट्ठिइ—जघन्य देव स्थिति को, भोच्चा—भोगकर।

आगन्तु—आकर, लहु—शीघ्र, पुरिस—पुरुषवेद को, सछुभमाणस्स—सक्षुब्ध करने वाले के, पुरिसवेअस्स—पुरुषवेद का।

गाथार्थ—नपुसक और स्त्री वेद को पूरकर, तत्पश्चात् असख्यात वर्ष प्रमाण सम्यक्त्व प्राप्त कर—पालन कर, बाद मे मिथ्यात्व में जाकर, वहाँ से जघन्य देवस्थिति वाला होकर और वहाँ से च्यव कर मनुष्य मे उत्पन्न हो, वहाँ शीघ्र ही क्षपक-श्रेणि पर आरूढ हो तो उस श्रेणि में पुरुषवेद को सक्षुब्ध करने वाले, सक्रमित करने वाले को पुरुषवेद का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—वर्षवर अर्थात् नपुसकवेद को ईशान देवलोक में बहुत काल पर्यन्त बध द्वारा तथा स्वजातीय अन्य कर्म प्रकृतियो के दलिको के सक्रम द्वारा पूरित, पुष्ट करके, अधिक दलिक की सत्ता वाला करके आयु के पूर्ण होने पर वहाँ से च्यव कर सख्यात वर्ष की आयु वालो[1] मे उत्पन्न होकर फिर असख्यात वर्ष की आयु वाले युगलिको मे उत्पन्न हो। वहाँ सख्यात वर्ष पर्यन्त स्त्रीवेद को बध द्वारा और अन्य प्रकृतियो के दलिको के सक्रम द्वारा पुष्ट करे, तत्पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त करे, उस सम्यक्त्व को असख्यात वर्ष पर्यन्त पाले और उस सम्यक्त्व के निमित्त से उतने वर्ष पर्यन्त पुरुषवेद का बध करे। सम्यक्त्व के काल मे पुरुषवेद को बाधता

---

१ यहाँ 'सख्यात वर्ष की आयु वाला' इस पद के सकेत से ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंच दोनो का ग्रहण किया जा सकता है।

वह जीव उस पुरुषवेद मे स्त्रीवेद और नपु सकवेद के दलिको को निरन्तर सक्रमित करता है। युगलिक मे पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण सर्वायु पर्यन्त जीवित रहकर अत मे मिथ्यात्व मे जाकर दस हजार वर्ष प्रमाण जघन्य आयु वाले देव मे उत्पन्न हो, वहाँ अन्तर्मुहूर्त के बाद पर्याप्त होकर सम्यक्त्व को प्राप्त करे, वहाँ भी सम्यक्त्व के निमित्त से पुरुषवेद का बध करे और उसमे स्त्री एव नपु सक वेद के दलिक सक्रमित करे, उसके अनन्तर देवभव से च्यव कर मनुष्य मे उत्पन्न हो और वहाँ सात मास अधिक आठ वर्ष बीतने के बाद क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो तो क्षपकश्रेणि मे आरूढ वह गुणितकर्माश जीव अभी तक जिसके प्रचुर दलिको को एकत्रित किया है, उस पुरुषवेद का जो चरमप्रक्षेप करता है, वह उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहलाता है।

यहाँ बधविच्छेद होने के पहले दो आवलिका काल मे जो दलिक बाधा है, वह अत्यन्त अल्प होने से उसका चरमसक्रम उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के रूप मे नही लेना है, किन्तु उसको छोडकर एकत्रित हुए शेष दलिक का जो चरमसक्रम होता है, वह उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहलाता है।[1]

---

१ पुरुषवेद जहाँ तक बधना था, वहाँ तक तो उसका यथाप्रवृत्तसक्रम होता था और बधविच्छेद होने के बाद क्षपकश्रेणि मे उसका गुणसक्रम होता है। उस गुणसक्रम के द्वारा पूर्व समय से उत्तरोत्तर समय मे असख्यात असख्यात गुणाकार रूप से सक्रमित करते अतिम जिस समय मे उसके पूर्व समय से असख्यातगुण सक्रमित करे वह उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कह सकते हैं। परन्तु बधविच्छेद होने के बाद दो समय न्यून दो आवलिका काल मे अतिम जो सर्वसक्रम होता है, उसे उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के रूप मे नही कहा जा सकता है। क्योकि सर्वसक्रम द्वारा अतिम समय मे जो सक्रमित करता है वह बधविच्छेद के समय जो बधा था वह शुद्ध एक समय का ही सक्रमित करता है, जिससे वह दलिक अति अल्प

इस प्रकार से वेदत्रिक के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के स्वामियो को जानना चाहिये। अब सज्वलनत्रिक—क्रोध, मान, माया के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के स्वामियो को बतलाते है।

संज्वलनत्रिक . उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

तस्सेव सगे कोहस्स माणमायाणमवि कसिणो ।।६७।।

शब्दार्थ—तस्सेव—उसी को, सगे—अपना, कोहस्स—क्रोध का, माणमायाणमवि—मान और माया का भी, कसिणो—कृत्स्न-चरम।

गाथार्थ—उसी को अपना कृत्स्न चरम सक्रम होने पर क्रोध का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है तथा इसी प्रकार मान और माया का भी उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पुरुषवेद के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का जिस प्रकार से और जो स्वामी है उसी प्रकार से ही वही सज्वलन क्रोध, मान और माया के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम का भी स्वामी है।

इस ससार मे परिभ्रमण करते हुए बाधी गई और क्षपणकाल में नही बधने वाली स्वजातीय अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम द्वारा प्रभूत मात्र में एकत्रित हुए के सज्वलन क्रोध का जब चरम प्रक्षेप होता है, तब उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। यहाँ भी बधविच्छेद होने से पहले दो आवलिका काल मे जो दलिक बाधे थे, उनको छोडकर शेष दलिको के चरम प्रक्षेप के समय उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम जानना चाहिये।

सज्वलन मान एव माया के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

होने से उसे उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम के रूप मे नही गिना जा सकता है। क्रोध, मान, माया का भी इसी तरह उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम सम्भव हो सकता है। विशेष केवलीगम्य है। विद्वज्जन स्पष्ट करने की कृपा करें।

अब सज्वलन लोभ, यश कीर्ति और उच्चगोत्र के उत्कृष्ट प्रदेश-सक्रम के स्वामियो का निर्देश करते है।

सज्वलन लोभ आदि प्रकृतित्रय : उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

चउरुवसमित्तु खिप्प लोभजसाण ससकमस्सते।

चउसमगो उच्चस्सा खवगो नीया चरिमबधे ॥६८॥

शब्दार्थ—चउरुवसमित्तु—चार बार मोहनीय का उपशम करके, खिप्प—शीघ्र, लोभजसाण—सज्वलन लोभ और यश कीर्ति का, ससकमस्सते—अपने सक्रम के अत मे, चउसमगो—चार बार मोह का उपशम करने वाला, उच्चस्सा—उच्चगोत्र का, खवगो—क्षपक, नीया—नीचगोत्र का चरिमबधे—चरमबध होने पर।

गाथार्थ—चार बार मोहनीय का उपशम करके शीघ्र क्षपकश्रेणि प्राप्त करने वाले के अपने सक्रम के अत मे (सज्वलन) लोभ और यश कीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है तथा चार वार मोह का उपशम करने वाले क्षपक के जब नीचगोत्र का चरम बध हो तव उच्चगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है।

विशेषार्थ—'चउरुवसमित्तु' अर्थात् अनेक भवो मे भ्रमण करने के द्वारा चार बार मोहनीय को उपशमित करके और चौथी वार की उपशमना होने के वाद शीघ्र क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुए गुणितकर्माश उसी जीव को अतिम सक्रम के समय सज्वलन लोभ और यश कीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

यहाँ चार वार उपशमश्रेणि प्राप्त करने का कारण इस प्रकार है— उपशमश्रेणि जव प्राप्त करे तव उस श्रेणि मे स्वजातीय अन्य प्रकृतियो के प्रभूत दलिको का गुणसक्रम द्वारा सक्रम होने से सज्वलन लोभ और यश कीर्ति ये दोनो प्रकृति निरन्तर पूरित-पुष्ट होती है—प्रभूत दलिको की सत्ता वाली होती है, इमीलिये उपशमश्रेणि का ग्रहण किया है तथा ससार मे परिभ्रमण करते हुए चार वार ही

मोहनीय का पूर्ण उपशम होता है, पाचवी बार नही होता है, इसी-लिये चार बार मोहनीय को उपशमित करके यह कहा है।

सज्वलन लोभ का चरम प्रक्षेप कहाँ होता है ? तो इसका उत्तर यह है कि सज्वलन लोभ का चरमप्रक्षेप अन्तरकरण के चरमसमय मे जानना चाहिये उसके बाद नही। क्योकि उसके बाद लोभ का प्रक्षेप-सक्रम ही नही होता है। इस विषय मे पहले कहा जा चुका है—

अतरकरणमि कए चरित्तमोहेणुपुव्विसकमण।

अन्तरकरण क्रिया काल प्रारम्भ हो तब चारित्रमोहनीय की उस समय बधने वाली प्रकृतियो का क्रमपूर्वक सक्रम होता है, उत्क्रम से सक्रम नही होता है। जिससे अन्तरकरण क्रिया शुरू होने के वाद तो सज्वलन लोभ का सक्रम ही नही होता है। अत जिस समय से लोभ का सक्रम बद हुआ, उससे पहले के समय मे बध और अन्य प्रकृतियो के सक्रम द्वारा पुष्ट हुए उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

इसी प्रकार अपूर्वकरणगुणस्थान मे जिस समय नामकर्म की तीस प्रकृतियो का अतिम बध होता है, उस समय बध द्वारा और स्वजातीय अबध्यमान अन्य प्रकृतियो के सक्रम द्वारा पुष्ट हुई यश -कीर्ति प्रकृति का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। तीस प्रकृतियो का बधविच्छेद होने के बाद वह अकेली यश कीर्ति प्रकृति ही बधने से वही पतद्ग्रह है, अन्य कोई पतद्ग्रहप्रकृति नही है, जिससे यश कीर्ति का सक्रम नही होता है। यही स्पष्ट करने के लिये तीस का बध-विच्छेद समय ग्रहण किया है।

अब उच्चगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहाँ होता है ? इसको स्पष्ट करते है—

मोह का उपशम करते हुए मात्र उच्चगोत्रकर्म ही बधता है, नीचगोत्र नही बधता है। इतना ही नहीं, किन्तु नीचगोत्र के दलिक गुणसक्रम द्वारा उच्चगोत्र मे सक्रमित होते है। इसीलिये यहाँ भी

चार बार मोहनीय के सर्वोपशम का सकेत किया है। यानि चार बार मोहनीय को उपशमित करता हुआ—उच्चगोत्र को बाधता जीव नीचगोत्र को गुणसक्रम द्वारा उच्चगोत्र में सक्रमित करता है। चार वार मोह का सर्वोपशम दो भव में होता है, जिससे दो भव में चार वार मोहनीय को उपशमित करके तीसरे भव में मिथ्यात्व में जाये, वहाँ नीचगोत्र बाधे और नीचगोत्र को बाधता हुआ उसमे उच्चगोत्र को सक्रमित करे, उसके बाद पुन सम्यक्त्व प्राप्त कर उसके वल से उच्चगोत्र को वाधता हुआ उसमें नीचगोत्र को सक्रमित करे। इस प्रकार अनेक बार उच्चगोत्र और नीचगोत्र को बाधता[1] अत में नीचगोत्र का बधविच्छेद कर मोक्षगमनेच्छुक जीव नीचगोत्र के बध के चरम समय मे बध और गुणसक्रम द्वारा पुष्ट हुए उच्चगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है। इस प्रकार से उच्चगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

पराघातादि का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

परघाय सकलतसचउसुसरादितिसासखगतिचउरसं।
सम्मधुवा रिसभजुया संकामइ विरचिया सम्मो ॥९९॥

शब्दार्थ—परघाय—पराघात, सकल—सपूर्ण (पचेन्द्रियजाति), तसचउ—त्रसचतुष्क, सुसरादिति—सुस्वरादित्रिक, सास—उच्छ्वासनाम, खगति—शुभ विहायोगति, चउरस—समचतुरस्रसस्थान, सम्म—सम्यग्दृष्टि, धुवा—ध्रुवबधिनी, रिसभजुया—वज्रऋषभनाराचसहनन सहित, सकामइ—सक्रमित करता है, विरचिया सम्मो—सम्यग्दृष्टि युक्त।

गाथार्थ—पराघात, पचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क, सुस्वरादित्रिक, उच्छ्वासनाम, शुभ विहायोगतिनाम और समचतुरस्रसस्थान

---

१ यहाँ एक के वाद दूसरा इस क्रम से कितनी ही वार उच्चगोत्र और नीचगोत्र वाधे, यह नही कहा है।

रूप सम्यग्दृष्टि की शुभ ध्रुवबधिनी प्रकृतिया वज्रऋषभनाराच-सहनन सहित सम्यग्दृष्टि युक्त जीव सक्रमित करता है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे तेरह शुभ ध्रुवबधिनी प्रकृतियो के उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व का निर्देश किया है—

पराघातनाम, पचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क—त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक, सुस्वरादित्रिक—सुस्वर, सुभग, आदेय तथा उच्छवास-नाम, प्रशस्त विहायोगति और समचतुरस्रसस्थाननाम इन बारह पुण्य प्रकृतियो का प्रत्येक गति वाला सम्यग्दृष्टि जीव प्रति समय अवश्य बध करता है। जिससे ये प्रकृतिया 'सम्यग्दृष्टि शुभध्रुवसज्ञा' वाली कहलाती है तथा वज्रऋषभनाराचसहनन को तो देव और नारक भव मे वर्तमान सभी सम्यग्दृष्टि जीव ही प्रति समय बाधते है, मनुष्य, तिर्यंच नही बांधते है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच तो मात्र देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियो को ही बाधते हैं और उनका बध करने वाले होने से उनको सहनन का बध नही होता है, जिससे प्रथम सहनननामकर्म सम्यग्दृष्टि शुभध्रुवसज्ञा वाला नही कहलाता है। इसीलिये उसे बारह प्रकृतियो से पृथक् कहा है।

इन तेरह प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम इस प्रकार है—

छियासठ सागरोपम पर्यन्त क्षयोपशमिक सम्यक्त्व का अनुपालन करता जीव प्रति समय उपर्युक्त प्रकृतियो को बाधता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिश्रगुणस्थान मे जाकर दूसरी बार क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करे। उस दूसरी बार प्राप्त किये क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को भी छियासठ सागरोपम पर्यन्त अनुभव करता वह जीव इन समस्त प्रकृतियो को बाधता है। सम्यग्दृष्टि जीव को इन प्रकृतियो की विरोधी प्रकृतियो का बध नही होता है। यहाँ इतना विशेष है कि—

उपर्युक्त तेरह प्रकृतियो मे से बारह का तो एक सौ बत्तीस सागरोपम पर्यन्त निरतर बध और प्रथम सहनन का देव, नारक के

भव मे जब-जब जाये तब बध लेना चाहिए । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि होते सम्यक्त्वी के जिनका बध ध्रुव है, ऐसी बारह प्रकृतियो को एक सौ बत्तीस सागरोपम पर्यन्त बध द्वारा और अन्य स्वजातीय प्रकृतियो के सक्रम द्वारा पुष्ट करके तथा वज्रऋषभनाराचसहनन को मनुष्य, तिर्यंच भव हीन देव, नारक भव मे यथासभव उत्कृष्ट काल तक बध द्वारा और अन्य स्वजातीय प्रकृतियो के सक्रम द्वारा पूरित करके सम्यग्दृष्टि के शुभध्रुवसज्ञा वाली उपर्युक्त बारह प्रकृतियो का अपूर्वकरणगुणस्थान मे बधविच्छेद होने के बाद बधावलिका पूर्ण होने के अनन्तर यश कीर्ति मे सक्रमित करते उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। तथा

वज्रऋषभनाराचसहनन का देवभव से च्यवकर मनुष्यभव मे आकर सम्यग्दृष्टि होते देवगतिप्रायोग्य बध करते आवलिका काल के बाद उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है। देवभव मे चरम समय जो प्रथम सहनननामकर्म बाधा, उसका बधावलिका के बीतने के बाद सक्रम होता है, इसीलिये देव से मनुष्य मे आकर आवलिका काल के बाद उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहा है।

प्रश्न—बारह प्रकृतियो के साथ ही प्रथम सहनन का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम क्यो नही बताया, पृथक् से निर्देश क्यो किया है ?

उत्तर—बारह प्रकृतिया तो आठवे गुणस्थान के छठे भाग पर्यन्त निरन्तर बधती है, क्योकि ये सम्यग्दृष्टि ध्रुवसज्ञा वाली हैं। जिससे बध द्वारा और सातवे गुणस्थान तक यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा तथा आठवे गुणस्थान के प्रथम समय से अन्य स्वजातीय अशुभ प्रकृतियो के गुणसक्रम द्वारा अतीव प्रभूत दल वाली होती है, इसलिये आठवे गुणस्थान मे बधविच्छेद होने के बाद एक आवलिका—बधावलिका का अतिक्रमण करके बध्यमान यश कीर्तिनाम मे इन बारह प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहा है तथा प्रथम सहनन तो सम्यग्दृष्टि मनुष्य को बधता नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि मनुष्य तो देवभवयोग्य प्रकृतियो का बध करता है, जिससे मनुष्यभव मे वह बध द्वारा पुष्ट नही होता

है तथा बध नही होने से उसमे अन्य किन्ही प्रकृतियो के दलिक सक्रमित भी नही होते है। अतएव यदि आठवे गुणस्थान मे वारह प्रकृतियो के साथ उसका उत्कृष्ट सक्रम कहा जाये तो वह घटित नही होता है। क्योकि देव मे से मनुष्य मे आकर जहाँ तक आठवे गुणस्थान मे बधविच्छेदस्थान तक नही पहुँचे, वहाँ तक वज्रऋषभ-नाराचसहनन को अन्य मे सक्रमित करने के द्वारा हीनदल वाला करेगा, जिससे वारह के साथ उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता है। इसीलिये देव से मनुष्य मे आकर आवलिका के वीतने के वाद उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहा है।

नरकद्विकादि का उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमस्वामित्व

नरयदुगस्स विछोभे पुव्वकोडीपुहुत्तनिचियस्स।
थावरउज्जोयायवएगिंदीणं नपु ससम ॥१००॥

शब्दार्थ—नरयदुगस्स—नरकद्विक का, विछोभे—चरम प्रक्षेप के समय, पुव्वकोडीपुहुत्तनिचियस्स—पूर्वकोटिपृथक्त्व पर्यन्त वाधे गये, थावरउज्जोयायवएगिंदीण—स्थावर, उद्योत, आतप और एकेन्द्रिय जाति का, नपु ससम—नपु सक वेद के समान।

गाथार्थ—पूर्वकोटिपृथक्त्व तक वाधे गये नरकद्विक का (नौवे गुणस्थान मे उसके) चरमप्रक्षेप के समय उत्कृष्ट प्रदेश-सक्रम होता है तथा स्थावर, उद्योत, आतपनाम और एकेन्द्रिय-जाति का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम नपु सकवेद की तरह जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले तिर्यंच के सात भवो मे वार-वार नरकगति, नरकानुपूर्वि रूप नरकद्विक का बध करे और आठवे भव मे मनुष्य होकर क्षपकश्रेणि पर आरूढ हो तो आरूढ हुए उस जीव के नरकद्विक को अन्यत्र सक्रमित करते जब चरम प्रक्षेप हो, तब सर्वसक्रम द्वारा उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। तथा—

स्थावरनाम, उद्योतनाम, आतपनाम और एकेन्द्रियजाति इन चार प्रकृतियो का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम नपु सकवेद की तरह होता है। नपु सकवेद का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम जिस तरह बताया गया है, उसी प्रकार इन चार प्रकृतियो का भी उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

मनुष्यद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

तेत्तीसयरा पालिय अतमुहुत्तूणगाइ सम्मत्त ।
बधित्तु सत्तमाओ निग्गम्म समए नरदुगस्स ॥१०१॥

शब्दार्थ—तेत्तीसयरा—तेतीस सागरोपम, पालिय—पालन करके, अतमुहुत्तूणगाइ—अन्तर्मु हूर्तन्यून, सम्मत्त—सम्यक्त्व को, बधित्तु—बाधकर, सत्तमाओ—सातवी नरकपृथ्वी से, निग्गम्म—निकलकर, समए—समय मे नरदुगस्स—मनुष्यद्विक का।

गाथार्थ—अन्तर्मुहूर्तन्यून तेतीस सागरोपमपर्यन्त सम्यक्त्व का पालन कर और उतने काल सम्यक्त्व के निमित्त से मनुष्यद्विक का बध कर सातवी नरकपृथ्वी से निकलकर तिर्यचभव मे जाये, तब उस तिर्यंचभव मे प्रथम समय मे ही मनुष्यद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है।

विशेषार्थ—सातवी नरकपृथ्वी का कोई नारक जीव पर्याप्त होने के बाद सम्यक्त्व प्राप्त करे और उसका अन्तर्मुहूर्तन्यून[1] तेतीस

---

1 यहाँ अन्तर्मुहूर्तन्यून कहने का कारण यह है कि सम्यक्त्व लेकर कोई जीव सातवी नरकभूमि मे जाता नही है और सम्यक्त्व लेकर सातवें नरक से अन्य गति मे भी नही जाता है। परन्तु पर्याप्त होने के बाद सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है और अतिम अन्तर्मुहूर्त मे उसका वमन कर देता है। जिससे आदि के और अत के इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त मिलकर एक बडे अन्तर्मुहूर्तन्यून तेतीस सागरोपम का सम्यक्त्व का काल सातवी नारकी मे सभव है।

सागरोपम पर्यन्त अनुभव करे। उतने काल वह सातवी नरकपृथ्वी का जीव सम्यक्त्व के प्रभाव से मनुष्यद्विक बाधे और बाधकर अपनी आयु के अतिम अन्तर्मुहूर्त मे मिथ्यात्व मे जाये, वहाँ मिथ्यात्व-निमित्तक तिर्यंचद्विक बाधता हुआ वह गुणितकर्माश सातवी नरक पृथ्वी का जीव वहाँ से निकलकर तिर्यंचगति मे जाये, वहाँ पहले ही समय मे बध्यमान तिर्यंचद्विक मे यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा मनुष्य-द्विक का सक्रमित करते हुए उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम करता है।

प्रश्न—सातवी नरकपृथ्वी मे सम्यक्त्वनिमित्तक मनुष्यद्विक को बाधकर अतिम अन्तर्मुहूर्त मे मिथ्यात्व मे जाकर मनुष्यद्विक की बधावलिका बीतने के बाद मिथ्यात्वनिमित्तक बधने वाले तिर्यंच-द्विक मे मनुष्यद्विक को सक्रमित करते उसका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम क्यो नही कहलाता है ? और अन्तर्मुहूर्त के बाद तिर्यंचगति मे जाकर उतने काल मनुष्यद्विक को अन्य मे सक्रम के द्वारा कुछ कम करके तिर्यंचभव के पहले समय मे तिर्यंचद्विक मे सक्रमित करते हुए उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम क्यो कहलाता है ?

उत्तर—सातवी नरकपृथ्वी मे मिथ्यात्वगुणस्थान मे भव-निमित्तक मनुष्यद्विक का बध नही होता है। जो प्रकृतिया भव या गुण निमित्तक बधती नही है, उनका विध्यातसक्रम होता है, यह बात पूर्व मे कही जा चुकी है। इसलिये सातवी नरकभूमि के नारक मे अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे विध्यातसक्रम द्वारा मनुष्यद्विक सक्रमित होगी और तिर्यंचभव के पहले समय मे यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित होगी। क्योकि तिर्यंचभव मे उसका बध है। विध्यातसक्रम द्वारा जो दलिक अन्य मे सक्रमित होता है, वह अत्यन्त अल्प और यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा जो सक्रमित होता है, वह अधिक—बहुत होता है। इसीलिये तिर्यंचभव मे पहले समय मे मनुष्यद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहा है।

तीर्थंकरनाम आदि का उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व

तित्थयराहाराण सुरगइनवगस्स थिरसुभाण च।
सुभधुवबधीण तहा सगबधा आलिग गंतु ॥१०२॥

शब्दार्थ—तित्थयराहाराण—तीर्थंकरनाम, आहारकसप्तक का, सुरगइनवगस्स—देवगतिनवक का, थिरसुभाण—स्थिर, शुभ का, च—और, सुभधुवबधीग—शुभ ध्रुवबधिनी प्रकृतियो का, तहा—तथा, सगबधा—अपने वध की, आलिग—आवलिका के, गतु—वीतने के बाद।

गाथार्थ—तीर्थंकरनाम, आहारकसप्तक, देवगतिनवक, स्थिर और शुभ तथा शुभ ध्रुवबधिनी प्रकृतियो का अपनी अतिम बधावलिका के बीतने के बाद उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—तीर्थंकरनाम, आहारकसप्तक, देवद्विक और वैक्रियसप्तक रूप देवगतिनवक, स्थिर, शुभ और नामकर्म की ध्रुवबधिनी पुण्य प्रकृति—तैजससप्तक, शुक्ल-रक्त-हारिद्रवर्ण, सुरभिगध, कषाय-आम्ल-मधुररस, मृदु-लघु-स्निग्ध और उष्णस्पर्श, अगुरुलघु, निर्माण कुल मिलाकर उनचालीस प्रकृतियो का पराघात आदि की तरह चार वार मोह का उपशम करने वाले के अत में बधविच्छेद होने के पश्चात् अपनी बधावलिका के बीतने के अनन्तर यश कीर्ति में सक्रमित करते उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। जिसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

आहारकसप्तक और तीर्थंकरनामकर्म को उनका अधिक-से अधिक जितना वधकाल हो, उतने काल बाधे। आहारकसप्तक का उत्कृष्ट वधकाल देशोन पूर्वकोटि पर्यन्त सयम का पालन करते जितनी वार अप्रमत्तसयतगुणस्थान में जाये उतना और तीर्थंकरनामकर्म का उत्कृष्ट वधकाल देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम जानना चाहिये। इतना काल वध द्वारा और अन्य प्रकृति के सक्रम द्वारा पुष्ट दल वाला करे, फिर पुष्ट दल वाला करके क्षपकश्रेणि पर आरुढ हो और क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुआ वह जीव जव आठवे गुणस्थान मे वधविच्छेद होने के वाद आवलिका मात्र काल वीतने पर यश कीर्ति में सक्रमित करे तव उनका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है।

शुभ ध्रुवबंधिनी स्थिर और शुभ, कुल मिलाकर बाईस प्रकृतियो का चार बार मोहनीय का सर्वोपशम करने के बाद बध-विच्छेद होने के अनन्तर आवलिका को उलाघने कर यश कीर्ति मे सक्रमित करते उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। गुणसक्रम द्वारा सक्रमित दलिक आवलिका जाने के बाद ही सक्रमयोग्य होते है अन्यथा नही होते हैं, इसीलिये बधविच्छेद के बाद आवलिका बीतने के अनन्तर उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम कहा है।

देवद्विक और वैक्रियसप्तक को मनुष्य-तिर्यंचभव मे पूर्वकोटि-पृथक्त्व काल तक बध करे और बध करके आठवे भव मे क्षपक-श्रेणि पर आरूढ हो तो क्षपकश्रेणि मे उक्त प्रकृतियो का बधविच्छेद होने के बाद आवलिका का अतिक्रमण करके यश कीर्ति मे सक्रमित करते उनका उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम होता है। उस समय अन्य प्रकृतियो के गुणसक्रम द्वारा सक्रमित दलिको की सक्रमावलिका व्यतीत हो चुकी होने से उत्कृष्ट प्रदेशसक्रम सभव है।

इस प्रकार उत्कृष्ट प्रदेशसक्रमस्वामित्व की प्ररूपणा जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व का निर्देश करते है। जघन्य प्रदेशसक्रम का स्वामी क्षपितकर्मांश जीव होता है। अतएव सर्वप्रथम क्षपितकर्मांश का स्वरूप कहते हैं।

क्षपितकर्मांश का स्वरूप

सुहुमेसु निगोएसु कम्मठिति पलियऽसखभागूण।
वसिउं मंदकसाओ जहन्न जोगो उ जो एइ ॥१०३॥

जोग्गेसु तो तसेसु सम्मत्तमसंखवार सपप्प।
देसविरइ च सव्वं अण उव्वलग च अडवारा ॥१०४॥

चउरुवसमित्तु मोह लहुं खवेंतो भवे खवियकम्मो।
पाएण तेण पगय पडुच्च काओ वि सविसेस ॥१०५॥

शब्दार्थ—सुहुमेसु—सूक्ष्म, निगोएसु—निगोद मे, कम्मठिति—कर्मस्थिति, पलियऽसखभागूण—पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून, वसिउ—रहकर, मदकसाओ—मद कषाय, जहन्नजोगो—जघन्य योग, उ—और, जो—उनसे, एइ—युक्त, सहित रहकर ।

जोग्गेसु—योग्य, तो—उसके बाद, तसेसु—त्रस भव मे, सम्मत्तमसखवार—असख्यात बार सम्यक्त्व को, लद्धुं—प्राप्त करके, देसविरइ—देशविरति को, च—और, सव्व—सर्वविरति को, अण—अनन्तानुबधि की, उव्वलण—उद्वलना-विसयोजना, च—तथा, अट्ठवारा—आठ बार ।

चउरुवसमित्तु—चार बार उपशमना करके, मोह—मोहनीय की, लहु—शीघ्र, खवेंतो—क्षय करने, भवे—होता है, खवियकम्मो—क्षपितकर्माश, पाएण—प्राय, तेण—उसका, पगय—प्रकृत मे, पडुच्च—सम्बन्ध मे, काओ वि—कितनी ही, सविसेस—विशेष ।

गाथार्थ—सूक्ष्मनिगोद मे पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून कर्मस्थिति (सत्तर कोडाकोडी सागरोपम) पर्यन्त मदकषाय और जघन्ययोग युक्त रहकर—

सम्यक्त्वादि के योग्य त्रस भव में उत्पन्न हो और वहाँ उत्पन्न होकर असख्य वार सम्यक्त्व, कुछ कम उतनी बार देशविरतिचारित्र, आठ वार सर्वविरति, आठ बार अनन्तानुबधि की विसयोजना तथा—

चार बार (चारित्र) मोहनीय की उपशमना कर शीघ्र क्षय करने के लिये उद्यत ऐसा क्षपकश्रेणि पर आरोहण करता हुआ जीव क्षपितकर्मांश कहलाता है। प्रकृत मे—जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व के विपय मे उस जीव का अधिकार है। फिर भी कितनी ही प्रकृतियो के सम्बन्ध मे जो विशेप है, उसको यथावसर स्पष्ट किया जायेगा।

विशेपार्थ—कोई एक जीव सूक्ष्म अनन्तकाय जीवो मे पल्योपम

के असख्यातवे भाग न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम पर्यन्त रहे। इतने काल वहाँ रहने का कारण यह है—

सूक्ष्म निगोदिया जीव अल्प आयु वाले होते है, जिससे उन्हे बहुत जन्म-मरण होते है। बहुत जन्म-मरण होने से वेदना से अभिभूत उनको अधिक परिमाण मे पुद्गलो का क्षय होता है। क्योकि असातावेदनीय के उदय वाले दु खी जीव के अधिक पुद्गलो का क्षय और सातावेदनीय के उदय वाले सुखी जीव के पुद्गलो का क्षय अल्प प्रमाण मे होता है। अत अनेक जन्म-मरण करने वाले के जन्म-मरण-जन्य दु ख बहुत होता है, इसीलिए सूक्ष्म निगोद जीव का ग्रहण किया है।

सूक्ष्म निगोद मे किस प्रकार रहे, अब उसको बतलाते है कि मद कषाय वाला शेष निगोदिया जीवो की अपेक्षा अल्प कषाय वाला होता है, क्योकि मद कषाय वाला जीव अल्प स्थिति बध करता है और उद्वर्तना भी अल्प स्थिति की करता है तथा मद योग वाला यानि अन्य निगोद जीवो की अपेक्षा इन्द्रियजन्य अल्प वीर्य वाला होता है। क्योकि अल्प वीर्य व्यापार वाला जीव नवीन कर्म पुद्गलो का गहण बहुत अल्न प्रमाण मे करता है और यहाँ क्षपितकर्माश के अधिकार मे इसी पकार के अल्प कषाय एव अल्प वीर्य व्यापार वाले सूक्ष्म निगोद जीव का ही प्रयोजन होने से अल्प कषायी और अल्प योगी सूक्ष्म निगोद जीव का ग्रहण किया है।

इस प्रकार का मद कषायी और जघन्य योग वाला सूक्ष्म निगोद जीव अभव्यप्रायोग्य जघन्यप्रदेश सचय करके वहाँ से निकल सम्यक्त्व, देशविरत और सर्वविरत के योग्य त्रस मे उत्पन्न हो। वहाँ उत्पन्न होकर सख्यातीत–असख्यात बार सम्यक्त्व और कुछ न्यून उतनी बार देशविरति प्राप्त करे।

जिस त्रस भव मे सम्यक्त्वादि प्राप्त हो, वैसे त्रस भवो मे किस प्रकार उत्पन्न हो और वहाँ सम्यक्त्व आदि किस प्रकार प्राप्त करे ?

तो इसको स्पष्ट करते है—सूक्ष्म निगोद मे से निकलकर अन्तर्मुहूर्त आयु के बाद पृथ्वीकाय मे उत्पन्न हो, अन्तर्मुहूर्त आयु पूर्ण कर वहाँ से निकलकर पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले मनुष्य मे उत्पन्न हो, मनुष्य मे उत्पन्न हो गर्भ मे मात्र सात मास रह कर जन्म धारण करे और आठ वर्ष की उम्र वाला होता हुआ चारित्र अगीकार करे, देशोन पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त चारित्र का पालन कर अल्प आयु—अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तव मिथ्यात्व मे जाये, मिथ्यात्वी रहते काल करके दस हजार वर्ष की आयु वाले देवो मे देवरूप से उत्पन्न हो, वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल बीतने के बाद पर्याप्तावस्था मे सम्यक्त्व प्राप्त करे, देवभव मे दस हजार वर्ष रहकर और उतने काल सम्यक्त्व पालकर अत मे—अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तव मिथ्यात्व मे जाकर वहाँ वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु बाधकर मरण को प्राप्त हो, वादर पृथ्वीकाय मे उत्पन्न हो, अन्तर्मुहूर्त काल वहाँ रहकर फिर मनुष्य हो और पुन भी सम्यक्त्व या देशविरति प्राप्त करे। इस प्रकार देव और मनुष्य के भव मे सम्यक्त्व आदि को प्राप्त करता और छोडता वहाँ तक कहना चाहिये यावत् पल्योपम के असख्यातवें भाग जितने काल मे सख्यातीत वार सम्यक्त्व और उससे कुछ कम देशविरति का लाभ हो।

यहाँ जव-जव सम्यक्त्वादि की प्राप्ति हो तव-तव वहुप्रदेश वाली प्रकृतियो को अल्पप्रदेश वाली करता है—इसी वात का सकेत करने के लिये अनेक वार सम्यक्त्वादि को प्राप्त करे यह कहा है तथा सम्यक्त्वादि के योग्य त्रसभवो मे आठ वार सर्वविरति प्राप्त करता है और उतनी ही वार अनन्तानुवधिकषाय का उद्वलन करता है। क्योकि ससार मे परिभ्रमण करता भव्य जीव असख्य वार क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, कुछ न्यून उतनी वार देशविरति चारित्र, आठ वार सर्वविरति चारित्र और उतनी ही वार अनन्तानुवधिकषाय की विसयोजना कर सकता है, तथा—

चार बार चारित्रमोहनीय को सर्वथा उपशात करके उसके बाद के भव में शीघ्र क्षपकश्रेणि पर आरूढ होकर कर्मों का क्षय करता जीव क्षपितकर्मांश—अत्यन्त अल्प कर्मप्रदेशो की सत्ता वाला कहलाता है।

इस प्रकार के क्षपितकर्मांश जीव का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व के विचार में प्राय बहुलता से अधिकार है। क्योंकि ऐसे जीव को सत्ता में अत्यल्प कर्मप्रदेश होते है, जिससे सक्रम भी अल्प ही होता है। कतिपय प्रकृतियो के विषय में विशेष है, जिसका सकेत यथावसर किया जायेगा।

इस प्रकार से क्षपितकर्मांश जीव का स्वरूप जानना चाहिये। अब जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व का निरूपण प्रारम्भ करते हैं।

हास्यादि एवं मतिज्ञानावरणादि का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

हासदुभयकुच्छाण खीणंताण च बधचरिमम्मि।
समए अहापवत्तेण ओहिजुयले अणोहिस्स ॥१०६॥

शब्दार्थ—हासदुभयकुच्छाण—हास्यद्विक, भय और जुगुप्सा का, खीणताण—क्षीणमोहगुणस्थान मे नाश होने वाली, च—और, बधचरिमम्मि—बध के चरम, समए—समय मे, अहापवत्तेण—यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा, ओहिजुयले—अवधिद्विक का, अणोहिस्स—अवधिज्ञानविहीन।

गाथार्थ—हास्यद्विक, भय, जुगुप्सा और क्षीणमोहगुणस्थान में नाश होने वाली प्रकृतियो का अपने बध के चरम समय में यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। उसमें से अवधिद्विक का अवधिज्ञानविहीन जीव के जघन्य प्रदेशसक्रम जानना चाहिये।

विशेषार्थ—हास्यद्विक—हास्य और रति, भय, जुगुप्सा तथा बारहवे क्षीणमोहगुणस्थान में जिन प्रकृतियो का सत्ता मे से विच्छेद होता है ऐसी अवधिज्ञानावरण रहित ज्ञानावरणचतुष्क, अवधि-

दर्शनावरण रहित दर्शनावरणत्रिक, निद्राद्विक और अतरायपचक, कुल मिलाकर अठारह प्रकृतियो का अपने बध के चरम समय में यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करते हुए जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण का भी अपने बधविच्छेद के समय ही जघन्य प्रदेशसक्रम होता है, परन्तु वह अवधिज्ञानविहीन जीव के होता है। इसका तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान जिसको उत्पन्न हुआ है, वैसे जीव के अवधिज्ञानावरण रहित ज्ञानावरणचतुष्क और अवधिदर्शनावरण रहित दर्शनावरणत्रिक इन सात प्रकृतियो का अपने-अपने बधविच्छेद के समय क्षपितकर्मांश जीव के जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

अवधिज्ञान उत्पन्न करता जीव बहुत कर्मपुद्गलो को तथास्वभाव से क्षय करता है, जिससे उपर्युक्त प्रकृतियो के अपने बधविच्छेद के समय सत्ता मे अल्प पुद्गल ही रहते है। इसी कारण जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। यहाँ जघन्य प्रदेशसक्रम का अधिकार है, इसलिये अवधिज्ञानयुक्त जीव को जघन्य प्रदेशसक्रम का अधिकारी कहा है। बधविच्छेद होने के बाद पतद्ग्रह नही होने से सक्रम होता ही नही है, इसलिये बधविच्छेद समय ग्रहण किया है।

निद्राद्विक, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा का भी अपने बधविच्छेद के समय जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। क्योकि बधविच्छेद होने के बाद उनका गुणसक्रम द्वारा सक्रम होता है। आठवें गुणस्थान मे बधविच्छेद होने के बाद अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम होता है, यह पूर्व मे कहा जा चुका है और गुणसक्रम द्वारा अधिक पुद्गल सक्रमित होते हैं, इसीलिये यह कहा हैं कि बधविच्छेद के समय यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करते जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

अतरायपचक का भी अपने बधविच्छेद के समय जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। क्योकि बधविच्छेद होने के बाद तो कोई पतद्ग्र

प्रकृति नही होने से सक्रम ही नही होता है, इसीलिये यह कहा गया है कि बध के चरम समय में जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

जिनके अवधिज्ञान और अवधिदर्शन उत्पन्न नही हुआ होता है, वैसे जीव के अवधिज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण का अपने बध के चरम समय मे जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। इसका कारण यह है कि अवधिज्ञान-दर्शन उत्पन्न करते प्रबल क्षयोपशम के सद्भाव से अवधिज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण के पुद्गल अतिरूक्ष-अति नि स्नेह होते है और इसी कारण बधविच्छेद के काल मे भी सत्ता मे अधिक रह जाने से उनके अधिक पुद्गलो का क्षय होता है और उससे जघन्य प्रदेशसक्रम नही होता है। इसी कारण यह कहा है कि अवधिज्ञान विहीन जीव के अवधिज्ञानदर्शनावरण का जघन्य प्रदेश-सक्रम होता है।

स्त्यानर्द्धित्रिक आदि का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

थीणतिगइत्थिमिच्छाण पालिय बेछसट्ठि सम्मत्तं।
सगखवणाए जहन्नो अहापवत्तस्स चरमंमि ॥१०७॥

शब्दार्थ—थीणतिगइत्थिमिच्छाण—स्त्यानर्द्धित्रिक, स्त्रीवेद और मिथ्यात्व मोहनीय का, पालिय—पालन करके, बेछसट्ठि—दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त, सम्मत्त—सम्यक्त्व को, सगखवणाए—अपनी क्षपणा मे, जहन्नो—जघन्य, अहापवत्तस्स—यथाप्रवृत्तसक्रम के, चरमंमि—चरम समय मे।

गाथार्थ—दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त सम्यक्त्व का पालन कर अपनी क्षपणा के समय यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय में स्त्यानर्द्धित्रिक, स्त्रीवेद और मिथ्यात्वमोहनीय का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—दो छियासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपम पर्यन्त सम्यक्त्व का पालन करके और उतने काल पर्यन्त सम्यक्त्व के प्रभाव से अधिक दलिको को दूर कर—क्षय कर अल्प शेष रहे तब उन प्रकृतियो की क्षपणा करने के लिये तत्पर हुए जीव के अपने-अपने यथाप्रवृत्तकरण के अत समय मे विध्यातसक्रम द्वारा

सक्रमित-करते स्त्यानर्द्धित्रिक, स्त्रीवेद और मिथ्यात्वमोहनीय-का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

अपूर्वकरण मे गुणसक्रम सभव होने से जघन्य प्रदेशसक्रम नही होता है। उसमे भी क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुए जीव के स्त्यानर्द्धित्रिक और स्त्रीवेद का अप्रमत्तसयतगुणस्थान के चरम समय मे जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। क्योकि श्रेणि पर आरूढ होने वाले के सातवा गुणस्थान ही यथाप्रवृत्तकरण माना जाता है। आठवे गुणस्थान से अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम प्रवर्तित होने से जघन्य प्रदेशसक्रम नही हो सकता है, इसीलिये अप्रमत्त-यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे विध्यातसक्रम द्वारा सक्रमित करते जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।[1] तथा—

क्षायिकसम्यक्त्व का उपार्जन करते जिनकालिक प्रथम सहनन वाले चौथे से सातवे गुणस्थान तक मे वर्तमान मनुष्य के दर्शनत्रिक का क्षय करने के लिये किये गये तीन करण मे के यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे विध्यातसक्रम द्वारा सक्रमित करते मिथ्यात्व-मोहनीय का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। अपूर्वकरण मे गुणसक्रम प्रवर्तित होने से यथाप्रवृत्तकरण का चरम समय ग्रहण किया है।

१ यद्यपि उपर्युक्त प्रकृतियो का यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करते अपने-अपने यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे जघन्य प्रदेशसक्रम होता है, ऐसा ग्रन्थकार आचार्य ने अपनी स्वोपज्ञवृत्ति मे स्पष्ट किया है। परन्तु गुण या भव के निमित्त से जो प्रकृतिया बधती नही, उनका विध्यात-सक्रम इसी ग्रन्थ मे पहले कहा है, यथाप्रवृत्तसक्रम नही। गुणनिमित्त से उपर्युक्त प्रकृतियो का अबध तीसरे गुणस्थान से हुआ है, इसलिये उनका विध्यातसक्रम होना चाहिये, यथाप्रवृत्तसक्रम नही। इसी कारण मलयगिरि-सूरि ने विध्यातसक्रम द्वारा सक्रमित करते जघन्य प्रदेशसक्रम होता है, यह इस गाथा की टीका मे कहा है। तत्त्व केवलीगम्य है। विद्वज्जन इसको स्पष्ट करने की कृपा करें।

देशोन पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त चारित्र का पालन करके, क्षपकश्रेणि पर आरूढ जीव के यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे विध्यातसक्रम द्वारा सक्रमित करते मध्यम आठ कषायो[1] का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

मिश्रमोहनीय आदि का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

हस्सगुणद्धं पूरिय सम्मं मीस च धरिय उक्कोस।
काल मिच्छत्तगए चिरउव्वलगस्स चरिमम्मि ॥१०९॥

शब्दार्थ—हस्सगुणद्ध—गुणसक्रम के अल्प काल द्वारा, पूरिय—पूरित कर, सम्म—सम्यक्त्व, मीस—मिश्रमोहनीय, च—और, धरिय उक्कोस काल—उत्कृष्ट काल पर्यन्त पालन कर, मिच्छत्तगए—मिथ्यात्व मे गये हुए के, चिरउव्वलगस्स—चिर उद्वलक के, चरिमे—चरम समय मे।

गाथार्थ—सम्यक्त्व उत्पन्न करके गुणसक्रम के अल्पकाल द्वारा सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय को पूरित कर और उत्कृष्ट काल पर्यन्त पालन कर मिथ्यात्व में गये चिर उद्वलक के द्विचरम खड के चरम समय मे उनका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व उत्पन्न करके अल्पकाल पर्यन्त[2] गुणसक्रम

---

१ ग्रन्थकार ने अपनी वृत्ति मे उक्त चौबीस प्रकृतियो के लिये पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त चारित्र का पालन कर क्षपकश्रेणि पर आरूढ होने वाले के यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित करते जघन्य प्रदेशसक्रम कहा है। तत्पश्चात् होने वाले अपूर्वकरण मे तो गुणसक्रम प्रवर्तित होने से जघन्य प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता है। तत्त्व केवलिगम्य है।

२ सम्यक्त्व उत्पन्न करके तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त तक प्रवर्धमान परिणाम वाला रहता है, जिसमें उतने काल मिथ्यात्व के दलिको को मिश्र और सम्यक्त्व मे तथा मिश्र के सम्यक्त्व मे गुणसक्रम द्वारा सक्रमित करता है। यहाँ जितना अल्प काल हो सके उतना काल लेना है। क्योंकि यहाँ जघन्य प्रदेशसक्रम का विचार किया जा रहा है।

पालकर अत मे अनन्तानुबधि की विसयोजना करते यथाप्रवृत्त-करण के चरम समय मे उनका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—चार बार मोहनीय कर्म की सर्वोपशमना करे, क्योकि चार वार मोहनीय की उपशमना करने से अधिक कर्म पुद्गलो का क्षय होता है और वह इस प्रकार कि चारित्रमोहनीय प्रकृतियो की उपशमना करने वाला स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि और गुण-सक्रम द्वारा अधिक पुद्गलो का नाश करता है। इसीलिये चार वार मोहनीय का सर्वोपशम करने का सकेत किया है। इसके बाद अर्थात् चार बार मोहनीय की सर्वोपशमना करके मिथ्यात्व में जाये, वहाँ अल्पकाल पर्यन्त अनन्तानुबधि का बध करे। यहाँ जब अनन्तानुबधि बाधता है तव चारित्रमोहनीय का दलिक सत्ता मे अल्प ही होता है। क्योकि चार वार मोहनीय के सर्वोपशमनाकाल मे स्थितिघात आदि के द्वारा क्षय किया है, जिससे अनन्तानुबधि को बाधते उसमे यथाप्रवृत्तसक्रम द्वारा अत्यन्त अल्प चारित्रमोहनीय के दलिक को सक्रमित करता है। फिर अन्तर्मुहूर्त बीतने के वाद पुन सम्यक्त्व प्राप्त करे और उसे दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त पालन कर अनन्तानुवधि कपाय की क्षपणा करने के लिये प्रयत्नशील के अपने यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे विध्यातसक्रम द्वारा सक्रमित करते उसका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। अपूर्वकरण मे तो गुणसंक्रम होने से जघन्य प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता, यहाँ अनन्तानुबधि की विसयोजना करने के लिये जो तीन करण होते हैं, उनमे का पहला यथाप्रवृत्तकरण लेना चाहिये।

आहारकद्विक, तीर्थंकर नाम का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

हस्स काल बधिय विरओ आहारमविरइ गतु ।
चिरओव्वलणे थोवो तित्थ बधालिगा परओ ॥१११॥

शब्दार्थ—हस्स काल—अल्पकाल पर्यन्त, बधिय—बाधकर, विरओ—अप्रमत्तयिग्न, आहारमविरइ गतु—आहारकद्विक को अविरत मे जाकर,

चिरओव्वलणे—चिर उद्वलना द्वारा, थोवो—जघन्य, तित्थ—तीर्थंकरनाम, बधालिगा—बधावलिका, परओ—बीतने के बाद।

गाथार्थ—अल्पकाल पर्यन्त अप्रमत्तसयत हो आहारकद्विक को बाधकर अविरत मे जाकर चिरउद्वलना द्वारा उद्वलना करते उसका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है और तीर्थंकरनाम का बधावलिका के बीतने के बाद जघन्य प्रदेशसक्रम जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अल्पकाल पर्यन्त अप्रमत्तसयत रहते आहारकद्विक को बाधकर अर्थात् कम-से-कम जितना अप्रमत्तसयत का काल हो सकता है, उतने काल पर्यन्त आहारकद्विक (आहारकसप्तक) को बाधकर कर्मोदयवशात् अविरत-अवस्था प्राप्त हो जाये तो उस अविरत-अवस्था मे अन्तर्मुहूर्त काल जाने के बाद उस आहारकद्विक को चिर उद्वलना—पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाणकाल मे होती उद्वलना—द्वारा उद्वलित करना प्रारभ करे और उस उद्वलित करते कम से कम जो सक्रम हो, वह उसका जघन्य प्रदेशसक्रम कहलाता है, अर्थात् द्विचरमखड को उद्वलित करते चरम समय मे उसका जो कर्मदलिक पर प्रकृति मे सक्रमित हो, वह आहारकद्विक का जघन्य पदेशसक्रम कहलाता है।

यहां विशेपरूप से उद्वलनासक्रम का स्वरूप ध्यान मे रखना चाहिये। पल्योपम के असरयातवे भाग प्रमाण खड को ले-लेकर स्व और पर मे सक्रमित करके अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त मे निर्मूल किया जाता है। उत्तरोत्तर समय मे स्व की अपेक्षा पर मे अल्प सक्रमित किया जाता है और पर से स्व मे असख्यातगुण। प्रत्येक खड को इस प्रकार से सक्रमित करते द्विचरमखड को अपने सक्रमकाल के अन्तर्मुहूर्त के अतिम समय मे पर मे जो सक्रमित किया जाता है वह उसका जघन्य प्रदेशसक्रम कहलाता है। चरम खड को तो पूर्व-पूर्व से उत्तरोत्तर समय मे असख्यात-असख्यात गुण पर में सक्रमित किया जाता है, जिससे वहा जघन्य प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता।

है। इसीलिये द्विचरमखड को ग्रहण किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

तीर्थंकर नामकर्म को बाधते पहले समय जो दलिक बाधा है, उस पहले समय के दलिक को बधावलिका के जाने के बाद यथाप्रवृत्त-सक्रम के द्वारा पर प्रकृतियो मे जो सक्रमित किया जाता है, वह तीर्थंकरनाम का जघन्य प्रदेशसक्रम जानना चाहिये। अर्थात् तीर्थंकर नाम के बध के पहले समय जो दलिक बाधा हो, वही शुद्ध एक समय का बाधा हुआ दलिक बधावलिका के जाने के बाद सक्रमित हो, वह उसका जघन्य प्रदेशसक्रम है। तीर्थंकरनाम की उद्वलना नही होती है कि जिससे आहारक की तरह द्विचरम खड का चरम समय मे जो पर में सक्रमण हो, उसे जघन्य प्रदेशसक्रम के रूप में कहा जा सके तथा दूसरे अनेक समयो मे बधे हुए को ग्रहण करने से सत्ता में अधिक दलिक होने के कारण प्रमाण बढ जाता है और जब उनका सक्रम होगा, तब यथाप्रवृत्तसक्रम ही होगा। इसीलिये तीर्थंकर नामकर्म के प्रारभ के बध समय जो बाधा उसकी बधावलिका पूर्ण होते ही बाद के समय मे जो पहले समय बाधा उसी दल को यथा-प्रवृत्तसक्रम द्वारा सक्रमित होने पर जघन्य प्रदेशसक्रम होता है, यह कहा है।

वैक्रिय एकादश आदि का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

> वेउव्वेक्कारसग उव्वलिय बधिऊण अप्पद्धं।
> जेट्ठट्ठितिनरयाओ उव्वट्टित्ता अबधित्ता ॥११२॥
> थावरगसमुव्वलणे मणुदुगउच्चाण सहुमबद्धाणं।
> एमेव समुव्वलणे तेउवाउसुवगयस्स ॥११३॥

शब्दार्थ—वेउव्वेक्कारसग—वैक्रिय एकादशक की, उव्वलिय—उद्वलना करके, बधिऊण—बाधकर, अप्पद्ध—अल्पकाल, जेट्ठट्ठितिनरयाओ—उत्कृष्ट स्थिति वाले नरक से, उव्वट्टित्ता—निकलकर, अबधित्ता—विना बाधे।

थावरगसमुव्वलणे—स्थावर मे जाकर उद्वलना करने पर, **मणुदुग-उच्चाण**—मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र का, **सुहुमबद्धाण**—सूक्ष्म एकेन्द्रिय मे बधे हुए, **एमेव**—इसी प्रकार, **समुव्वलणे**—उद्वलना करते, **तेउवाउसुवगयस्स**—तेजस्काय और वायुकाय मे गये हुए जीव के।

गाथार्थ—सत्तागत वैक्रिय एकादशक की उद्वलना करके बध योग्य भव में अल्पकाल पर्यन्त बाधकर जेष्ठ स्थिति वाले नरक में जाकर और फिर वहाँ से तिर्यंच मे जाये, वहाँ बिना बाधे स्थावर में जाकर उद्वलना करते द्विचरमखड का चरम समय मे जो दल पर में सक्रमित किया जाता है, वह वैक्रिय एकादशक का जघन्य प्रदेशसक्रम कहलाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय में बधे हुए मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र की उद्वलना करते तेजस्काय, वायुकाय में गये हुए जीव के उनका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

विशेषार्थ—जिस समय वैक्रिय शरीर आदि ग्यारह प्रकृतियो के जघन्यप्रदेश सक्रम का विचार किया जाता है, उससे पूर्व कालभेद से अनेक समय में बधे हुए देवद्विक, नरकद्विक और वैक्रियसप्तक का जो दल सत्ता मे विद्यमान है, उसको एकेन्द्रिय में जाकर उद्वलना-सक्रम की विधि से उद्वलित कर देता है। उद्वलित करने का कारण यह है कि काल भेद से अनेक समय में बाधे गये अधिक दलिक सत्ता मे होने के कारण प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता है।

इस प्रकार से उद्वलित करके पचेन्द्रिय में जाकर अल्प काल पर्यन्त बध करे, बाधकर तेतीस सागरोपम की स्थिति वाली सातवी नरकपृथ्वी में नारक रूप[1] से उत्पन्न हो, वहाँ उतने काल यथायोग्य रीति से वैक्रिय एकादश का अनुभव कर और फिर वहाँ से निकलकर

---

१ यद्यपि अनुत्तर विमान की भी तेतीस सागरोपम आयु है, परन्तु वहाँ जाकर बाद मे एकेन्द्रिय मे उत्पन्न नही होता है, इसीलिये सातवी नरक-पृथ्वी के नारक का ग्रहण किया है।

सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो, वहाँ वैक्रिय एकादश को बिना बाधे ही एकेन्द्रिय मे उत्पन्न हो और उस एकेन्द्रिय के भव मे पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल मे होती उद्वलना के द्वारा वैक्रिय एकादश को उद्वलित करते द्विचरमखड का चरम समय मे जो दलिक पर प्रकृति मे सक्रमित किया जाता है, वह उसका जघन्य प्रदेशसक्रम जानना चाहिये।

इसी प्रकार कालभेद से अनेक समय का बधा हुआ उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का जो दल सत्ता में हो, उसे तेज और वायु के भव मे उद्वलित कर दिया जाये और उसके बाद पुन मनुष्यद्विक आदि के बध योग्य सूक्ष्म एकेन्द्रिय के भव मे जाकर अन्तर्मुहूर्त बाधे, वहाँ से निकलकर पचेन्द्रिय भव में जाकर सातवी नरकपृथ्वी मे जाने योग्य कर्म बध कर सातवी नरक पृथ्वी में उत्कृष्ट आयु वाला नारक हो, वहाँ से निकलकर सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो। इतने काल पर्यन्त उन तीन प्रकृतियो का बध नही करे और प्रदेशसक्रम द्वारा अनुभव कर कम करे।[1] इसके बाद उस पचेन्द्रिय के भव में से निकल कर तेज और वायुकाय में उत्पन्न हो, वहाँ मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र को चिरोद्वलना—पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल में होती उद्वलना—द्वारा उद्वलना करते द्विचरमखड का चरम समय में जो दलिक पर मे सक्रमित किया जाता है, वह उनका जघन्य प्रदेश, सक्रम कहलाता है।[2]

---

१ यद्यपि जिस भव मे नरकयोग्य आयु बाधे और नरक मे से निकलकर जाता है, वे दोनो भव उपर्युक्त तीनो प्रकृतियो के बधयोग्य हैं। परन्तु यहाँ जघन्य प्रदेशसक्रम का अधिकार होने से ऐसा जीव लेना है, जो उस बधयोग्य भव मे बध नही करे। इसीलिये बाधे नही और प्रदेश सक्रम द्वारा अनुभव कर कम करे यह कहा है।

२ सत्ता मे से निकालकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय मे जाकर बाधने के बाद अन्य किसी स्थान पर बाधता नही और कम तो करता है, जिससे 'सत्ता मे अल्प भाग रह जाता है। इसी कारण तेज और वायुकाय में उद्वलना करने पर जघन्य प्रदेशसक्रम घटित हो सकता है।

सातावेदनीय एव शुभ पंतीस प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशसंक्रम-स्वामित्व

अणुवसमित्ता मोह् सायस्स असायअतिमे बधे।

पणतीसा य सुभाण अपुव्वकरणालिगा अते ॥११४॥

शब्दार्थ—अणुवसमित्ता—उपशम न करके, मोहं—मोहनीय का, सायस्स—सातावेदनीय का, असायअतिमे बधे—असाता के अतिम बध मे, पणतीसा—पैंतीस, य—और, सुभाण—शुभ प्रकृतियो का, अपुव्वकरणालिगा अते—अपूर्वकरण की आवलिका के अत मे।

गाथार्थ—मोहनीय का उपशम न करके असाता के अतिम बध मे सातावेदनीय का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। पैंतीस शुभ प्रकृतियो का जघन्य प्रदेशसक्रम अपूर्वकरण की आवलिका के अत में होता है।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म का उपशम न करके अर्थात् उपशमश्रेणि किये बिना असातावेदनीयकर्म के बध मे जो अतिम बध, उस अतिम बध का जो अतिम समय–छठे प्रमत्तसयतगुणस्थान का अतिम समय, उस अतिम समय मे वर्तमान क्षपकश्रेणि पर आरूढ होने के लिये उद्यत जीव के असातावेदनीय मे सातावेदनीय को सक्रमित करते साता का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। सातवे अप्रमत्तविरत-गुणस्थान के प्रथम समय से साता का ही बध होने से सातावेदनीय पतद्ग्रह प्रकृति हो जाने के कारण वह सक्रमित नही होती है, परन्तु असाता साता मे सक्रमित होती है। यहाँ उपशमश्रेणि के निषेध करने का कारण यह है कि उपशमश्रेणि मे असातावेदनीय के अधिक पुद्गल साता मे सक्रमित होने से सातावेदनीय अधिक प्रदेश वाली होती है और वैसा होने पर उसका जघन्य प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता है। तथा—

पचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसस्थान, तैजससप्तक, प्रशस्तविहायोगति, शुक्ल, लोहित और हारिद्र वर्ण, सुरभिगध, कषाय आम्ल

और मधुर रस, मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण स्पर्श, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, त्रसदशक तथा निर्माण इन पैंतीस प्रकृतियो का उपशमश्रेणि न करके शेष क्षपितकर्माशविधि द्वारा जघन्य प्रदेशप्रमाण करके क्षय करने के लिये प्रयत्नशील क्षपितकर्माश जीव के अपूर्वकरण की प्रथम आवलिका के अत समय मे जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। प्रथमावलिका पूर्ण होने के बाद तो अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से अशुभ प्रकृतियो के गुणसक्रम द्वारा प्राप्त हुए अत्यधिक दलिक की सक्रमावलिका पूर्ण होने के कारण उस दलिक का भी सक्रम सभव होने से जघन्य प्रदेशसक्रम घटित नही हो सकता है। इसीलिये यहाँ अपूर्वकरण की प्रथम आवलिका का चरम समय ग्रहण करने का सकेत किया है तथा उपशमश्रेणि के निषेध करने का कारण यह है कि उपशमश्रेणि मे उपर्युक्त पैंतीस प्रकृतिया शुभ होने से उनमे गुणसक्रम द्वारा अशुभ प्रकृतियो के अधिक दलिक सक्रमित होते है, जिससे उनका जघन्य प्रदेशसक्रम नही हो सकता है तथा उपशमश्रेणि के सिवाय की क्षपितकर्माश होने के योग्य अन्य क्रिया द्वारा जघन्य प्रदेशाग्रसत्ता मे जघन्य प्रदेश का सचय करके क्षपकश्रेणि पर आरूढ होने वाले जीव के अपने बधविच्छेद के समय वज्रऋषभनाराचसहनन का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। यहाँ भी उपशमश्रेणि के निषेध का कारण पूर्ववत् जानना चाहिये। चौथे गुणस्थान तक ही प्रथम सहनननामकर्म बधता है, जिससे क्षपकश्रेणि पर चढते मनुष्य को उस गुणस्थान के चरम समय मे प्रथम सहनन का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।[1]

तिर्यंचद्विक, उद्योतनाम का जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व

> तेवट्ठ उदहिसय गेविज्जाणुत्तरे सऽबधित्ता।
> तिरिदुगउज्जोयाइ अहापवत्तस्स अंतमि ॥११५॥

---

१ कर्मप्रकृति सक्रमकरण गाथा १०९ मे वज्रऋषभनाराचसहनन का जघन्य प्रदेशसक्रम भी पचेन्द्रियजाति आदि पैंतीस प्रकृतियो के साथ ही अपूर्वकरण की प्रथम आवलिका के अत समय मे बताया है।

शब्दार्थ—तेवट्ठउदहिसय—एक सौ त्रेसठ सागरोपम, गेविज्जाणुत्तरे—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान मे, सऽबधित्ता—बिना बाधे, तिरिदुगउज्जोयाइ—तिर्यंचद्विक और उद्योत नाम का, अहापवत्तस्स—यथाप्रवृत्तकरण के, अतम्मि—अन्त मे ।

गाथार्थ—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में एक सौ त्रेसठ सागरोपम पर्यन्त विना बाधे क्षय करते तिर्यंचद्विक और उद्योत-नाम का यथाप्रवृत्तकरण के अत में जघन्य प्रदेशसक्रम होता है ।

विशेषार्थ—चार पल्योपम अधिक एक सौ त्रेसठ सागरोपम पर्यन्त ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान मे भवप्रत्यय अथवा गुणप्रत्यय द्वारा विना बाधे सर्व जघन्य सत्ता वाले क्षपितकर्मांश के यथाप्रवृत्त-करण के चरमसमय में तिर्यंचद्विक और उद्योतनाम का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है ।

यहाँ चार पल्योपम अधिक एक सौ त्रेसठ सागरोपम इस प्रकार जानना चाहिये कि कोई क्षपितकर्मांश जीव तीन पल्योपम की आयु वाले युगलिक मनुष्य मे उत्पन्न हो । वह वहाँ देवद्विक का ही बध करता है, तिर्यंचद्विक या उद्योतनाम नही बाधता है । अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करके और सम्यक्त्व से गिरे विना ही एक पल्योपम की आयु वाला देव हो, फिर उसके बाद सम्यक्त्व से गिरे विना ही देवभव में से च्यव कर मनुष्य हो तथा मनुष्यभव में भी सम्यक्त्व से च्युत न हो परन्तु सम्यक्त्व सहित इकतीस साग-रोपम की आयु से ग्रैवेयक में देव हो, वहा उत्पन्न होने के बाद एक अन्तर्मुहूर्त वीतने के पश्चात् मिथ्यात्व में जाये । मिथ्यात्व में जाने पर भी वहाँ भवप्रत्यय से उपर्युक्त प्रकृतियो को नही बाधता है, अन्त-र्मुहूर्त आयु शेष रहे तो फिर सम्यक्त्व को प्राप्त करे और उसके वाद वीच मे होने वाले मनुष्यभवयुक्त तीन वार अच्युत देवलोक मे और दो वार अनुत्तर विमान मे जाने के द्वारा एक सौ वत्तीस

सागरोपम[1] क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का पालन कर उस सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहे तब शीघ्र क्षय करने के लिये प्रयत्नशील हो। क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुए जीव के यथाप्रवृत्तकरण–अप्रमत्तसयतगुणस्थान के चरम समय मे जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। अपूर्वकरण से गुणसक्रम[2] प्रवर्तित होने से वहाँ जघन्य प्रदेशसक्रम नही होता है।

इस प्रकार ससारचक्र मे भ्रमण करते चार पल्योपम अधिक एक सौ त्रेसठ सागरोपम पर्यन्त गुण या भव प्रत्यय से तिर्यचद्विक और उद्योतनामकर्म बाधता नही और सक्रम, प्रदेशोदयादि द्वारा, कम करता है, जिससे क्षपकश्रेणि पर आरूढ होते अप्रमत्तसयतगुणस्थान के अत समय मे उनका जघन्य प्रदेशसक्रम घटित हो सकता है। श्रेणि पर आरूढ होते जो तीन करण करता है, उनमे का यथाप्रवृत्तकरण अप्रमत्तसयतगुणस्थान जानना चाहिये।

---

१ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का अविरत काल छियासठ सागरोपम का है। वह बाईस-बाईस सागरोपम की आयु से तीन बार अच्युत देवलोक मे जाकर पूर्ण करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मिश्रगुणस्थान मे जाकर दूसरी बार सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है और उसे तेतीस-तेतीस सागरोपम की आयु से अनुत्तर विमान मे जाकर पूर्ण करता है। उस काल के अतिम अन्तर्मुहूर्त मे यदि क्षपकश्रेणि पर आरूढ न हो तो काल पूर्ण होने पर गिर कर मिथ्यात्व प्राप्त करता है। यह काल बीच मे होने वाले मनुष्यभव द्वारा अधिक समझना चाहिये।

२ यद्यपि उद्योतनामकर्म का गुणसक्रम नही होता है। क्योकि अबध्यमान अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम होता है। परन्तु जघन्य प्रदेशसक्रम तो अप्रमत्तसयतगुणस्थान के अत समय मे कहा है। क्योकि अपूर्वकरण से उसका उद्वलनासक्रम होता है। इसी प्रकार से आतपनामकर्म के लिये भी समझना चाहिये। क्योकि नौवें गुणस्थान मे आतपनामकर्म का भी क्षय किया जाता है।

एकेन्द्रियजाति आदि का जघन्य प्रदेशसंक्रमस्वामित्व

इगिविगलायवथावरचउक्कमबधिऊण पणसीयं।
अयरसय छट्ठीए बावीसयर जहा पुव्व ॥११६॥

शब्दार्थ—इगिविगलायवथावरचउक्क—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरचतुष्क का, अबधिऊण—बिना बाधे, पणसीयं—पचासी, अयरसय—सौ सागरोपम, छट्ठीए—छठवी नरकपृथ्वी के, बावीसयर—बाईस सागरोपम, जहा पुव्व—शेष पूर्व मे कहे अनुसार।

गाथार्थ—एक सौ पचासी सागरोपम पर्यन्त बिना बाधे क्षय करते यथाप्रवृत्तकरण के अत में एकेन्दिय, विकलेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरचतुष्क का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। छठी नरकपृथ्वी के बाईस सागरोपम के साथ पूर्व में कहे एक सौ त्रेसठ सागरोपम के अबधकाल को जोडने से एक सौ पचासी सागरोपम होते है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय रूप जाति-चतुष्क, आतप तथा स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त रूप स्थावर-चतुष्क, इन नौ प्रकृतियो को चार पल्योपम अधिक एक सौ पचासी सागरोपम तक बाधे बिना उस सम्यक्त्व के काल के अत मे अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपम प्रमाण सम्यक्त्व का जो काल है, उसके चरम अन्तर्मुहूर्त मे क्षपकश्रेणि पर आरूढ होने वाला यथाप्रवृत्तकरण के अत समय में जघन्य प्रदेशसक्रम करता है।

इतने काल पर्यन्त इन नौ प्रकृतियो को गुण या भव के निमित्त से बाधता नही है तथा सक्रम एव प्रदेशोदय द्वारा अल्प करता है, जिसके सत्ता मे अल्प दलिक रहते है। अल्प रहे दलिको को अप्रमत्त-सयतगुणस्थान के चरमसमय में जो सक्रमित करता है, वह इन प्रकृतियो का जघन्य प्रदेशसक्रम कहलाता है। अपूर्वकरण से तो गुण-सक्रम प्रवर्तित होता है, जिससे जघन्य प्रदेशसक्रम नही हो सकता है। इसीलिये अप्रमत्तसयत का चरमसमय ग्रहण किया है।

यहाँ चार पल्योपम अधिक एक सौ पचासी सागरोपम काल इस प्रकार से जानना चाहिये कि कोई क्षपितकर्मांश नरकायु को बाधकर छठी नरक पृथ्वी मे बाईस सागरोपम की आयु से नारक हो, वहाँ भवप्रत्यय से उपर्युक्त प्रकृतियो की बाधता नही और जब वहाँ अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब सम्यक्त्व प्राप्त करे और सम्यक्त्व से गिरे बिना नरक मे से निकलकर मनुष्य हो, मनुष्य पर्याय मे भी सम्यक्त्व से गिरे बिना सम्यक्त्व के साथ देशविरति का पालन कर सौधर्म स्वर्ग मे चार पल्योपम की आयु वाले देव मे उत्पन्न हो, यहाँ भी सम्यक्त्व से च्युत न हो, परन्तु उतने काल सम्यक्त्व का पालन कर सम्यक्त्व के साथ ही देवभव मे से च्यवकर मनुष्य हो। उस मनुष्यभव मे भलीभाति चारित्र का पालन कर इकतीस सागरोपम की आयु से ग्रैवेयक देव मे उत्पन्न हो और इतने काल गुणनिमित्त से उपर्युक्त प्रकृतियो का बध नही किया। ग्रैवेयक मे उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व मे जाये। यहाँ मिथ्यात्वी होने पर भी भवप्रत्यय से उपर्युक्त प्रकृतियो का बध नही होता। अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तब पुन सम्यक्त्व प्राप्त हो और उसके बाद पूर्व मे कहे अनुसार दो छियासठ सागरोपम पर्यन्त सम्यक्त्व का पालनकर उस सम्यक्त्व काल का अतिम अन्तर्मुहूर्त शेष रहे तब कर्मों को सत्ता मे से निर्मूल करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार ससार मे परिभ्रमण करने वाले के चार पल्योपम अधिक एक सौ पचासी सागरोपम तक उपर्युक्त नौ प्रकृतियो के बध का अभाव प्राप्त होता है।

सम्यग्दृष्टि-बध-अयोग्य अशुभ प्रकृतियो का जघन्य प्रदेशसंक्रम स्वामित्व

दुसराइतिण्णि णीयऽसुभखगइ संघयण सठियपुमाणं।
सम्माजोग्गाण सोलसण्ह सरिसं थिवेएणं ॥११७॥

शब्दार्थ—दुसराइतिण्णि—दुस्वरादित्रिक, णीयऽसुभखगई—नीचगोत्र, अशुभ विहायोगति, सघयण—सहनन सठियपुमाण—सस्थान, नपु सकवेद,

सम्माजोग्गाण—सम्यग्दृष्टि के बध अयोग्य, सोलसण्ह—सोलह प्रकृतियो का, सरिस—सदृश, थिव्वेएण—स्त्रीवेद के समान।

गाथार्थ—दु स्वरादित्रिक, नीच गोत्र, अशुभ विहायोगति, सहनन पचक, सस्थान पचक और नपु सकवेद इन सम्यग्दृष्टि के वध अयोग्य सोलह प्रकृतियो का जघन्य प्रदेशसक्रम स्त्रीवेद के सदृश जानना चाहिये।

विशेषार्थ—दु स्वरत्रिक-दु स्वर, दुर्भग और अनादेय तथा नीच-गोत्र, अशुभ विहायोगति, पहले को छोडकर शेष पाच सहनन और पाच सस्थान तथा नपु सकवेद इस तरह सम्यग्दृष्टि जीव के वधने के अयोग्य सोलह प्रकृतियो का जघन्य प्रदेश सक्रम पूर्व मे वताये गये स्त्रीवेद के जघन्य प्रदेशसक्रम स्वामित्व के समान जानना चाहिये। अर्थात् स्त्रीवेद के जघन्य प्रदेश सक्रम का जो स्वामी कहा है, वही इन सोलह प्रकृतियो का भी जानना चाहिये। परन्तु इतना विशेष है कि तीन पल्योपम की आयु वाले युगलिक मनुष्य मे उत्पन्न हुआ और वहाँ अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहे तव सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला जानना चाहिये तथा शेष समस्त कथन स्त्रीवेद मे कहे अनुसार है।

आयु कर्म आदि का जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व

समयाहिआवलीए आऊण जहण्णजोग बधाण।
उक्कोसाऊ अंते नरतिरिया उरलसत्तस्स ॥११८॥

शब्दार्थ—समयाहि आवलीए—समयाधिक आवलिका के, आऊण—आयु का, जहण्णजोग बधाण—जघन्य योग से वधी हुई, उक्कोसाउ—उत्कृष्ट आयु वाले के, अते—अत मे, नरतिरिया—मनुष्य तिर्यच के, उरलसत्तस्स—औदारिक सप्तक का।

गाथार्थ—जघन्य योग से बधी हुई सभी आयु का समयाधिक आवलिका शेष रहने पर जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। उत्कृष्ट आयु वाले मनुष्य तिर्यच अपनी आयु के अत समय मे औदारिक सप्तक का जघन्य प्रदेशसक्रम करते है।

विशेषार्थ—जघन्य योग द्वारा बाधी गई आयु की सत्ता मे जब समयाधिक एक आवलिका शेष रहे तब उनका जघन्य प्रदेशसक्रम होता है। आयुकर्म मे यह सक्रम स्वस्थान मे ही जानना चाहिये। क्योकि आयु कर्म मे अन्य प्रकृति नयनसक्रम नही होता है। जिससे उदयावलिका से ऊपर के समय का दलिक अपवर्तना द्वारा नीचे उतारने रूप अपवर्तनासक्रम समझना चाहिये किन्तु अन्य प्रकृति नयनसक्रम नही।

उत्कृष्ट तीन पल्य की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच अपनी आयु के अत मे औदारिक सप्तक का जघन्य प्रदेशसक्रम करते है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई एक जीव जो अन्य समस्त जीवो की अपेक्षा सर्व जघन्य औदारिक सप्तक की प्रदेश सत्ता वाला हो और तीन पल्योपम की आयु वाले युगलिक तिर्यंच या मनुष्य मे उत्पन्न हो तो वह युगलिक औदारिक सप्तक को उदय-उदीरणा द्वारा अनुभव करते और विध्यातसक्रम द्वारा पर-प्रकृति मे सक्रमित करते अपनी आयु के चरम समय मे औदारिकसप्तक का जघन्य प्रदेशसक्रम करता है। इसका कारण यह है कि अन्य जीवो की अपेक्षा वह अल्प सत्ता वाला है और तीन पल्योपम तक उदय-उदीरणा द्वारा भोगकर एव विध्यातसक्रम द्वारा अन्य मे सक्रमित करके अल्प करता है, जिससे अल्प प्रदेश की सत्ता वाला वह औदारिकसप्तक का जघन्य प्रदेश सक्रम कर सकता है।

पुरुषवेद सज्वलनत्रिक का जघन्य प्रदेशसक्रम स्वामित्व

पुसजलणतिगाण जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए।
सगचरिमसमयबद्ध ज छुभइ सगतिमे समए ।।११६।।

शब्दार्थ—पुसजलणतिगाण—पुरुषवेद, सज्वलनत्रिक का, जहण्णजोगिस्स—जघन्य योग वाले के, खवगसेढीए—क्षपक श्रेणि मे वर्तमान, सगचरिमसमयबद्ध—अपने चरम समय मे बद्ध, ज—जो, छुभइ—सक्रमित करता है, सगतिमे—अपने अतिम, समए—समय मे।

गाथार्थ—क्षपकश्रेणि में वर्तमान जघन्य योग वाले जीव ने पुरुपवेद और सज्वलनत्रिक का अपने-अपने वध के अत समय मे जो दलिक बाधा उसे अपने-अपने अन्तिम समय मे सक्रमित किया जाता है वह उनका जघन्य प्रदेशसक्रम है।

विशेपार्थ—क्षपकश्रेणि मे वर्तमान जघन्य योग वाले जीव ने उन प्रकृतियो—पुरुपवेद, सज्वलन क्रोध, मान, माया—का जिस समय चरम वध होता है उस समय जो दलिक बाधा, उसकी बधावलिका के बीतने के बाद सक्रमित करते सक्रमावलिका के चरम समय मे पर प्रकृति मे अतिम सक्रम होता है, वह उनका जघन्य प्रदेश-सक्रम है।

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि इन चारो प्रकृतियो का वध-विच्छेद के समय समयन्यून दो आवलिका मे बधे हुए दलिक को छोडकर अन्य किसी भी समय का वधा हुआ सत्ता मे होता नही है और उसे भी प्रति समय सक्रमित करते हुए क्षय करता है और वह वहाँ तक कि चरमसमय मे वधे हुए दलिक का असख्यातवा भाग शेष रहता है। पुरुपवेद आदि प्रकृतियो का वधविच्छेद के समय समयोन दो आवलिका काल मे वधा हुआ दल ही शेप रहता है। ऐसा नियम है कि जिस समय वाधे उस समय से वधावलिका के जाने के बाद सक्रमित करने की शुरुआत होती है और सक्रमावलिका के चरमसमय मे सम्पूर्ण रूप से निर्लेप होता है। इस नियम के अनुसार उपर्युक्त प्रकृतियो का वधविच्छेद के समय जो दलिक वधता है, उसकी वधावलिका के जाने के बाद सक्रमित किये जाने की शुरुआत होती है और सक्रमित करते-करते सक्रमावलिका के चरमसमय मे वधविच्छेद के समय वधा हुआ शुद्ध एक समय का ही दल रहता है और वह भी वधविच्छेद के समय जो वाधा था, उसका असख्यातवा भाग ही शेप रहता है। उसे सर्वसक्रम द्वारा सक्रमित करने पर उन प्रकृतियो का जघन्य प्रदेश-सक्रम कहलाता है।

यद्यपि यहाँ सज्वलनलोभ के जघन्य प्रदेशसक्रमस्वामित्व का निर्देश नही किया है, परन्तु कर्मप्रकृति सक्रमकरण गाथा ९८ की

टीकानुसार इस प्रकार जानना चाहिये कि उपशमश्रेणि किये विना क्षपकश्रेणि पर आरूढ होने वाले अपूर्वकरणगुणस्थान की पहली आवलिका के अत मे सज्वलनलोभ का जघन्य प्रदेशसक्रम होता है।

इस प्रकार से प्रदेशसक्रम के अधिकृत विषयो का विवेचन करने के साथ सक्रमकरण का वर्णन समाप्त हुआ।[1] अब एक प्रकार से सक्रम के भेद जैसे उद्वर्तना और अपवर्तना करणो का वर्णन प्रारभ करते है।

सक्रम और उद्वर्तना-अपवर्तना करणो मे यह अतर है कि सक्रम तो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चारो का होता है किन्तु उद्वर्तना और अपवर्तना करण, स्थिति एव अनुभाग (रस) के विषय मे ही होते है। इसके सिवाय और भी जो भिन्नता है, उसे यथाप्रसग स्पष्ट किया जायेगा।

●

---

१ स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसक्रम के समस्त कथन का बोधक प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

उद्वर्तना और अपवर्तना करण

उद्देशानुसार अब उद्वर्तना एव अपवर्तना इन दो करणो का विचार किया जायेगा। स्थिति और अनुभाग इनके विषय हैं। अतएव स्थिति और अनुभाग के क्रम से इन दोनो करणो का प्रतिपादन करते है।

निर्व्याघात और व्याघात के भेद से स्थिति उद्वर्तना के दो प्रकार है। उनमें से सर्वप्रथम निर्व्याघात स्थिति उद्वर्तना का निरूपण करते हैं।

निर्व्याघात स्थिति उद्वर्तना

उदयावलिवज्झाण ठिईण उव्वट्टणा उ ठितिविसया।
सोक्कोसअवाहाओ जावावलि होई अइत्थवणा ॥१॥

शब्दार्थ—उदयावलिवज्झाण—उदयावलिका से वाह्य, ठिईण—स्थितियो की, उव्वट्टणा—उद्वर्तना, उ—और, ठितिविसया—स्थिति की विषय रूप, सोक्कोसअवाहाओ—अपनी उत्कृष्ट अवाधा से लेकर, जावावलि—आवलिका पर्यन्त, होइ—है, अइत्थवणा—अतीत्थापना।

गाथार्थ—स्थिति की विषय रूप उद्वर्तना उदयावलिका से वाह्य स्थितियो की होती है और अपनी उत्कृष्ट अवाधा से लेकर आवलिका पर्यन्त की स्थितियाँ अतीत्थापना है।

विशेषार्थ—गाथा मे स्थिति-उद्वर्तना का स्वरूप वताया है। उसमें भी पहले उद्वर्तना का लक्षण स्पष्ट करते है कि जीव के जिस प्रयत्न द्वारा स्थिति और रस की वृद्धि हो, उसे स्थिति और रस की उद्वर्तना कहते है। अर्थात् उद्वर्तना का विषय स्थिति और रस है, प्रकृति एव प्रदेश नही। उद्वर्तना-अपवर्तना द्वारा प्रकृति और

प्रदेश मे वृद्धि-हानि नही होती है, परन्तु स्थिति और रस मे होती है। इसलिये क्रम प्राप्त पहले स्थिति-रस की उद्वर्तना की प्ररूपणा करके, बाद मे स्थिति-रस की अपवर्तना का निरूपण करेगे।

उद्वर्तना के विचार मे स्थिति का प्रथम स्थान है, अतएव स्थिति उद्वर्तना का कथन करते हैं कि उदयावलिका को छोडकर ऊपर जो स्थितिया है, उनमे स्थिति-उद्वर्तना प्रवर्तित होती है और उदयावलिका सकल करण के अयोग्य होने से उसमे प्रवृत्त नही होती है।

प्रश्न—बधावलिका के बीतने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की—समस्त स्थितिस्थानो की उद्वर्तना हो सकती है ?

उत्तर—बधावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की—समस्त स्थितिस्थानो की उद्वर्तना नही हो सकती है।

प्रश्न—तब कितने की हो सकती है ?

उत्तर—स्वजातीय जिस प्रकृति की जितनी स्थिति बधती है, उसकी जितनी अबाधा हो तो उस प्रकृति की सत्ता मे रही हुई उतनी स्थिति की उद्वर्तना नही हो सकती है, परन्तु अबाधा से ऊपर की स्थिति की उद्वर्तना होती है। अर्थात् उत्कृष्ट अबाधा हो तब अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति की, मध्यम हो तब मध्यम अबाधाप्रमाण स्थिति की और जघन्य अबाधा हो तब जघन्य अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति की उद्वर्तना नही होती है, परन्तु उससे ऊपर की स्थिति की हो सकती है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अबाधाप्रमाण स्थिति उत्कृष्ट अतीत्थापना, मध्यम अबाधाप्रमाण स्थिति मध्यम अतीत्थापना और अल्प-अल्प होती जघन्य अबाधाप्रमाण स्थिति जघन्य अतीत्थापना है।

अतीत्थापना का अर्थ है उलाघना। इसीलिये जितनी स्थिति को उलाघकर उद्वर्तना हो, वह उलाघने योग्य स्थिति अतीत्थापनास्थिति

कहलाती है। क्योंकि उत्कृष्ट, मध्यम या जघन्य अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति को छोडकर ऊपर की स्थिति की उद्वर्तना होती है, इसलिये उतनी स्थिति अतीत्थापना कहलाती है। जघन्य अबाधाप्रमाण जघन्य अतीत्थापना से भी अल्प जो अतीत्थापना है वह आवलिका-प्रमाण है।

उक्त कथन का तात्पर्य इस प्रकार है—उद्वर्तना का सबध बध से है। अतएव जितनी स्थिति बधे, सत्तागत स्थिति उतनी बढती है। बध्यमान प्रकृति की जितनी स्थिति बधती है उसकी जितनी अबाधा हो, उसके तुल्य या उससे हीन जिसकी बधावलिका बीत गई है, वैसी उस कर्म की ही पूर्वबद्ध स्थिति की उद्वर्तना नही होती है। यानि अबाधाप्रमाण उस सत्तागत स्थिति को वहाँ से उठाकर बधने वाली उसी प्रकृति को अबाधा से ऊपर की स्थिति मे प्रक्षेप नही किया जाता है। क्योकि वह स्थिति अबाधा के अन्त प्रविष्ट है।

यहाँ स्थिति को उठाकर अन्यत्र प्रक्षिप्त करने का तात्पर्य उस-उस स्थितिस्थान मे भोगने योग्य दलिको को उठाकर अन्यत्र निक्षिप्त नही किया जाता है, यह है।

अबाधा से ऊपर जो स्थिति है, उसकी अतिम स्थितिस्थान पर्यन्त उद्वर्तना होती है। इस प्रकार अबाधा के अदर की सभी स्थितिया उद्वर्तना की अपेक्षा अनतिक्रमणीय है। यानि अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थानो के दलिक अबाधा से ऊपर के स्थानो मे प्रक्षिप्त नही किये जाते—अबाधा से ऊपर के स्थानो के दलिको के साथ भोगे जायें वैसे नही किये जाते है। इस प्रकार होने से जो उत्कृष्ट अबाधा वह उत्कृष्ट अतीत्थापना, समयन्यून उत्कृष्ट अबाधा, वह समयन्यून उत्कृष्ट अतीत्थापना, दो समयन्यून अबाधा वह दो समयन्यून उत्कृष्ट अतीत्थापना है, इस प्रकार समय-समय हीन-हीन होते वहाँ तक कहना चाहिये कि जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अबाधा वह जघन्य अतीत्थापना

है। उस जघन्य अबाधारूप अतीत्थापना से भी जघन्य अतीत्थापना आवलिका प्रमाण है एव वह उदयावलिका रूप है। क्योकि उदयावलिका के अदर की स्थितियो की उद्वर्तना नही होती है। कहा भी है—'उव्वट्टणा ठिईए उदयावलियाए वाहिए ठिईण' स्थिति की उद्वर्तना उदयावलिका से ऊपर की स्थिति मे होती है।

प्रश्न—किसी भी काल मे बध हो तभी उद्वर्तना होती है। कहा भी है—'**आबधा उव्वट्टइ**' बध पर्यन्त यानि किसी भी प्रकृति की उद्वर्तना उस प्रकृति के बध होने तक ही प्रवर्तित होती है[1]। जैसे कि मिथ्यात्वमोहनीय की उद्वर्तना मिथ्यात्वमोहनीय के बध होने तक ही होती है, इसी प्रकार अन्य प्रकृतियो के लिये भी समझना चाहिये तथा ऐसा भी कहा कि वध्यमान प्रकृति की अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति की उद्वर्तना नही होती है। इस प्रकार होने से जो उदयावलिकागत स्थितिया है, अबाधा मे ही समावेश हो जाने से उनकी उद्वर्तना होती ही नही है तो फिर से उदयावलिकागत स्थितियो की उद्वर्तना नही होती है—ऐसा निषेध क्यो किया है निषेध तो पहले ही हो गया है।

उत्तर—उक्त प्रश्न अभिप्राय को न समझने के कारण अयुक्त है। ऊपर जो कहा है कि—'वध्यमान प्रकृति की अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति की उद्वर्तना नही होती,' उसका तात्पर्य यह है कि उस अबाधा की अतर्वर्ती स्थितियो को स्वस्थान से उठाकर अबाधा से ऊपर के

---

१ उद्वर्तना प्रवर्तित होती है यानि शीघ्र भोगे जायें इस प्रकार से नियत हुए दलिको को देर से भोगा जाये वैसा करना वध समय जो निषेक रचना हुई हो उसे उद्वर्तना वदल देती है। कितनी ही वार जितनी स्थिति वधे उतनी ही सत्ता मे होती है, कितनीक वार वध से सत्ता मे कम होती है और किसी समय वध से सत्ता मे अधिक होती है तो प्रत्येक समय उद्वर्तना कैसे होती है, यह समझने योग्य है।

स्थानो में निक्षेप नही होता है। यानि अबाधा के अन्तर्गत जो स्थिति-स्थान रहे हुए है उनके दलिक अबाधा से ऊपर के स्थानो में रहे हुए दलिको के साथ भोगे जाये, वैसा नही होता है, परन्तु अबाधा का अबाधा मे ही जिस क्रम से अबाधा के ऊपर के स्थानो के लिये आगे कहा जा रहा है, उस क्रम से उद्वर्तना और निक्षेप होता है, इसमे कुछ भी विरुद्ध नही है। इस प्रकार होने से उदयावलिकागत स्थितियो की भी उद्वर्तना प्राप्त होती है, अत उसका निषेध करने के लिये उदयावलिकागत स्थितियो की उद्वर्तना नही होती, यह कहा है। अबाधा के स्थानो की उद्वर्तना अबाधा के स्थानो में ही हो सकती है। जैसे कि मिथ्यात्वमोहनीय की सत्तर कोडाकोडी सागरोपम स्थिति बधी और उसकी सात हजार वर्ष प्रमाण अबाधा है तो सत्तागत उतनी स्थिति की उद्वर्तना का निषेध किया है। अर्थात् सात हजार वर्ष प्रमाण स्थानो में के किसी भी स्थान के दलिक सात हजार वर्ष के बाद भोगे जाने योग्य दलिको के साथ भोगे जाये वैसे नही किये जाते है, किन्तु अबाधागत उदयावलिका से ऊपर के स्थान के दलिको को उसके बाद के स्थान से प्रारभ कर आवलिका को उलाघकर बाद के स्थान से सात हजार वर्ष के अतिम समय तक के स्थानो के साथ भोगे जाये वैसे किये जा सकते है।

इस प्रकार अबाधा के स्थानो की अबाधा के स्थानो में उद्वर्तना हो सकती है। मात्र उदयावलिका करण के अयोग्य होने से उसमें नही होती है। इसीलिये उसका निषेध किया है।

यहाँ यह ध्यान मे रखना है कि उद्वर्तना हो तब बधसमय में हुई निषेकरचना में परिवर्तन होता है और जितनी स्थिति बधे, उतनी ही स्थिति की सत्ता हो तब बद्धस्थिति की अबाधातुल्य सत्तागत स्थिति को छोडकर ऊपर के जिस स्थितिस्थान के दलिक की उद्वर्तना होती है, उसके दलिक को उससे उपर के समय से आवलिका के समय प्रमाण स्थिति को छोडकर ऊपर की बधती हुई स्थिति के चरमस्थान तक के किसी भी स्थान के दलिक के साथ भोगा जाये, वैसा किया

जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि बंध के समय जिस समय भोगा जाये, इस प्रकार से नियत हुआ हो, उसे एक आवलिका के बाद किसी भी समय में भोगने योग्य किया जाता है। इस प्रकार से निषेक रचना वदलती है। स्थिति को उद्वर्तना यानि अमुक स्थान में भोगने के लिये नियत हुए दलिको को उसके वाद कम में कम आवलिका के बाद फल दे, उनके साथ भोगने योग्य करना यह है। जिस स्थिति की उद्वर्तना होती है, उससे ऊपर के समय से लेकर एक आवलिका प्रमाण स्थिति मे जीवस्वभाव से दलिक निक्षेप नही होता है परन्तु उसके वाद के किसी भी स्थान मे होता है, इसलिये आवलिका अतीत्थापना कहलाती है। इससे कम-से-कम एक आवलिका प्रमाण स्थिति वढती है और अधिक-से-अधिक अबाधा से ऊपर की स्थिति के दलिक को बधती हुई स्थिति में के अतिम स्थितिस्थान मे प्रक्षेप होता है, उस समय प्रभूत स्थिति वढती है।

समय-समय वधते कर्म में बद्ध समय से लेकर एक आवलिका पर्यन्त कोई करण लागू नही होता है, इसीलिये सत्तागतस्थिति का नाम लिया जाता है। सत्तागतस्थिति की निषेकरचना वदलकर वद्धस्थिति जितनी हो जाती है। जैसे कि अत कोडाकोडी सागरोपम की सत्ता वाला कोई जीव यदि सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति बाधे तब अन्त कोडाकोडी मे भोगी जाये इस प्रकार से नियत हुई निषेकरचना बदलकर सत्तर कोडाकोडी मे भोगी जाये, वैसी होती है।

यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिये कि जिस-जिस स्थिति की उद्वर्तना होनी हो उसके दलिक उससे ऊपर के समय से लेकर एक अतीत्थापनावलिका को छोडकर ऊपर ऊपर के किसी भी स्थान में स्थित होते है। इस नियम के अनुसार किसी भी स्थान या स्थानो की उद्वर्तना होती है तो सत्तागत स्थिति या रस तत्समय वधती स्थिति या वधते रस प्रमाण होता है, किन्तु वधती स्थिति या बधते रस से सत्तागत स्थिति या रस नही वढता है।

सत्तागत स्थिति से बधने वाली स्थिति कम हो तब बधने वाली स्थिति की अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति को छोडकर ऊपर के स्थान के दलिक को उससे ऊपर के समय से आवलिका छोडकर बधती स्थिति के अतिम स्थितिस्थान तक के किसी भी स्थान के साथ भोगा जाये, वैसा किया जाता है। जैसे कि दस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति की सत्ता है और बध पाच कोडाकोडी सागरोपम का है तो उस समय पाच सौ वर्ष प्रमाण सत्तागत स्थिति को छोडकर उससे ऊपर के स्थानगत दलिक को उसकी ऊपर से एक आवलिका छोडकर समयाधिक एक आवलिका और पाँच सौ वर्ष न्यून पाँच कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थानो मे के किसी भी स्थान के साथ भोगा जाये वैसा किया जाता है, उससे बढता नही है। क्योकि बध अधिक नही है। स्थिति की उद्वर्तना का जो क्रम है, वही रस की उद्वर्तना के लिये भी जानना चाहिये।

सत्तागत स्थिति से अधिक स्थिति का बध हो तब उद्वर्तना होने का क्रम आगे बताया जा रहा है।

यहाँ उद्वर्त्यमानस्थिति और निक्षेपस्थिति यह दो शब्द आते है। उनमे से उद्वर्त्यमानस्थिति उसे कहते है कि जिस स्थिति–स्थिति-स्थान के दलिको का ऊपर के स्थान में निक्षेप किया जाता है और उद्वर्त्यमान स्थितिस्थान के दलिक जिसमे निक्षिप्त किये जाते है— जिसके साथ भोगने योग्य किये जाते है, उसे निक्षेपस्थिति कहते है।

इस प्रकार से स्थिति उद्वर्तना के स्वरूप का विचार करने के पश्चात अब निक्षेप प्ररूपणा करते है।

निक्षेप प्ररूपणा

इच्छियठितिठाणाओ आवलिगं लघिउण तद्दलियं।
सव्वेसु वि निक्खिप्पइ ठितिठाणेसु उवरिमेसु ॥२॥

शब्दार्थ—इच्छियठितिठाणाओ—इच्छित स्थितिस्थान मे, आवलिग—आवलिका, लघिउण—उलाघकर, तद्दलिय—उस दलिक का, सव्वेसु—सभी, वि—भी, निक्खिप्पइ—निक्षेप किया जाता है, ठितिठाणेसु—स्थितिस्थानो मे, उवरिमेसु—ऊपर के।

गाथार्थ—इच्छित स्थितिस्थान से एक आवलिका उलाघकर ऊपर के समस्त स्थितिस्थानो मे उद्वर्त्यमान स्थिति के दलिक का निक्षेप किया जाता है।

विशेषार्थ—बढती हुई स्थिति की अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति को छोडकर ऊपर के उद्वर्तना योग्य जो स्थितिस्थान हैं वहाँ से लेकर स्थिति—स्थितिस्थान की उद्वर्तना करना हो, उसके दलिको को उसके ऊपर के स्थान मे एक आवलिका प्रमाण स्थिति उलाघने के बाद ऊपर के किन्ही भी स्थानो मे निक्षेप किया जाता है। अर्थात् उद्वर्तना के योग्य स्थिति के दलिक जिस स्थितिस्थान की उद्वर्तना होती है उससे ऊपर के समय से आवलिका प्रमाण स्थानो को छोडकर ऊपर के समस्त स्थानो मे निक्षिप्त किये जाते है यानि समस्त स्थानो के साथ भोगने योग्य किये जाते है।

इस प्रकार यहाँ सामान्य से उद्वर्त्यमान स्थिति के दलिक कहाँ और कितने मे निक्षेप किये जाने का निर्देश करने के बाद अब जितने मे निक्षेप किया जाता है, उसका निश्चित प्रमाण बतलाते हैं।

आवलिअसखभागाइ जाव कम्मट्ठितित्ति निक्खेवो।
समयोत्तरावलीए साबाहाए भवे ऊणो ॥३॥

शब्दार्थ—आवलिअसखभागाइ—आवलिका के असख्यातवे भाग से लेकर, जाव—यावत्-पर्यन्त, कम्मट्ठितित्ति—उत्कृष्ट कर्म स्थिति, निक्खेवो—निक्षेप का विषय है, समयोत्तरावलीए—समयाधिक आवलिका, साबाहाए—अबाधा सहित, भवे—है, ऊणो—न्यून।

गाथार्थ—आवलिका के असख्यातवे भाग से लेकर यावत् उत्कृष्ट कर्म स्थिति यह निक्षेप का विषय है और वह अबाधा सहित समयाधिक आवलिका न्यून है।

विशेषार्थ—निक्षेप की विषयरूप स्थिति दो प्रकार की है—१ जघन्य, और २ उत्कृष्ट। निक्षेप की विषयरूप स्थितिया वे कहलाती है कि जिनमे जिस स्थिति की उद्वर्तना होती है, उसके दलिक निक्षिप्त किये जाते है। उसका जघन्य उत्कृष्ट कितना प्रमाण होता है, अब इसको स्पष्ट करते है—

आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितियो मे कर्मदलिक का जो निक्षेप होता है, वह जघन्य निक्षेप है। अर्थात् जब सत्तागत स्थिति जितनी स्थिति का बध हो तब सत्तागत स्थिति में की चरम-स्थिति की उद्वर्तना नही होती है। क्योकि जितनी स्थिति की सत्ता है, उतना ही बध होता है, जिससे सत्तागत स्थिति मे के चरम स्थिति-स्थान के दलिक को प्रक्षिप्त करने योग्य कोई स्थान नही है। द्विचरम स्थिति की भी उद्वर्तना नही होती है यावत् चरम स्थितिस्थान से लेकर एक आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग की उद्वर्तना नही होती है। इसी प्रकार सत्तागत स्थिति के समान स्थिति का जब बध हो तब उस सर्वोत्कृष्ट स्थिति के अग्रभाग से यानि अतिम स्थितिस्थान से लेकर एक आवलिका के एव आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिस्थानो की उद्वर्तना नही होती है, उसके नीचे के स्थान की ही उद्वर्तना होती है और उसके दलिक को उसके ऊपर के समय से लेकर आवलिका अतीत्थापनावलिका मात्र स्थिति को उलाघकर ऊपर के आवलिका के असख्यातवे भाग-प्रमाण स्थिति मे निक्षिप्त किया जाता है, किन्तु अतीत्थापना रूप आवलिका मे नही किया जाता है।

इस आवलिका मे प्रक्षेप नही करने का कारण तथाप्रकार का जीवस्वभाव है।

इस प्रकार चरम स्थितिस्थान से आवलिका और आवलिका का असख्यातवा भाग उलाघकर उससे नीचे के स्थान की उद्वर्तना हो तब अतिम आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति जघन्य

निक्षेप की विषय रूप है। कम से कम निक्षेप की विषय रूप स्थिति उपर्युक्त रीति से आवलिका के असख्यावे भाग ही होती है।

इस तरह यह सिद्ध हुआ कि सत्तागत स्थिति के तुल्य स्थिति का बध हो तब चरम स्थितिस्थान से लेकर एक आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति मे उद्वर्तना नही होती है। किन्तु उसके नीचे के स्थितिस्थान से लेकर बधती स्थिति की अबाधा प्रमाण स्थिति को छोडकर किसी भी स्थितिस्थान की उद्वर्तना हो सकती है। यानि उत्कृष्ट स्थितिबध जब हो तब बधावलिका, अबाधा और आवलिका के असख्यातवे भाग सहित एक आवलिका, इतनी स्थिति को छोडकर शेष स्थिति उद्वर्तना के योग्य है। उसका कारण यह है—बधावलिकान्तर्वर्ती दलिक सकल करण के अयोग्य है, इसलिये बधती स्थिति की अबाधा प्रमाण सत्तागत स्थिति उद्वर्तना के अयोग्य है क्योकि उतनी स्थिति अतीत्थापना रूप से पहले कही जा चुकी है, इसीलिये अबाधा के अन्तर्गत रही स्थिति भी उद्वंतना के योग्य नही तथा एक आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिया ऊपर कही युक्ति से उद्वर्तना के योग्य नही है। अत उत्कृष्ट स्थिति मे से बधावलिका, अबाधा प्रमाण स्थिति, आवलिका के असख्यातवे भाग अधिक एक आवलिका प्रमाण स्थितियो को छोड कर शेष स्थितिया उद्वर्तना के योग्य जानना चाहिये।

इस प्रकार से उद्वर्तना के योग्य स्थितियो का निर्देश करने के अनन्तर अब निक्षेप की विषयरूप स्थितियो का विचार करते है—

जब ऊपर के स्थितिस्थान से आवलिका और आवलिका के असख्यावें भाग प्रमाण स्थिति को उलाघकर नीचे की पहली स्थिति की उद्वर्तना होती है तब उसके दलिको को उसके ऊपर के स्थान से आवलिका प्रमाण स्थानो का अतिक्रमण कर आवलिका के अत के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थानो मे प्रक्षेप होता है, वह जघन्य निक्षेप है। उससे नीचे की दूसरी स्थिति की उद्वर्तना होती है तब

समयाधिक आवलिका का असख्यातवाँ भाग निक्षेप का विपयरूप होता है, जब इसकी नीचे की तीसरी स्थिति की उद्‌वर्तना होती है तब दो समय अधिक आवलिका का असख्यातवाँ भाग निक्षेप का विपयरूप होता है। यहाँ प्रत्येक स्थान पर अतीत्थापना स्थितिया आवलिका प्रमाण ही रहती है, किन्तु निक्षेप बढता है और इस तरह निक्षेप की विपयरूप स्थितियो मे समय-समय की वृद्धि होते वहाँ तक जानना चाहिये कि यावत् उत्कृष्ट हो जाये।

अव यह स्पष्ट करते है कि उत्कृष्ट निक्षेप कितना होता है—समयाधिक आवलिका और आवाधा हीन सम्पूर्ण कर्मस्थिति यह उत्कृष्ट निक्षेप है। वह इस प्रकार- -बधनी स्थिति की अवाधा प्रमाण स्थिति की उद्‌वर्तना नही होती किन्तु उससे ऊपर की स्थिति की उद्‌वर्तना होती है। इसलिये जब अबाधा से ऊपर रही हुई स्थिति की उद्‌वर्तना होती है तब उस स्थितिस्थान के दलिक का निक्षेप अबाधा से ऊपर के स्थितिस्थानो मे होता है, अवाधा के अन्दर के स्थितिस्थानो मे नही होता है। क्योकि जिस स्थितिस्थान की उद्‌वर्तना होती है उसके दलिक का निक्षेप जिस स्थिति की उद्‌वर्तना होती है उससे ऊपर के स्थानो मे ही होता है। उसमे भी जिस स्थिति की उद्‌वर्तना होती है उससे ऊपर के स्थितिस्थान से लेकर आवलिका प्रमाण स्थिति का अतिक्रमण होने के बाद ऊपर की सभी स्थितियो मे दलिक निक्षेप होता हे। जिससे अतीत्थापनावलिका और जिस स्थिति की उद्‌वर्तना होती है, उस समय प्रमाण स्थिति और अबाधा को छोडकर शेप सपूर्ण कर्मस्थिति उत्कृष्ट दलनिक्षेप की विपयरूप होती है।

अतीत्थापनारूप आवलिका उद्‌वर्त्यमान समयप्रमाण स्थिति और अबाधाकाल को ग्रहण न करने का कारण यह है कि जितने स्थितिस्थानो का अतिक्रमण करने के बाद दलिक निक्षेप किया जाता है, उसे अतीत्थापना कहते है। कम-से-कम भी एक आवलिका को उलाघने के बाद ही दलनिक्षेप होता है, इसलिये उस एक आवलिका को अतीत्थापना कहते है और उसमे दलनिक्षेप न होने से उसका

निषेध किया है जिस स्थितिस्थान की उद्‌वर्तना होती है, उसके दलिक का निक्षेप उसके ऊपर के स्थान से लेकर आवलिका प्रमाण स्थिति छोडकर ऊपर के स्थान मे होता है, अतएव उस उद्‌वर्त्यमान-स्थान का भी निषेध किया है तथा अबाधा का निषेध करने का कारण यह है कि अबाधा प्रमाण स्थान के दल का निक्षेप अबाधा के ऊपर के स्थानो मे नही होता है।

इस प्रकार अबाधा से ऊपर रहे स्थितिस्थान की जब उद्‌वर्तना होती है तब उस स्थितिस्थान की अपेक्षा उत्कृष्ट निक्षेप और सर्वोपरितन स्थितिस्थान की जब उद्‌वर्तना होती है तब उसकी अपेक्षा जघन्य निक्षेप सभव है।

अब इसी बात को स्वय ग्रथकार आचार्य स्पष्ट करते है—

अब्बाहोवरिठाणगदल पडुच्चेह परमनिक्खेवो।
चरिमुव्वट्टणगाण पडुच्च इह जायइ जहण्णो ॥४॥

शब्दार्थ—अब्बाहोवरिठाणगदल—अबाधा से ऊपर हुए स्थिति-स्थान के दल की, पडुच्चेह—अपेक्षा यहाँ, परमनिक्खेवो—उत्कृष्ट निक्षेप, चरिमुव्वट्टणगाण—चरम उद्‌वर्त्यमान दलिक, पडुच्च—अपेक्षा, इह—यहाँ, जायइ—होता है, जहण्णो—जघन्य।

गाथार्थ—अबाधा से ऊपर रहे हुए स्थितिस्थान के दल की अपेक्षा यहाँ उत्कृष्ट निक्षेप और चरम उद्‌वर्त्यमान स्थितिस्थान की अपेक्षा जघन्य निक्षेप होता है।

विशेषार्थ—अबाधा से ऊपर रहे हुए स्थितिस्थान की जब उद्‌वर्तना होती है तब उसके दलिक का उसके ऊपर के स्थितिस्थान से लेकर आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानो को छोडकर ऊपर के समस्त स्थितिस्थानो मे प्रक्षेप होता है, जिससे उसकी अपेक्षा यहाँ—उद्‌वर्तनाकरण मे उत्कृष्ट निक्षेप होता है और जिसके बाद के स्थितिस्थान की उद्‌वर्तना नही होती है, ऐसे अतिम स्थितिस्थान की उद्‌वर्तना होने पर उसकी अपेक्षा जघन्य निक्षेप सभव है।

जैसे कि सत्ता के समान स्थिति का जब बंध हो तब ऊपर के स्थान में आवलिका और आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति में के किसी भी स्थितिस्थान की उद्वर्तना नहीं होती है, उसके नीचे के स्थितिस्थान की उद्वर्तना होती है। जब उस स्थिति-स्थान की उद्वर्तना हो तब उसकी अपेक्षा आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्यनिक्षेप संभव है और मध्य के स्थितिस्थानों की अपेक्षा मध्यम निक्षेप होता है।

इस प्रकार से निक्षेप का निर्देश करने के बाद अब उद्वर्तना-योग्य स्थितियों का प्रमाण बतलाते हैं।

उद्वर्तनायोग्य स्थितियां

उक्कोसगठितिबंधे बंधावलिया अबाहमेत्त च।

निक्खेव च जहण्ण मोत्तुं उव्वट्टए सेस ॥५॥

शब्दार्थ—**उक्कोसगठिनिबंधे**—उत्कृष्ट स्थिति बंध होने पर, **बंधा-वलिया**—बंधावलिका, **अबाहमेत्त**—अबाधा मात्र, **च**—और, **निक्खेव**—निक्षेप, **च**—और, **जहण्ण**—जघन्य, **मोत्तुं**—छोड़कर, **उव्वट्टए**—उद्वर्तना होती है, **सेस**—शेष की।

गाथार्थ—उत्कृष्ट स्थिति बंध होने पर बंधावलिका अबाधा और जघन्य निक्षेप मात्र को छोड़कर शेष स्थितियों की उद्वर्तना होती है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिबंध हो तब बंधावलिका प्रमाण स्थिति बंधती हुई स्थिति की अबाधाप्रमाण सत्तागत स्थिति और जघन्य निक्षेप प्रमाण स्थिति को छोड़कर शेष समस्त स्थिति की उद्वर्तना होती है।

जघन्य निक्षेप प्रमाण स्थिति के ग्रहण से अन्त की आवलिका और आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति समझना चाहिये। क्योंकि उतनी स्थिति की उद्वर्तना नहीं होती है। जिसका स्पष्टी-करण पूर्व में किया जा चुका है।

इस प्रकार निर्व्याघात यानि सत्तागत स्थिति के समान स्थिति का बध होने पर होने वाली उद्वर्तना का निरूपण जानना चाहिये। अब व्याघात अर्थात् सत्तागत स्थिति से समय आदि अधिक स्थिति का बध होने पर होने वाली उद्वर्तना का विचार करते है कि वह कैसे होती है और उसकी दलिक निक्षेप विधि क्या है।

व्याघातभाविनी उद्वर्तना—

> निव्वाघाए एवं वाघाओ सतकम्महिगबधो।
> आवलिअसखभागो जावावलि तत्थ इत्थवणा ॥६॥
> आवलिदोसखसा जइ वड्ढइ अहिणवो उठिइबधो।
> उव्वट्टित तो चरिमा एव जावलि अइत्थवणा ॥७॥
> अइत्थावणालियाए पुण्णाए वड्ढइत्ति निक्खेवो।
> ठितिउव्वट्टणमेव एत्तो आव्वट्टणं वोच्छ ॥८॥

शब्दार्थ—निव्वाघाए—व्याघात के अभाव मे, एव—इस प्रकार, वाघाओ—व्याघात, सतकम्महिगबधो—सत्ता से अधिक होने वाले कर्म बध, आवलिअसखभागो—आवलिका का असख्यातवा भाग, जावावलि—यावत् आवलिका, तत्थ—वहां, इत्थवणा—अतीत्थापना।

आवलिदोसखसा—आवलिका के दो असख्यातवें भाग, जइ—यदि, वड्ढइ—बढती है—होती है, अहिणवो —अभिनव नया, उ—और, ठिइबधो—स्थितिबध, उव्वट्टति—उद्वर्तना होती है, तो—तत्पश्चात, चरिमा एव—चरम की इसी प्रकार, जावलि—आवलिका पर्यन्त-पूर्ण आवलिका, अइत्थवणा—अतीत्थापना।

अइत्थावणालियाए—अतीत्थापनावलिका की, पुण्णाए—पूणता होने पर, वड्ढइत्ति—बढता है, निक्खेवो—निक्षेप, ठितिउव्वट्टणमेव—स्थिति उद्वर्तना इस प्रकार, एत्तो—यहां से अब, ओव्वट्टण—अपवर्तना, वोच्छ—कहूंगा, वर्णन किया जायेगा।

गाथार्थ—व्याघात के अभाव में होने वाली उद्वर्तना और दलिक निक्षेप विधि पूर्वोक्त प्रकार है। सत्ता से अधिक होने वाले कर्मबध को व्याघात कहते है। व्याघात मे आवलिका का असख्यातवा भाग जघन्य और उत्कृष्ट यावत् आवलिका अतीत्थापना है।

सत्तागत स्थिति से अभिनव—नया स्थितिबध जब आवलिका के दो असख्यातवे भाग प्रमाण वढता है—होता है तब सत्तागत स्थिति मे की चरम स्थिति की उद्वर्तना होती है और एक आवलिका—पूर्ण आवलिका होने तक अतात्थापना वढती है।

अतीत्थापनावलिका की पूर्णता होने पर निषेक वढता है। स्थितिउद्वर्तना का स्वरूप इस प्रकार है। अब स्थिति-अपवर्तना का वर्णन किया जायेगा।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओ मे व्याघातभाविनी स्थिति-उद्वर्तना की व्याख्या करके उपसहारपूर्वक स्थिति-अपवर्तना का वर्णन प्रारभ करने का सकेत किया है। प्रथम व्याघातभाविनी स्थिति-उद्वर्तना की व्याख्या करते है—

सत्ता मे रही हुई स्थिति की अपेक्षा अधिक नवीन स्थिति के कर्मवध करने को व्याघात कहते हैं। उन समय आवलिका का असख्यातवां भाग अतीत्थापना है और वह वढते पूर्ण आवलिका प्रमाण होती है। तात्पर्य इस प्रकार है—

सत्ता मे विद्यमान स्थिति की अपेक्षा समय दो समय आदि द्वारा अधिक कर्म का जो नवीन वध होता है, उसे यहाँ व्याघात कहा गया है। उस समय अतीत्थापना जघन्य से आवलिका का असख्यातवा भाग होती है। वह इस प्रकार—सत्तागत स्थिति से समय मात्र अधिक कर्म का नवीन स्थितिवध हो तव पूर्व की सत्तागत स्थिति मे के चरमस्थितिस्थान की उद्वर्तना नही होती है, द्विचरम-उपान्त्य स्थिति की उद्वर्तना नही होती है। इस प्रकार

सत्तागत स्थिति के अतिम स्थान से लेकर आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिस्थान की उद्वर्तना नही होती है। इसी तरह सत्तागत स्थिति से दो समय अधिक कर्म का नवीन बध हो, तीन समय अधिक बध हो, यावत् सत्तागत स्थिति से आवलिका के असख्यातवें भाग अधिक नवीन कर्म का स्थितिबध हो, वहाँ तक भी सत्ता मे रहे हुए स्थिति के चरम आदि स्थानो की उद्वर्तना नही होती है, परन्तु जब आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक नवीन कर्म का स्थितिबध हो, तब सत्ता मे रही हुई स्थिति मे की चरमस्थिति की उद्वर्तना होती है और उस चरम स्थान की उद्-वर्तना करके उसके दलिको को उसके ऊपर के स्थान से आवलिका के पहला असख्यातवाँ भाग को उलाघकर दूसरे असख्यातवे भाग मे निक्षेप होता है। इस समय आवलिका का असख्यातवा भाग प्रमाण जघन्य निक्षेप और उतनी ही जघन्य अतीत्थापना घटित होती है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि सत्ता मे रही हुई स्थिति से जब तक आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक नवीन स्थिति का बध न हो, तब तक तो व्याघात नही होता है। उस समय जिस रीति से उद्वर्तना और निक्षेप होता है, उसी प्रकार यहाँ—व्याघात मे भी उद्वर्तना और निक्षेप होता है। व्याघात न हो तब यानि सत्ता मे रही हुई स्थिति के समान स्थिति जब बधे, तब सत्ता मे रही स्थिति मे के चरमस्थितिस्थान[1] की उद्वर्तना नही होती है, द्विचरमस्थान की उद्वर्तना नही होती है, यावत् आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग मे रहे हुए स्थितिस्थान की उद्वर्तना नही होती है, परन्तु उसके नीचे के स्थान की उद्वर्तना होती है, और उसके दलिक को ऊपर के स्थितिस्थान आवलिका छोडकर आवलिका के अतिम असख्यातवे भाग

---

१ एक साथ जितनी स्थिति बधे उसे बध्यमान स्थितिस्थान और एक साथ भोगनेयोग्य हुई दलिकरचना को सत्तागत स्थितिस्थान कहते है।

मे प्रक्षिप्त किया जाता है। उसी प्रकार सत्तागत स्थिति से जब तक आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक बध न हो, तब तक भी सत्तागत स्थिति मे के चरम, द्विचरम यावत् आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग मे रही हुई किसी स्थिति की उद्-वर्तना नही होती है, परन्तु उसके नीचे के स्थान की उद्वर्तना होती है। और उसके दलिक को उसके ऊपर के स्थितिस्थान से आवलिका छोड ऊपर के जितने स्थान हो उन सब मे प्रक्षेप होता है। यहा मात्र निक्षेप की ही वृद्धि हुई, क्योकि यहाँ निक्षेप लगभग आवलिका के तीन असख्यातवे भाग प्रमाण हुआ।

जब सत्तागत स्थिति से बराबर आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक स्थितिबध हो तब सत्तागत स्थिति मे के चरम स्थिति-स्थान की उद्वर्तना होती है। उस समय सत्तागत स्थिति से आव-लिका के दो असख्यातवे भाग अधिक स्थितिबध हुआ, यानि आवलिका का एक पहला असख्यातवा भाग अतीत्थापना[1] और आव-लिका का दूसरा असख्यातवा भाग निक्षेप होता है। अर्थात् सबसे कम निक्षेप और अतीत्थापना इस तरह और इतनी ही होती है। उद्-वर्तना मे इससे कम निक्षेप और अतीत्थापना नही होती है। जब समयाधिक आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक नवीन कर्म का बध होता है, तब चरम स्थान के दलिक को उसके ऊपर के स्थान से समयाधिक आवलिका के असख्यातवे भाग को उलाघने के बाद अतिम आवलिका के असख्यातवे भाग मे निक्षिप्त किया जाता है। यहाँ निक्षेप के स्थान तो उतने ही रहेगे मात्र अतीत्थापना समय प्रमाण बढी।

---

१ जितनी स्थिति को उलाघकर उद्वर्तित किये जाते स्थान के दलिक प्रक्षिप्त किये जाते है, वह उलाघने योग्य स्थिति अतीत्थापना कहलाती है और जितने स्थान मे प्रक्षिप्त होते है, उन्हे निक्षेप स्थान कहते है।

इस प्रकार से नवीन कर्म का बध समयादि बढने पर अतीत्थापना बढती है और वह वहा तक बढती है कि एक आवलिका पूर्ण हो। जव तक अतीत्थापना की आवलिका पूर्ण न हो तब तक निक्षेप आवलिका का असख्यातवा भाग ही रहता है। जैसे कि सत्तागत स्थिति से असख्यातवे भागाधिक आवलिका अधिक अभिनव–नवीन स्थिति का बध होता है तब सत्तागत स्थितियो के चरम स्थान के दलिको का उसके ऊपर के स्थान से पूर्ण एक आवलिका को उलाघकर ऊपर के अतिम आवलिका के असख्यातवे भाग में निक्षेप होता है, इस समय पूरी एक आवलिका अतीत्थापना और आवलिका के एक असख्यातवे भाग प्रमाण निक्षेप के स्थान है, उसके वाद जैसे-जैसे सत्तागत स्थिति से अभिनव कर्म का स्थितिबध बढता जाता है, वैसे-वैसे निक्षेप में वृद्धि होती जाती है और अतीत्थापना एक आवलिका ही रहती है।

उक्त समग्र कथन का साराश यह हुआ कि जब सत्ता मे रही हुई स्थिति की अपेक्षा अभिनव—नवीन स्थितिबध आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक होता है तव सत्ता में रही स्थिति मे की चरम स्थिति—स्थितिस्थान की उद्‌वर्तना होती है और उद्‌वर्तना करके उस चरम स्थिति के दलिक को आवलिका के पहले असख्यातवे भाग को उलाघकर दूसरे असख्यातवे भाग में प्रक्षेप किया जाता हे। सत्तागत स्थिति के चरम समय मे फल देने के लिये नियत हुए दलिक को उसके वाद से आवलिका का असख्यातवे भाग जाने के अनन्तर आवलिका के अतिम असख्यातवे भाग मे फल देने के लिये नियत हुए दलिको के साथ फल दे, ऐसा किया जाता हे। आवलिका का असस्यातवाँ भाग प्रमाण यह् अतीत्थापना और आवलिका का असख्यातवा भाग प्रमाण निक्षेप यह् जघन्य है। तत्पश्चात अभिनव स्थितिवध मे समयादिक द्वारा वृद्धि होने पर अतीत्थापना बढती है और वह वहाँ तक वढती है यावत् एक आवलिका पूर्ण हो। अतीत्थापना की आवलिका पूर्ण होने तक निक्षेप आवलिका

का असख्यातवा भाग ही रहता है और आवलिका पूर्ण होने पर निक्षेप बढता है।

तीसरी गाथा के दूसरे पद मे आगत 'इति' शब्द उद्वर्तना की वक्तव्यता की समाप्ति का सूचक है। जिसका यह अर्थ है कि जब तक नवीन स्थितिबंध पहले से सत्ता मे रही हुई स्थिति से आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक नही होता है, तब तक पहले से सत्ता मे रही हुई स्थिति मे की चरम स्थितिस्थान से एक आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति की उद्वर्तना नही की जाती है। उससे नीचे की स्थिति की ही जीवस्वभाव से उद्वर्तना होती है। उसमे भी जब असख्यातवे भाग अधिक आवलिका को उलाघकर नीचे के स्थान की उद्वर्तना होती है तब उसके ऊपर के स्थान से आवलिका को उलाघकर ऊपर के आवलिका के असख्यातवे भाग मे निक्षेप किया जाता है[1] और उससे नीचे की दूसरी स्थिति की उद्वर्तना की जाती है तब समयाधिक असख्यातवे भाग मे निक्षेप किया जाता है।

---

1 इस समय निक्षेप की विषयरूप स्थिति आवलिका के दो असख्यातवे भाग और तीसरा अपूर्ण असख्यातवा भाग होना चाहिए। क्योंकि सत्तागत स्थिति के चरम स्थान से लेकर आवलिका और आवलिका के असख्यातवे भाग के नीचे के स्थान की उद्वर्तना की जाती है और नवीन स्थितिबंध सत्तागत स्थिति से कुछ न्यून आवलिका के दो असख्यातवें भाग अधिक है, जिससे यहाँ जिस स्थान की उद्वर्तना होती है, उसके ऊपर के स्थान से अतीत्थापना-आवलिका का उल्लघन करने पर निक्षेप की विषयरूप स्थिति आवलिका के दो असख्यातवे भाग अधिक है। जिससे यहाँ जिस स्थान की उद्वर्तना होती है, उसके ऊपर के स्थान से अतीत्थापनावलिका को उलाघने पर निक्षेप की विषयरूप स्थिति आवलिका से दो असख्यातवें भाग और तीसरा अपूर्ण असख्यातवां भाग सभव है।

का उल्लघन करके अपने समयाधिक तीसरे भाग में निक्षेप होता है ।

विशेषार्थ—स्थिति की अपवर्तना करता हुआ जीव उदयावलिका से बाहर के स्थितिस्थानो की अपवर्तना करता है किन्तु सकलकरण के अयोग्य होने के कारण उदयावलिकागत स्थानो की अपवर्तना नही होती है ।

जिस स्थान की अपवर्तना की जाती है, उसके दलिक शेष समय न्यून दो तृतीयाश भाग प्रमाण स्थानो को उलाघकर समयाधिक आवलिका के तीसरे भाग में निक्षिप्त किये जाते है । इसका तात्पर्य यह है कि उदयावलिका से ऊपर की समय मात्र स्थिति की अपवर्तना होने पर उसके दलिक को उदयावलिका के ऊपर के समय न्यून दो तृतीयाश स्थानो का उल्लघन कर नीचे के समयाधिक तीसरे भाग में निक्षिप्त किया जाता है । यह जघन्यनिक्षेप और जघन्य अतीत्थापना है ।

इसको असत्कल्पना से इस प्रकार समझा जा सकता है कि उदयावलिका का प्रमाण नौ समय माना जाये तो उदयावलिका के ऊपर के स्थान के दलिक को उदयावलिका के अतिम पाच समय को उलाघकर नीचे के उदय समय से लेकर चार समय में निक्षिप्त किये जाते है । क्योकि दो भाग के छह समय होते है और उनमें एक समय न्यून लेना है, जिससे वे पाँच समय प्रमाण हुए । उतनी अतीत्थापना हुई और निक्षेप समयाधिक तीसरा भाग है, उसके चार समय होते है, जिससे उतने में निक्षेप होता है और वह जघन्य निक्षेप है ।

जिस समय उदयावलिका से ऊपर के दूसरे स्थितिस्थान की अपवर्तना की जाती हे तव पहले जो अतीत्थापना कही है, वह समयाधिक होती हे और निक्षेप उतना ही रहता हे । जव उदयावलिका से ऊपर के तीसरे स्थितिस्थान की अपवर्तना होती है तव

अतीत्थापना दो समय से अधिक होती है और निक्षेप उतना ही रहता है। इस प्रकार से अतीत्थापना की आवलिका पूर्ण न हो वहाँ तक अतीत्थापना बढती है और उसके बाद निक्षेप में वृद्धि होती है।

अव इसी आशय को विशेष रूप से स्पष्ट करते है—

उदयावलि उवरित्था एमेवोवट्टए ठिइट्ठाणा।

जावावलियतिभागो समयाहिगो सेसठितिण तु ॥१०॥

शब्दार्थ—उदयावलि उवरित्था—उदयावलिका से ऊपर के, एमेवोवट्टए—इसी प्रकार से अपवर्तना होती है, ठिइट्ठाणा—स्थितिस्थान, जावावलियतिभागो—यावत् आवलिका के तीसरे भाग, समयाहिगो—समय अधिक, सेसठितिण—शेप स्थिति निक्षेप विषय का, तु—और।

गाथार्थ—अतीत्थापना की आवलिका पूर्ण होने तक उदयावलिका से ऊपर के स्थितिस्थानो की अपवर्तना इसी प्रकार से (ऊपर कहे अनुसार) होती है और इस अतीत्थापना की आवलिका जव तक पूर्ण न हो तब तक निक्षेप विपयक स्थिति समयाधिक तीसरा भाग ही रहती है।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त रीति से उदयावलिका से ऊपर रहे हुए स्थितिस्थानो की तव तक अपवर्तना होती है यावत् अतीत्थापनावलिका पूर्ण हो। जव तक अतीत्थापनावलिका पूर्ण न हो तव तक निक्षेप के विपय रूप स्थितिस्थान समयाधिक आवलिका का तीसरे भाग ही रहते है। किन्तु अतीत्थापना की आवलिका पूर्ण होने के वाद अतीत्थापना आवलिका मात्र ही रहती है और निक्षेप के विपयरूप स्थितिस्थान वढते है और वे निक्षेप के विपयरूप स्थितिस्थान अतीत्थापनावलिका से रहित सपूर्ण कर्मस्थिति प्रमाण हे।

इस प्रकार से स्थिति-अपवर्तना की विधि का कथन करने के पश्चात अव अपवर्तना के सामान्य नियम का निर्देश करते हैं।

अपवर्तना का सामान्य नियम

इच्छोवट्टणठिइठाणगाउ उल्लंघिऊण आवलियं ।
निक्खिवइ तद्दलियं अह ठितिठाणेसु सव्वेसु ।।११।।

शब्दार्थ—**इच्छोवट्टणठिइठाणगाउ**—इष्ट अपवर्तनीय स्थितिस्थान से, **उल्लंघिऊण**—उलाघकर , **आवलिय**—आवलिका को, **निक्खिवइ**—निक्षिप्त किया जाता है, **तद्दलिय**—उसके दलिक को, **अह**—अथ—अब, **ठितिठाणेसु**—स्थितिस्थानो मे, **सव्वेसु**—सब ।

गाथार्थ—इष्ट अपवर्तनीय स्थितिस्थान से आवलिका को उलाघकर उसके दलिक का सब स्थितिस्थानो मे निक्षिप्त किया जाता है ।

विशेपार्थ—जिस-जिस स्थान की अपवर्तना करना इष्ट हो, अर्थात् जीव जिस-जिस स्थितिस्थान की अपवर्तना करता है उसके दलिक को उसके नीचे के स्थान से आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानो को उलाघकर नीचे रहे समस्त स्थानो मे निक्षिप्त करता है। इस प्रकार होने से जब सत्ता मे रही हुई स्थिति मे के अतिम स्थिति-स्थान की अपवर्तना करता है तब उसके दलिक को उसके नीचे के स्थान से आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानो को उलाघकर नीचे रहे हुए समस्त स्थितिस्थानो मे निक्षिप्त कर सकता है। जिस समय कर्म बधता है, उस समय से एक आवलिका जाने के वाद उसकी अपवर्तना करता है. इसलिये बधावलिका के व्यतीत होने के बाद समयाधिक अतीत्थापनावलिका रहित सम्पूर्ण कर्मस्थिति उत्कृष्ट निक्षेप की विषय रूप है । तथा—

उदयावलिउवरित्थं ठाणं अहिकिच्च होइ अइहीणो ।
निक्खेवो सव्वोवरिठिइठाणवसा भवे परमो ।।१२।।

शब्दार्थ—**उदयावलिउवरित्थ**—उदयावलिका से ऊपर रहे, **ठाण**—स्थान, **अहिकिन्च**—अधिकृत करके, **होइ**—होता है, **अइहीणो**—

अतिहीन जघन्य, निक्खेवो—निक्षेप, सव्वोवरिठिइठाणवसा—सर्वोपरितन स्थितिस्थान की अपेक्षा, भवे—होता है, परमो—उत्कृष्ट।

गाथार्थ—उदयावलिका से ऊपर रहे हुए स्थान को अधिकृत करके अति जघन्य निक्षेप है और सर्वोपरितन स्थितिस्थान की अपेक्षा उत्कृष्ट निक्षेप होता है।

विशेषार्थ—जब उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की अपवंतना होती है तब उस अपवर्तनीय स्थान की अपेक्षा समयाधिक आवलिका का एक तृतीयाश भाग रूप जघन्य निक्षेप सभव है। क्योकि उदयावलिका स ऊपर की स्थिति की अपवर्तना होती है तब उसके दलिक को समय न्यून आवलिका के एक तृतीयाश भाग मे प्रक्षिप्त किया जाता है और जब सत्तागत स्थिति मे की ऊपर की अतिम स्थिति की अपवर्तना होती है तब उस स्थिति स्थितिस्थान की अपेक्षा यथोक्त रूप उत्कृष्ट निक्षेप सभव है। क्योकि उत्कृष्ट स्थिति का वध करके वधावलिका के व्यतीत होने के वाद उसकी अपवर्तना हो सकती है। वधावलिका के बीतने के वाद आवलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति सत्ता मे होती है। उसमे की जब अतिम स्थिति की अपवर्तना होती है तब उसके दलिको का अपवर्त्यमान स्थिति-स्थान से नीचे के स्थितिस्थान से आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानो को छोड नीचे के समस्त स्थानो मे निक्षिप्त किया जाता है। इस प्रकार से अतिम स्थितिस्थान की अपेक्षा समयाधिक दो आवलिका न्यून उत्कृष्ट निक्षेप सभव हे।

इस प्रकार से जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेप का कथन करने के वाद अव यह वताते है कि कितनी स्थितिया निक्षेप की विपय रूप है और कितनी स्थितिया अपवर्तनीय होती है।

निक्षेप और अपवर्तना की विषयभूत स्थितिया—

समयाहियइत्थवणा वधावलिया य मोत्तु निक्खेवो।
कम्मट्ठिइ वधोदयआवलिया मोत्तु ओवट्टे ॥ १३॥

शब्दार्थ—समयाहियइत्थवणा—समयाधिक अतीत्थापनावलिका, बधावलिया—बधावलिका, य—और, मोत्तु—छोडकर, निक्खेवो—निक्षेप, कम्मट्ठिइ—कर्मस्थिति, बधोदयआवलिया—बधावलिका और उदयावलिका, मोत्तु—छोडकर, ओवट्टे—अपवर्तना होती है।

गाथार्थ—समयाधिक अतीत्थापनावलिका और बधावलिका को छोडकर शेष स्थिति निक्षेप रूप है तथा बधावलिका एव उदयावलिका छोड शेष स्थिति की अपवर्तना होती है।

विशेषार्थ—अपवर्तना के विषय मे समयाधिक अतीत्थापनावलिका और बधावलिका प्रमाण स्थितियो को छोडकर शेष समस्त स्थितियाँ निक्षेप की विषय-रूप है। अर्थात् शेष सभी स्थितियो मे दलिक निक्षेप किया जाता है। क्योकि प्रतिसमय बध रहा कर्म बधावलिका के बीतने के बाद करण योग्य होता है किन्तु जब तक बधावलिका न बीती हो तब तक किसी भी करण के योग्य नही होता है तथा जिस स्थान की अपवर्तना की जाती है, उसके दलिक को उसी मे निक्षिप्त नही किया जाता हे किन्तु उससे नीचे के स्थितिस्थान से एक आवलिका प्रमाण स्थानो को छोड नीचे के समस्त स्थानो मे निक्षिप्त किया जाता है। इसलिये बधावलिका और समयाधिक अतीत्थापनावलिका को छोड शेष समस्त स्थितिया निक्षेप की विषय रूप है तथा—

बधावलिका और उदयावलिका को छोडकर शेष समस्त कर्मस्थिति की अपवर्तना की जा सकती हे। क्योकि बधावलिका के जाने के बाद बद्धस्थिति अपवर्तित होती है और वह भी उदयावलिका से ऊपर रही हुई स्थिति अपवर्तित होती है, उदयावलिका के अन्तर्गत रही हुई स्थिति अपवर्तित नही होती है। इसलिये बधावलिका तथा उदयावलिकाहीन सम्पूर्ण कर्म स्थिति ये अपवर्तना की विषय रूप है।

इस प्रकार से व्याघात के अभाव मे होने वाली अपवर्तना का स्वरूप जानना चाहिये। अब व्याघात भाविनी अपवर्तना की विधि का निरूपण करते है।

व्याघातभाविनी अपवर्तना—

निव्वाघाए एव ठिइघातो एत्थ होइ वाघाओ ।

वाघाए समऊण कडगमइत्थावणा होई ॥१४॥

शब्दार्थ—निव्वाघाए एव—निर्व्याघातभाविनी का पूर्वोक्त प्रकार से, ठिइघातो—स्थितिघात, एत्थ—यहाँ, होइ—है, वाघाओ—व्याघात, वाघाए—व्याघात मे, समऊण—समयन्यून, कडगमइत्थावणा—कडक प्रमाण स्थिति अतीत्थापना, होई—होती है ।

गाथार्थ—निर्व्याघातभाविनी अपवर्तना का स्वरूप पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये । यहाँ व्याघात स्थितिघात को कहते हैं । व्याघात मे समयन्यून कडकप्रमाण स्थिति अतीत्थापना है ।

विशेपार्थ—पूर्व मे जो अपवर्तना की व्याख्या की है, वह व्याघात के अभाव मे होने वाली अपवर्तना का स्वरूप जानना चाहिये । अव व्याधातभाविनी अपवर्तना का स्वरूप वतलाते हैं कि—

व्याघात मे अपवर्तना अन्य रीति से होती है । स्थिति के घात को व्याघात कहते है । जव वह व्याघात प्राप्त होता है, यानि कि स्थितिघात होता है तव समयन्यून कडकप्रमाण स्थिति अतीत्थापना होती है ।

यहाँ समयन्यून इसलिये कहा है कि ऊपर की समय मात्र स्थिति की अपवर्तना होती है तव अपवर्तित होते उस स्थितिस्थान के साथ नीचे से कडक प्रमाण स्थिति अतिक्रमित होती है । इसलिये अपवर्तित होते उस समय के विना कडक प्रमाण स्थिति अतीत्थापना होती है ।

इस प्रकार मे व्याघातभाविनी अपवर्तना मे अतीत्थापना का प्रमाण जानना चाहिये । अव इसी प्रसग मे आये कडक का स्वरूप और उसका प्रमाण वतलाते हैं ।

कंडक निरूपण

उक्कोस डायट्ठिई किंचूणा कंडग जहण्ण तु ।

पल्लासखस डायट्ठिई उ जतो परमबंधो ॥१५॥

शब्दार्थ—उक्कोस—उत्कृष्ट, डायट्ठिई—डायस्थिति, किचूणा—कुछ न्यून, कडग—कडक, जहण्ण—जघन्य, तु—और, पल्लासखस—पल्योपम का असख्यातवा भाग, डायट्ठिई—डायस्थिति, उ—और, जतो—जिससे, परमबधो—उत्कृष्ट बध ।

गाथार्थ—कडक का उत्कृष्ट प्रमाण कुछ न्यून उत्कृष्ट स्थिति रूप डायस्थिति है और जघन्य प्रमाण पल्योपम का असख्यातवा भाग है । जिस स्थिति से उत्कृष्ट स्थितिबध होता है उससे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबध पर्यन्त सभी डायस्थिति कहलाती है ।

विशेषार्थ—जिस स्थिति से लेकर उत्कृष्टस्थितिबध होता है उस स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति तक की समस्त स्थिति डायस्थिति कहलाती है और वह कुछ न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण है। क्योकि पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीव अन्त कोडाकोडी प्रमाण स्थिति बध करके अनन्तर समय मे उत्कृष्ट सक्लेश के कारण उत्कृष्ट स्थिति-बध करता है। अर्थात् अन्त कोडाकोडी से लेकर उत्कृष्ट स्थिति-बध तक की समस्त स्थिति डायस्थिति कहलाती है और वह डाय-स्थिति अन्त कोडाकोडी न्यून उत्कृष्ट प्रमाण होने से कुछ न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण होती है यह डायस्थिति[1] कडक का उत्कृष्ट प्रमाण है।

व्याघात मे यह समयन्यून कडक प्रमाण स्थिति उत्कृष्ट अतीत्थापना है और व्याघात कहते है स्थितिघात को। यह व्याघात प्राप्त होता है तब ऊपर के स्थान के दलिक को अपवर्तित होती स्थिति के साथ उक्त स्वरूप वाले कडक प्रमाण स्थितिस्थानो को

१ यहाँ किचूणा पद उत्कृष्ट स्थिति का विशेषण बताया है जिससे डाय-स्थिति को कुछ न्यून कर्मस्थिति प्रमाण यानि अत कोडाकोडी न्यून उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा है और कर्म प्रकृति मे इसी पद को डाय-स्थिति का विशेषण माना है जिससे कुछ न्यून डायस्थिति कडक का उत्कृष्ट प्रमाण कहा है। इस अतर को विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

उलाघकर अन्त कोडाकोडी मे निक्षिप्त किया जाता है। इसलिये समयन्यून कडक प्रमाण स्थिति उत्कृष्ट अतीत्थापना बताई है।

यह उत्कृष्ट कडक समय मात्र न्यून भी कडक कहलाता है, जिसको इतनी स्थिति की सत्ता होती है। इसी प्रकार दो समय-न्यून, तीन समय न्यून भी कडक कहलाता है। इस प्रकार न्यून-न्यून होते-होते पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण भी कडक कहलाता है और वह जघन्य कडक है।

पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति व्याघात मे जघन्य अतीत्थापना है।

अब अल्पबहुत्व का कथन करते है—

अपवर्तना मे जघन्य निक्षेप सबसे अल्प है। क्योकि वह समयाधिक आवलिका का तीसरा भाग प्रमाण है। उससे जघन्य अतीत्थापना तीन समयन्यून दुगनी है। उससे तीन समयन्यून दुगुनी होने का कारण यह है कि व्याघात रहित जघन्य अतीत्थापना समयन्यून आवलिका के दो तृतीयाश भाग प्रमाण है। जिसका सकेत पूर्व मे किया जा चुका है। जिसको असत्कल्पना से इस प्रकार समझे कि आवलिका नौ समय प्रमाण है तो समयन्यून दो तृतीयाश भाग पाँच समय प्रमाण होता है, इतनी जघन्य अतीत्थापना है। जघन्य निक्षेप समयाधिक आवलिका का एक तृतीयाश भाग है और यह समयाधिक एक तृतीयाश भाग असत्कल्पना से चार समय प्रमाण होता है। उस जघन्य निक्षेप को दुगुना करके उसमे से तीन न्यून करे तो पाँच समय रहते है जो कि अतीत्थापना का जघन्य प्रमाण है। इसीलिये यह कहा है कि जघन्य निक्षेप से जघन्य अतीत्थापना तीन समय से न्यून दुगुनी है। उससे व्याघात विना की उत्कृष्ट अतीत्थापना विशेषाधिक है। क्योकि वह पूर्ण एक आवलिका प्रमाण है। उससे व्याघात मे उत्कृष्ट अतीत्थापना असख्यात गुण है। क्योकि वह उत्कृष्ट डाय-स्थिति प्रमाण है। उससे उत्कृष्ट निक्षेप विशेषाधिक है। क्योकि वह

समयाधिक दो आवलिकान्यून सपूर्ण कर्मस्थिति प्रमाण है और उससे सपूर्ण कर्मस्थिति विशेपाधिक है। क्योकि उत्कृष्ट निक्षेप मे जो न्यून कहा है, वह इसमे मिल जाता है।

अव उद्‌वर्तना और अपवर्तना दोनो के सम्मिलित अल्पवहुत्व का कथन करते है—

उद्‌वर्तना मे व्याघातविपयक जघन्य अतीत्थापना और जघन्य निक्षेप सर्वस्तोक है और स्वस्थान मे परस्पर तुल्य है। क्योकि दोनो आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण है। उससे अपवर्तना मे जघन्य निक्षेप असख्यात गुण है। क्योकि वह समयाधिक आवलिका के तीसरे भाग प्रमाण है और आवलिका के असख्यातवे भाग से समयाधिक तीसरा भाग असख्यात गुण होता है। उससे अपवर्तना मे जघन्य अतीत्थापना तीन समय न्यून द्विगुण है। इसका कारण पूर्व मे वताया जा चुका है। उससे अपवर्तना मे ही निर्व्याघात उत्कृष्ट अतीत्थापना विशेपाधिक है। क्योकि वह पूर्ण आवलिका प्रमाण है। उससे उद्‌वर्तना मे उत्कृष्ट अतीत्थापना सख्यातगुण है। क्योकि वह उत्कृष्ट अवाधा रूप है। उससे अपवर्तना मे व्याघात विपयक उत्कृष्ट अतीत्थापना असख्यात गुण है। इसका कारण यह है कि वह उत्कृष्ट डायस्थिति प्रमाण है। उससे उद्‌वर्तना मे उत्कृष्ट निक्षेप विशेपाधिक है और उससे अपवर्तना मे उत्कृष्ट निक्षेप विशेपाधिक है। उससे सम्पूर्ण कर्मस्थिति विशेषाधिक है।

इस प्रकार से स्थिति-अपवर्तना का वर्णन समाप्त हुआ। अव अनुभाग की उद्‌वर्तना-अपवर्तना का कथन क्रम प्राप्त है। व्याघात और निर्व्याघात के भेद से इनके भी दो प्रकार है। उन दोनो मे से पहले निर्व्याघातभाविनी अनुभाग-उद्‌वर्तना का विचार करते है।

निर्व्याघातिनी अनुभाग उद्‌वर्तना

> **चरिम नोवट्टिज्जइ जाव अणताणि फड्ढगाणि तओ।**
> **उस्सक्किय उव्वट्टइ उदया ओवट्टणा एवं ॥१६॥**

शब्दार्थ—चरिम—चरम स्पर्धक, नोवट्टिज्जइ—उद्वर्तना नही होती, जाव—यावत्, अणताणि—अनन्त, फड्डगाणि—स्पर्धक, तओ—उससे, उस्सक्किय—नीचे उतरकर, उव्वट्टइ—उद्वर्तना होती है, उदया—उदय समय से, ओवट्टणा—अपवर्तना, एव—इसी प्रकार ।

गाथार्थ—चरम स्पर्धक की उद्वर्तना नही होती, यावत् अनन्त स्पर्धको की उद्वर्तना नही होती, किन्तु नीचे उतरकर समय मात्र स्थितिगत स्पर्धक की उद्वर्तना होती है। उदय समय से लेकर अनुभाग की अपवर्तना स्थिति-अपवर्तना के समान होती है ।

विशेषार्थ—चरम अनुभाग स्पर्धक की, द्विचरम स्पर्धक की, त्रिचरम स्पर्धक की उद्वलना नही होती है। इस प्रकार चरम स्पर्धक से लेकर यावत् अनन्त स्पर्धको की उद्वर्तना नही होती हे। यानि सत्ता जितनी स्थिति का वध होता हो तव, या सत्ता से अधिक स्थिति का वध होता हो तव जिस स्थिति की उद्वर्तना होती है, उस स्थितिस्थान मे रहे हुए रसस्पर्धको—दलिको के रस की भी उद्वर्तना होती है तथा उद्वर्त्यमान स्थिति के दलिको का जहाँ निक्षेप होता है, उसमे उद्वर्त्यमान रस स्पर्धको का भी निक्षेप होता है। अर्थात् उसके समान रस वाले होते है। इस नियम के अनुसार जैसे स्थिति की उद्वर्तना मे व्याघात के अभाव मे ऊपर के स्थान से आवलिका के असख्यातवे भाग और आवलिका प्रमाण स्थानो की उदवर्तना नही होती, उसी प्रकार उतने स्थितिस्थानो मे के दलिक के रम स्पर्धको की भी उद्वर्तना नही होती है।

तात्पर्य यह कि सर्वोपरितन आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण स्थिति रूप जो निक्षेप है उसका तथा उसके नीचे के अतीत्थापनावलिका प्रमाण जो स्थितिस्थान हैं, उनके रसस्पर्धक की उद्वर्तना तथास्वभाव से जीव द्वारा नही की जाती है। परन्तु उसके नीचे के समय मात्र स्थितिगत जो स्पर्धक है, उनकी उद्वर्तना

होती है और अतीत्थापनावलिका गत अनन्त स्पर्धको को उलाघकर ऊपर के अन्तिम आवलिका के असख्यातवे भाग मे रहे स्पर्धको में निक्षेप होता है। यानि उद्वर्त्यमान रसस्पर्धक निक्षेप के स्पर्धको के समान रसवाले हो जाते है। इस प्रकार जैसे-जैसे नीचे उतरना होता है, वैसे-वैसे निक्षेप बढता है और अतीत्थापना सर्वत्र आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानगत स्पर्धक ही रहते है। इस प्रकार जिस-जिस स्थानगत रसस्पर्धको की उद्वर्तना होती है उसे उसके ऊपर के स्थितिस्थानगत स्पर्धक से लेकर आवलिका प्रमाण स्थानगत स्पर्धको को उलाघकर ऊपर के स्थान में निक्षिप्त किया जाता है, यानि कि उनके समान रस वाला किया जाता है।

इस प्रकार से व्याघात के अभाव में जिन स्थितियो की उद्वर्तना होती है उनके रसस्पर्धको की भी उद्वर्तना होती है और उद्वर्त्यमान दलिक जहाँ निक्षिप्त किये जाते है, रसस्पर्धको का भी वही निक्षेप किया जाता है। अर्थात् उनके समान रस वाला किया जाता है।

इसी प्रकार व्याघातभाविनी अनुभाग-उद्वर्तना मे भी समझना चाहिये।

अब यह स्पष्ट करते है कि उत्कृष्ट निक्षेप कितना है।

बधावलिका के बीतने के बाद समयाधिक आवलिकागत स्पर्धको को छोडकर शेष समस्त स्पर्धक निक्षेप के विषय रूप हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि जिस स्थितिस्थान में के स्पर्धको की उद्वर्तना होती है उस स्थान में के स्पर्धको का उसी स्थान मे ही निक्षेप नही होता है, इस कारण उन उद्वर्त्यमान स्थितिस्थानगत स्पर्धको को, आवलिकामात्रगत स्पर्धक अतीत्थापना है, अत आवलिका प्रमाण स्थानगत स्पर्धको को तथा बधावलिका व्यतीत होने के बाद ही करण योग्य होते है, जिससे उस बधावलिका को, इस प्रकार कुल मिलाकर समयाधिक दो आवलिकागत स्पर्धको को छोडकर शेष समस्त स्थानगत स्पर्धक निक्षेप के विषयरूप होते है।

अव एतद् विषयक अल्पबहुत्व का निर्देश करते है—

जघन्य निक्षेप सबसे अल्प है। क्योकि वह मात्र आवलिका के असख्यातवे भाग मे रहे हुए स्पर्धक रूप है। उससे अतीत्थापना अनन्त गुण है। क्योकि निक्षेप के विषयरूप स्पर्धको से अतीत्थापनावलिका के विषयरूप स्पर्धक अनन्त गुणे है। इसी प्रकार अनुभाग के विषय मे सर्वत्र अनन्तगुणत्व स्पर्धक की अपेक्षा समझना चाहिये। उससे उत्कृष्ट निक्षेप अनन्त गुण है और उससे समस्त अनुभाग विशेषाधिक है।

इस प्रकार से अनुभाग-उद्वर्तना का स्वरूप जानना चाहिये। अव अतिदेश द्वारा अनुभाग अपवर्तना का वर्णन करते है।

अनुभाग-अपवर्तना

जिस प्रकार से ऊपर अनुभाग-उद्वर्तना का स्वरूप कहा है, उसी प्रकार से अनुभाग-अपवर्तना का स्वरूप भी जानना चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि उदय समय से प्रारभ करके स्थिति की अपवर्तना के समान उसका वर्णन करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस स्थितिस्थान की अपवर्तना होती है, उसी स्थितिस्थान मे के रसस्पर्धको की भी अपवर्तना होती है और अपवर्त्यमान स्थिति के दलिको का जिसमे प्रक्षेप किया जाता है रसस्पर्धको का भी उसी मे प्रक्षेप किया जाता है—अपवर्त्यमान रसस्पर्धको को निक्षेप के स्पर्धको के तुल्य शक्ति वाला किया जाता है।[1]

---

१ यहाँ इतना विशेष समझना चाहिये कि उद्वर्तना वधसापेक्ष है, जिससे जितनी स्थिति या रस वध हो, उसके समान सत्तागत स्थिति और रस को किया जाता है, अधिक नही। परन्तु अपवर्तना का वध के साथ सम्बन्ध नही है, जिससे अपवर्त्यमान रसस्पर्धको का जिसमे निक्षेप होता है, उसके समान रस वाले तो होते है, परन्तु अत्यन्त विशुद्ध परिणाम के योग से वध द्वारा प्राप्त हुए सत्तागत स्पर्धको से भी अत्यन्त हीन रस वाले होते है।

किस स्थितिस्थान मे के रसस्पर्धको की अपवर्तना होती है और उनका निक्षेप कहाँ होता है ? अब यह स्पष्ट करते है—

प्रथम स्पर्धक की अपवर्तना नही होती, दूसरे स्पर्धक की, तीसरे की यावत् आवलिका मात्र स्थितिगत स्पर्धको की अपवर्तना नही होती परन्तु उनके ऊपर के स्थानगत स्पर्धक की अपवर्तना होती है। उसमे जब उदयावलिका से ऊपर के समयमात्र स्थितिगत स्पर्धक की अपवर्तना होती हे तब उसका आवलिका के समय न्यून दो तृतीयाश स्थितिस्थानगत स्पर्धको को उलाघकर उदयस्थान से लेकर आवलिका के समयाधिक एक तृतीयाश स्थितिस्थानगत स्पर्धको मे निक्षेप होता हे। जब उदयावलिका से ऊपर के दूसरे समय मात्र स्थितिगत स्पर्धक की अपवर्तना होती हे तब पूर्वोक्त आवलिका के समय न्यून दो तृतीयाश भाग प्रमाण अतीत्थापना समय मात्र स्थितिगत स्पर्धक द्वारा अधिक समझना चाहिये और निक्षेप के स्पर्धक तो उतने ही होते है। इस प्रकार समय-समय की वृद्धि से अतीत्थापना मे वहाँ तक वृद्धि करनी चाहिये यावत् आवलिका पूर्ण हो। तत्पश्चात् अतीत्थापना सर्वत्र आवलिका प्रमाण स्थितिस्थानगत स्पर्धक रूप ही रहती है और निक्षेप बढता है।

इस प्रकार से निर्व्याघातभाविनी अपवर्तना का स्वरूप जानना चाहिये।

व्याघात मे समयमात्र स्थितिगत स्पर्धक द्वारा न्यून अनुभाग कंडक अतीत्थापना जानना चाहिये। कंडक का प्रमाण और समय-न्यूनता का कारण आदि जैसा पहले स्थिति की अपवर्तना मे कहा गया है, तदनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

अब पूर्वोक्त कथन को अधिक विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिये आचार्य गाथा सूत्र कहते है—

अइत्थावणाइयाओ सण्णाओ दुसुवि पुव्ववुत्ताओ।
किंतु अणंतभिलावेण फड्डगा तासु वत्तव्वा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—अइत्थावणाइयाओ—अतीत्थापना आदि, सण्णाओ—सज्ञायें, दुसुवि—दोनो मे (उद्वर्तना और अपवर्तना मे), पुव्ववुत्ताओ—पूर्व मे कही गई है, किंतु—लेकिन, अणतभिलावेण—अनन्त अभिलाप से, फड्डगा—स्पर्धक, तासु—उनमे, वत्तव्वा—कहना चाहिये।

गाथार्थ—रस-अनुभाग की उद्वर्तना और अपवर्तना इन दोनो मे अतीत्थापना आदि सज्ञाये जैसी पूर्व मे कही गई हैं, तदनुसार जानना चाहिये किन्तु दोनो मे स्पर्धक अनन्ताभिलाप से कहना चाहिये।

विशेषार्थ—अनुभाग की उद्वर्तना और अपवर्तना मे जघन्य अतीत्थापना, उत्कृष्ट अतीत्थापना तथा आदि शब्द से जघन्य निक्षेप और उत्कृष्ट निक्षेप आदि सज्ञाये पूर्व मे कहे गये अनुसार जानना चाहिये। अर्थात् स्थिति की उद्वर्तना और अपवर्तना मे अतीत्थापना और निक्षेप का जो जघन्य, उत्कृष्ट प्रमाण कहा है, वही प्रमाण यहाँ जानना चाहिये। क्योकि जिस स्थिति की उद्वर्तना या अपवर्तना होती है, उसी स्थानगत रसस्पर्धक की भी उद्वर्तना या अपवर्तना होती है। स्थिति की उद्वर्तना या अपवर्तना मे जिस स्थितिस्थानगत दलिको का जहाँ निक्षेप होता है, उस स्थानगत रसस्पर्धको का भी वही निक्षेप होता है। किन्तु यहाँ इतना विशेप है कि निक्षेप और अतीत्थापनादि रूप सज्ञाओ मे स्पर्धक अनन्त प्रमाण कहना चाहिये। अर्थात् अनन्त स्पर्धक उनमे होते है।[1]

इस प्रकार से अनुभाग-अपवर्तना का वर्णन करने के पश्चात् अब अनुभागअपवर्तना मे अल्पवहुत्व का कथन करते है—

---

1 प्रत्येक स्थितिस्थान अनन्त स्पर्धक प्रमाण होता है। जिससे उद्वर्तना अनन्त स्पर्धको की होती है, इसी प्रकार उसका निक्षेप भी अनन्त स्पर्धक मे होता है। इसीलिये यहाँ निक्षेप और अतीत्थापना आदि सज्ञाओ में रसस्पर्धको को अनन्त शब्द द्वारा अभिलाप्य कहा है।

जघन्य निक्षेप सबसे अल्प है। क्योकि वह आवलिका का समयाधिक एक तृतीयाश भाग है। उससे जघन्य अतीत्थापना अनन्त गुण है। अनन्तगुणता का कारण यह है कि वह समयन्यून आवलिका के दो तृतीयाश भाग प्रमाण है। उससे व्याघात मे अतीत्थापना अनन्तगुण है। क्योकि वह समयन्यून कडक प्रमाण है और व्याघात मे कटक का प्रमाण पहले कहा जा चुका है। उससे उत्कृष्ट अनुभाग कडक विशेपाधिक है। क्योकि वह अतीत्थापना से एक समय गत स्पर्धक द्वारा अधिक है और उससे उत्कृष्ट निक्षेप विशेपाधिक हे। उससे सर्व अनुभाग विशेपाधिक है।

इस प्रकार मे अनुभाग-अपवर्तना विपयक अल्पवहुत्व जानना चाहिये। अव उद्वर्तना-अपवर्तना के सयुक्त अल्पवहुत्व का कथन करते है—

थोवं पएसगुणहाणि अतरे दुसु वि हीणनिक्खेवो।
तुल्लो अणतगुणिओ दुसु वि अइत्थावणा चेव ॥१८॥
तत्तो वाघायणुभागकडग एक्कवग्गणाहीणं।
उक्कोसो निक्खेवो तुल्लो सविसेस सत च ॥१९॥

शब्दार्थ—थोव—स्तोक—अल्प, पएसगुणहाणि अतरे—प्रदेश की गुण वृद्धि या हानि के अतर मे, दुसु वि—दोनो मे ही, हीणनिक्खेवो—जघन्य निक्षेप, तुल्लो—तुल्य, अणतगुणिओ—अनन्तगुण, दुसु वि—दोनो मे, अइत्थावणा—अतीत्थापना, चेव—और इसी प्रकार।

तत्तो—उससे, वाघायणुभागकडग—व्याघात मे अनुभागकडक, एक्कवग्गणाहीण—एक वर्गणाहीन, उक्कोसो—उत्कृष्ट, निक्खेवो—निक्षेप, तुल्लो—तुल्य, सविसेस—विशेपाधिक, सत—सत्ता, च—और।

गाथार्थ—प्रदेश की गुण वृद्धि या हानि के अतर मे रहे हुए स्पर्धक अल्प है। उनसे दोनो मे—उद्वर्तना-अपवर्तना मे जघन्य निक्षेप अनन्तगुण है और परस्पर तुल्य है। उससे दोनो मे अतीत्थापना अनन्तगुण है और परस्पर तुल्य है।

उससे व्याघात में एक वर्गणाहीन अनुभागकडक अनन्तगुण है। उससे दोनो मे उत्कृष्ट निक्षेप विशेषाधिक है, परस्पर तुल्य है और उससे कुल सत्ता विशेषाधिक है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे अनुभाग उद्वर्तना-अपवर्तना का सयुक्त अल्पवहुत्व का निरूपण किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक स्थिति—स्थितिस्थान मे रही कर्मवर्गणाओ के उत्तरोत्तर वढती रसाणु वाली वर्गणा के क्रम से जितने स्पर्धक हो, उनको क्रमश इस प्रकार से स्थापित किया जाये कि सर्वजघन्य रस वाला स्पर्धक पहला, दूसरा उससे विशेषाधिक रस वाला, उससे विशेषाधिक रस वाला तीसरा, यावत् सर्वोत्कृष्ट रस वाला अतिम। उनमे पहले स्पर्धक से लेकर अनुक्रम से आगे-आगे के स्पर्धक प्रदेश की अपेक्षा हीन-हीन होते है। क्योंकि अधिक-अधिक रस वाले स्पर्धक तथास्वभाव से हीन-हीन प्रदेश वाले होते है और अतिम स्पर्धक से लेकर पश्चानुपूर्वी के क्रम से प्रदेशापेक्षा विशेषाधिक-विशेषाधिक होते है। उनमे द्विगुणवृद्धि या द्विगुणहानि के एक अतर मे जिन रसस्पर्धको का समुदाय होता है, जिसका वाद मे कथन किया जायेगा उनकी अपेक्षा अल्प है अथवा स्नेहप्रत्यय स्पर्धक के अनुभाग के विपय मे प्रदेश की अपेक्षा जो द्विगुणवृद्धि या द्विगुणहानि कही है, उस द्विगुणवृद्धि अथवा द्विगुणहानि के एक अतर मे जो अनुभाग पटल-रससमूह—समस्त रस होता है, उससे अल्प है। उससे उद्वर्तना और अपवर्तना इन दोनो मे जघन्य निक्षेप अनन्त गुण है और परस्पर में तुल्य है। यद्यपि उवद्तंना मे जघन्य निक्षेप आवलिका के असख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति मे रहे हुए स्पर्धक है और अपवर्तना मे आवलिका के समयाधिक तीसरे भाग प्रमाण स्थिति मे रहे हुए स्पर्धक है, तथापि प्रारम्भ की स्थितियो मे स्पर्धक अल्प और अतिम स्थितियो मे अधिक होते है, इसलिये स्थिति मे हीनाधिकपना होने पर भी स्पर्धक की अपेक्षा दोनो मे निक्षेप तुल्य है। इसी प्रकार अतीत्या-

पना के विपय मे भी तुल्यापना समझ लेना चाहिये। निक्षेप से उद्वर्तना-अपवर्तना इन दोनो में अतीत्थापना[1] अनन्तगुण है और परस्पर तुल्य है। उससे व्याघात मे समय मात्र स्थिति मे रहे हुए स्पर्धको का समुदाय रूप एक वर्गणा से हीन[2] अनुभाग कडक अनन्त गुण है। उससे उद्वर्तना-अपवर्तना मे उत्कृष्ट निक्षेप विशेपाधिक है और परस्पर तुल्य है। उससे पूर्वबद्ध अथवा बध्यमान कुल अनुभाग की सत्ता विशेपाधिक है।[3] क्योकि वह समयाधिक अतीत्थापना-वलिकागत पूर्वबद्ध स्पर्धको से और बध्यमान स्पर्धको से अधिक है।

इस प्रकार के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब उद्वर्तना और अपवर्तना के विपय मे कालनियम और विपय-नियम का निर्देश करते है।

काल और विपय नियम

> **आवध उव्वट्टइ सव्वत्थोवट्टणा ठितिरसाण।**
> **किट्टिवज्जे उभय किट्टिसु ओवट्टणा एक्का ॥२०॥**

---

१ रसोद्वर्तना मे अतीत्थापना आवलिका का असख्यातवां भाग है और रसापवर्तना में समय न्यून आवलिका के दो तृतीयाश भाग हैं, लेकिन उपर्युक्त युक्ति से दोनो मे स्पर्धक समान है, यह जानना चाहिये।

२ यहाँ एक वर्गणा का अर्थ एक स्थितिस्थान में रहे हुए स्पर्धको का समूह समझना चाहिये।

३ यहा उत्कृष्ट निक्षेप के विपयभूत अनुभाग मे पूर्वबद्ध अथवा बध्यमान अनुभाग को अलग-अलग विशेपाधिक बताया है। परन्तु कर्मप्रकृति उद्वर्तना-अपवर्तना करण गाथा ६ मे और उसकी व्याख्या मे सत्तागत पूर्वबद्ध अनुभाग और बध्यमान इस तरह दोनो प्रकार के सयुक्त अनुभाग को उत्कृष्ट निक्षेप के विपयभूत अनुभाग मे विशेपाधिक बताया है और वही अधिक युक्तिसगत है। इस अतर को सुधीजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

शब्दार्थ—आबध—बध तक, उव्वट्टइ—उद्वर्तना होती है, सव्वत्थोवट्टणा—सर्वत्र अपवर्तना, ठितिरसाण—स्थिति और रस की, किट्टिवज्जे—किट्टि सिवाय के, उभय—दोनो, किट्टिसु—किट्टियो मे, ओवट्टणा—अपवर्तना, एक्का—एक, केवल ।

गाथार्थ—बध तक ही स्थिति और रस की उद्वर्तना होती है, तथा अपवर्तना सर्वत्र होती है। किट्टि सिवाय के दलिक मे दोनो होती है और किट्टियो मे एक केवल अपवर्तना ही होती है।

विशेषार्थ—जब तक जिस कर्म या कर्म प्रकृतियो का बध होता है, तब तक ही उसकी स्थिति और रस की उद्वर्तना होती है और जिस-जिसका बधविच्छेद होता है उस-उसकी स्थिति की और रस की उद्वर्तना नही होती है तथा स्थिति-रस की अपवर्तना बध हो या न हो सर्वत्र प्रवर्तित होती है। क्योकि अपवर्तना का बध के साथ सम्बन्ध नही है।

इस प्रकार से काल का नियम जानना चाहिये।

'अथवा आबन्ध' यानि जितनी स्थिति या जितने रस का बध होता है, सत्तागत उतनी स्थिति की और उतने स्थितिस्थानगत रस स्पर्धक की उद्वर्तना होती है, परन्तु अधिक स्थिति या रस की उद्वर्तना नही होती है।[1] अपवर्तना का बध के साथ सबध नही होने

---

1 जितनी स्थिति या जितना रस बध हो, तब तक सत्तागत स्थिति और रस बढता है। सत्ता के समान स्थिति या रस बधे तब और सत्ता से अधिक स्थिति और रस बध हो तब उद्वर्तना कैसे होती है, यह वर्णन तो ऊपर किया जा चुका है। परन्तु ऐसा हो कि सत्ता मे बध कम हो तब उद्वर्तना होती है या नही ? और होती है तो कैसे होती है ? उदाहरणार्थ दस कोडाकोडी सागरोपम की सत्ता है और बध पाच कोडाकोडी सागर प्रमाण हो तब किस रीति से उद्वर्तना होती है ? यहाँ 'अथवा आबन्ध' कहकर जो बात कही है उससे ऐसा समझ मे आता

से बंधप्रमाण से सत्तागत स्थिति या रस अधिक हो अथवा अल्प हो तो भी अपवर्तना प्रवर्तित होती है तथा जिस कर्मदलिक का रस पिट्टि रूप नहीं हुआ है उसमें उद्वर्तना-अपवर्तना दोनों होती हैं। पिट्टि रूप हुए रस में मात्र अपवर्तना ही संभव है उद्वर्तना नहीं होती है।

इस प्रकार से यह सब विषय नियम जानना चाहिए।

उक्त समस्त कथन के साथ उद्वर्तना और अपवर्तना इन दोनों करणों का वर्णन समाप्त हुआ। ●

है कि पांच सौ वर्ष प्रमाण अबाधा को छोड़कर पांच सौ वर्ष न्यून पांच कोडाकोडी प्रमाण सत्तागत स्थानों की उद्वर्तना हो सकती है। यानि कि अबाधा से ऊपर के स्थान की उद्वर्तना हो तो उसके दलिक उसके ऊपर के स्थान से आवलिका प्रमाण अतीत्थापना को उलांघकर समयाधिक आवलिका अधिक पांच सौ वर्ष न्यून पांच कोडाकोडी सागरोपम के स्थानों में निक्षिप्त होंगे। रस की उद्वर्तना भी इसी प्रकार होगी। यानि बंधस्थिति तक ही सत्तागतस्थिति बढ़ती है, सत्तागत रस भी जितना बंधा हो उसके समान होता है। सत्तागतस्थिति और रस बंधती स्थिति या रस से बढ़ नहीं सकता है। क्योंकि उद्वर्तना का सम्बन्ध बंध के साथ है।

परिशिष्ट · १

संक्रम आदि करणत्रय प्ररूपणा अधिकार की मूल गाथाएँ

वज्झतियासु इयरा ताओवि य सकमति अन्नोन्न।
जा सतयाए चिट्ठहि बधाभावेवि दिट्ठीओ ॥१॥

सकमइ जासु दलिय ताओ उ पडिग्गहा समक्खाया।
जा सकमआवलिय करणासज्झ भवे दलिय ॥२॥

नियनिय दिट्ठि न केइ दुइयतइज्जा न दसणतिगपि।
मीसमि न सम्मत्त दसकसाया न अन्नोन्न ॥३॥

सकामति न आउ उवसत तहय मूलपगईओ।
पगइठाणविभेया सकमणपडिग्गहा दुविहा ॥४॥

खयउवसमदिट्ठीण सेढीए न चरिमलोभसकमण।
खवियट्ठगस्स इयराइ ज कमा होति पचण्ह ॥५॥

मिच्छे खविए मीसस्स नत्थि उभए वि नत्थि सम्मस्स।
उव्वलिएसु दोसु, पडिग्गहया नत्थि मिच्छस्स ॥६॥

दुसुतिसु आवलियासु समयविहीणासु आइमठिईए।
सेसासु पु सजलणयाण न भवे पडिग्गहया ॥७॥

धुवसतीण चउहेह सकमो मिच्छणीयवेयणीए।
साईअधुवो बधोव्व होइ तह अधुवसतीण ॥८॥

साअणजमदुविहकसाय सेस दोदसणाण जइपुव्वा।
सकामगत कमसो सम्मुच्चाण पढमदुइया ॥९॥

चउहा पडिग्गहत्त घुववधिण विहाय मिच्छत्त ।
मिच्छाधुववधिण साई अधुवा पडिग्गहया ॥१०॥

सतट्ठाणसमाइ सकमठाणाइ दोण्णि वीयस्स ।
वधसमा पडिग्गहगा अट्ठहिया दोवि मोहस्स ॥११॥

पन्नरससोलसत्तरअडचउवीसा य सकमे नत्थि ।
अट्ठदुवालससोलसवीसा य पडिग्गहे नत्थि ॥१२॥

सकमण पडिग्गहया पढमतइज्जट्ठमाणचउभेया ।
इगवीसो पडिग्गहगो पणुवीसो सकमो मोहे ॥१३॥

दसणवरणे नवगो सकमणपडिग्गहा भवे एव ।
साई अधुवा सेसा सकमणपडिग्गहठाणा ॥१४॥

नवछक्कचउक्केसु नवग सकमइ उवसमगयाण ।
खवगाण चउसु छक्क दुइए मोह अओ वोच्छ ॥१५॥

लोभस्स असकमणा उव्वलणा खवणओ छसत्तण्ह ।
उवसताण वि दिट्ठीण सकमा सकमा नेया ॥१६॥

आमीस पणुवीसो इगवीसो मीसगाउ जा पुव्वो ।
मिच्छखवगे दुवीसो मिच्छे य तिसत्तछव्वीसो ॥१७॥

खवगस्स मवधच्चिय उवसमसेढीए सम्ममीसजुया ।
मिच्छखवगे ससम्मा अट्ठारस इय पडिग्गहया ॥१८॥

दसगट्ठारसगाई चउ चउरो सकमति पचमि ।
सत्तडचउदसिगारसवारसट्ठारा चउक्कमि ॥१९॥

तिन्नि तिगाई सत्तट्ठनवय सकमसिगारस तिगम्मि ।
दोसु छडट्ठदुपच य इगि एक्क दोण्णि तिण्णि पण ॥२०॥

पणवीसो ससारिसु इगवीसे सत्तरे य सकमइ ।
तेरस चउदस छक्के वीसा छक्के य सत्ते य ॥२१॥

बावीसे गुणवीसे पन्नरसेक्कारसेसु छव्वीसा ।
सकमइ सत्तवीसा मिच्छे तह अविरयाईण ॥२२॥

बावीसे गुणवीसे पन्नरसेक्कारसे य सत्ते य।
तेवीसा संकमइ मिच्छाविरयाइयाण कमा ॥२३॥
अट्ठारस चोद्दससत्तगेसु बावीस खीणमिच्छाण।
सत्तरसतेरनवसत्तगेसु इगवीस संकमइ ॥२४॥
दसगाइचउक्क एक्कवीस खवगस्स संकमहि पंचे।
दस चत्तारि चउक्के तिसु तिन्नि दु दोसु एक्केक्क ॥२५॥
अट्ठाराइचउक्कं पंचे अट्ठार बार एक्कारा।
चउसु इगारसनवअड तिगे दुगे अट्ठछप्पंच ॥२६॥
पण दोन्नि तिन्नि एक्के उवसमसेढीए खइयदिट्ठिस्स।
इयरस्स उ दो दोसु सत्तसु वीसाइ चत्तारि ॥२७॥
छसु वीस चोद्द तेरस तेरेक्कारस य दस य पंचमि।
दसडसत्त चउक्के तिगमि सग पंच चउरो य ॥२८॥
गुणवीसपन्नरेक्कारसाइ ति ति सम्मदेसविरयाण।
सत्त पणाइ छ पंच उ पडिग्गहगा उभयसेढीसु ॥२९॥
पढमचउक्कं तित्थगरवज्जित अधुवसततियजुत्तं।
तिगपणछव्वीसेसु संकमइ पडिग्गहेसु तिसु ॥३०॥
पढम संतचउक्कं इगतीसे अधुवतियजुय त तु।
गुणतीसतीसएसु जसहीणा दो चउक्क जसे ॥३१॥
पढमचउक्कं आइल्लवज्जियं दो अणिच्च आइल्ला।
संकमंहि अट्ठवीसे सामी जहसंभवं नेया ॥३२॥
संकमइ नन्न पगइ पगईओ पगइसंकमे दलियं।
ठिइअणुभागा चेव ठंति तहट्ठा तयणुरूवं ॥३३॥
दलियरसाणं जुत्तं मुत्तत्ता अन्नभावसंकमणं।
ठिईकालम्म न एवं उउसंकमणं पिव अदुट्ठं ॥३४॥
उव्वट्टणं च ओवट्टणं च पगतितरम्मि वा नयणं।
बंधे व अबंधे वा जं संकामो इइ ठिईए ॥३५॥

जासि बंधनिमित्तो उक्कोसो बंध मूलपगईण ।
ता(बंधुक्कोसाओ सेसा पुण सकमुक्कोसा ॥३६॥

बंधुक्कोमाण ठिई मोत्तु दो आवली उ सकमइ ।
सेसा इयराण पुणो आवलियतिग पमोत्तूण ॥३७॥

तित्थयराहाराण सकमणे बंधसतएसु पि ।
अतोकोटाकोडी तहावि ता सकमुक्कोसा ॥३८॥

एवइय सतया ज सम्मद्दिट्ठीण सव्वकम्मेसु ।
आऊणि बंधउक्कोसगाणि ज णण्णसकमण ॥३९॥

गतु सम्मो मिच्छतम्सुक्कोस ठिइ च काऊण ।
मिच्छियगणुक्कोस करेति ठितिसकम सम्मो ॥४०॥

अतोमुहुत्तहीण आवलियदुहीण तेसु सट्ठाणे ।
उक्कोमसकमपहू उक्कोसगबधगण्णासु ॥४१॥

बंधुक्कोसाण आवलिए आवलिदुगेण इयराण ।
हीणा सव्वावि ठिई सो जट्ठिइ सकमो भणिओ ॥४२॥

सावाहा आउठिई आवलिगूणा उ जट्ठिति सट्ठाणे ।
एक्का ठिई जहण्णो अणुदइयाण निहयसेसा ॥४३॥

जो जो जाण खवगो जहण्णठितिसकमम्स सो सामी ।
सेसाण तु सजोगी अतमुहुत्त जओ तस्स ॥४४॥

उदयावलिए छोभो अण्णप्पगईए जो य अतिमओ ।
सो सकमो जहण्णो तस्स पमाण इम होइ ॥४५॥

सजलणलोभनाणतराय- दसणचउक्कआऊण ।
सम्मत्तस्स य समओ सगआवलियातिभागमि ॥४६॥

खविऊण मिच्छमीसे मणुओ सम्मम्मि खवयसेसम्मि ।
चउगइउ तओ होउ जहण्णठितिसकमस्सामी ॥४७॥

निद्दादुगस्स साहिय आवलियदुग तु साहिए तसे ।
हासाईण सखेज्ज वच्छरा ते य कोहम्मि ॥४८॥

पु सजलणाण ठिई जहन्नया आवलीदुगेणूणा ।
अतो जोगतीण पलियासखस इयराण ॥४६॥

मूलठिईण अजहन्नो सत्तण्ह तिहा चतुव्विहो मोहे ।
सेसविगप्पा साई अधुवा ठितिसकमे होति ॥५०॥

तिविहो धुवसताण चउव्विहो तह चरित्तमोहीण ।
अजहन्नो सेसासु दुविहो सेसा वि दुविगप्पा ॥५१॥

ठितिसकमोव्व तिविहो रसम्मि उव्वट्टणाइ विन्नेओ ।
रसकारणओ नेय घाइत्तविसेसणभिहाण ॥५२॥

देसग्घाइरसेण, पगईओ होति देसघाईओ ।
इयरेणियरा एमेव, ठाणसन्ना वि नेयव्वा ॥५३॥

सव्वग्घाइ दुठाणो मीसायवमणुयतिरियआऊण ।
इगदुट्ठाणो सम्ममि तदियरोण्णासु जह हेट्ठा ॥५४॥

दुट्ठाणो च्चिय जाण ताण उक्कोसओ वि सो चेव ।
सकमइ वेयगे वि हु सेसासुक्कोसओ परमो ॥५५॥

एकट्ठाणजहन्न सकमइ पुरिससम्मसजलणे ।
इयरासु दोट्ठाणि य जहण्णरससकमे फड्ड ॥५६॥

बधिय उक्कोसरस आवलियाओ परेण सकामे ।
जावतमुहू मिच्छो असुभाण सव्वपयडीण ॥५७॥

आयावुज्जोवोराल पढमसघयणमणदुगाउण ।
मिच्छा सम्मा य सामी सेसाण जोगि सुभियाण ॥५८॥

खवगस्सतरकरणे अकए घाईण जो उ अणुभागो ।
तस्स अणतो भागो सुहुमेगिंदिय वए थोवो ॥५६॥

सेसाण असुभाण केवलिणो जो उ होई अणुभागो ।
तस्स अणतो भागो असण्णिपचेंदिए होइ ॥६०॥

सम्मद्दिट्ठी न हणइ सुभाणुभाग दु चेव दिट्ठीण ।
सम्मत्तमीसगाण उक्कोस हणइ खवगो उ ॥६१॥

घाईण जे खवगो जहण्णरससकमस्स ते सामी ।
आऊण जहण्णठिइ-बधाओ आवली सेसा ॥६२॥

अणतित्थुव्वलगाण सभवओ आवलिए परएण ।
संसाण इगिमुहुमो घाइयअणुभागकम्मसो ॥६३॥

साइयवज्जो अजहण्णसकमो पढमदुइयचरिमाण ।
मोहस्स चउविगप्पो आउसणुक्कोसओ चउहा ॥६४॥

साइयवज्जो वेयणियनामगोयाण होइ अणुक्कोसो ।
सव्वेसु सेसभेया साई अध्रुवा य अणुभागे ॥६५॥
अजहण्णो चउभेओ पढमगसजलणनोकसायाण ।
साइयवज्जो सो च्चिय जाण खवगो खविय मोहो ॥६६॥

सुभधुवचउवीसाए होइ अणुक्कोस साइपरिवज्जो ।
उज्जोयरिसभओरालियाण चउहा दुहा सेसा ॥६७॥

विज्झा-उव्वलण-अहापवत्त-गुण-सव्वसकमेहि अणू ।
ज नेइ अण्णपगइ पएससकामण एय ॥६८॥

जाण न बधो जायइ आसज्ज गुण भव व पगईण ।
विज्झाओ ताणगुलअसखभागेण अण्णत्थ ॥६९॥

पलियस्ससखभाग अतमुहुत्तेण तीए उव्वलइ ।
एव पलियासखियभागेण कुणइ निल्लेव ॥७०॥

पढमाओ बीअखड विसेसहीण ठिइए अवणेइ ।
एव जाव दुचरिम असखगुणिय तु अतिमय ॥७१॥

खडदल सट्ठाणे समए समए असखगुणणाए ।
सेढीए परट्ठाणे विसेसहीणाए सछुभइ ॥७२॥

दुचरिमखडस्स दल चरिमे ज देइ सपरट्ठाणमि ।
तम्माणेणस्स दल पल्लगुलसखभागेहि ॥७३॥

एव उव्वलणासकमेण नासेइ अविरओ आहार ।
सम्मोऽणमिच्छमीसे छत्तीस नियट्टी जा माया ॥७४॥

सम्ममीसाई मिच्छो सुरदुगवेउव्विछक्कमेगिंदी ।
सुहुमतसुच्चमणुदुग अतमुहुत्तेण अणिअट्टी ॥७५॥

ससारत्था जीवा सबधजोगाण तद्दलपमाणा ।
सकामे तणुरूव अहापवत्तीए तो णाम ॥७६॥

असुभाण पएसग्ग वज्झतीसु असखगुणणाए ।
सेढीए अपुव्वाई छुभति गुणसकमो एसो ॥७७॥

चरमठिईए रइय पइसमयमसखिय पएसग्ग ।
ता छुभइ अन्नपगइ जावते सव्वसकामो ॥७८॥

बाहिय अहापवत्त सहेउणाहो गुणो व विज्झाओ ।
उव्वलणसकमस्सवि कसिणो चरिमम्मि खडम्मि ॥७९॥

पिंडपगईण जा उदयसगया तीए अणुदयगयाओ ।
सकामिऊण वेयइ ज एसो थिबुगसकामो ॥८०॥

गुणमाणेण दलिअ हीरत थोवएण निट्ठाइ ।
कालोऽसखगुणेण अहविज्झ उव्वलणगाण ॥८१॥

ज दुचरिमस्स चरिमे सपरट्ठाणेसु देई समयम्मि ।
ते भागे जहकमसो अहापवत्तुव्वलणमाणे ॥८२॥

चउहा धुवछव्वीसगसयस्स अजहन्नसकमो होइ ।
अणुक्कोसो विहु वज्जिय उरालियावरणनवविग्घ ॥८३॥

सेस साइ अधुव जहन्न सामी य खवियकम्मसो ।
ओरालाइसु मिच्छो उक्कोसगस्स गुणियकम्मो ॥८४॥

बायरतसकालूण कम्मठिइ जो उ बायरपुढवीए ।
पज्जत्तापज्जत्तदीहेयर आउगो वसिउ ॥८५॥

जोगकसाउक्कोसो बहुसो आउ जहन्न जोगेण ।
बधिय उवरिल्लासु ठिइसु निसेग बहु किच्चा ॥८६॥

बायरतसकालमेव वसित्तु अते य सत्तमखिइए ।
लहुपज्जत्तो बहुसो जोगकसायाहिओ होउ ॥८७॥

तेत्तीसयरा पालिय अतमुहुत्तूणगाइ सम्मत्त ।
बधित्तु सत्तमाओ निग्गम्म समए नरदुगस्स ॥१०१॥

तित्थयराहाराण सुरगइनवगस्स थिरसुभाण च ।
सुभधुववधीण तहा सगवधा आलिग गतु ॥१०२॥

सुहुमेसु निगोएसु कम्मठिर्ति पलियऽसखभागूण ।
वसिउ मदकसाओ जहन्न जोगो उ जो एइ ॥१०३॥

जोग्गेसु तो तसेसु सम्मत्तमसखवार सपप्प ।
देसविरइ च सव्व अण उव्वलण च अडवारा ॥१०४॥

चउरुवसमित्तु मोह लहु खवेतो भवे खवियकम्मो ।
पाएण तेण पगय पडुच्च काओ वि सविसेस ॥१०५॥

हासदुभयकुच्छाण खीणताण च वधचरिमम्मि ।
समए अहापवत्तेण ओहिजुयले अणोहिस्स ॥१०६॥

थीणतिगइत्थिमिच्छाण पालिय बेछसट्ठि सम्मत्त ।
सगखवणाए जहन्नो अहापवत्तस्स चरमम्मि ॥१०७॥

अरइसोगट्ठकसाय असुभधुवबन्धि अथिरतियगाण ।
अस्सायस्स य चरिमे अहापवत्तस्स लहु खवगे ॥१०८॥

हस्सगुणद्ध पूरिय सम्म मीस च धरिय उक्कोस ।
काल मिच्छत्तगए चिरउव्वलगस्स चरिमम्मि ॥१०९॥

सजोयणाण चउरुवसमित्तु सजोयइत्तु अप्पद्ध ।
छावट्ठिदुग पालिय अहापवत्तस्स अतम्मि ॥११०॥

हस्स काल बधिय विरओ आहारमविरइ गतु ।
चिरओव्वलणे थोवो तित्थ बधालिगा परओ ॥१११॥

वेउव्वेक्कारसग उव्वलिय बधिऊण अप्पद्ध ।
जेट्ठठिठतिनरयाओ उव्वट्टित्ता अबधित्ता ॥११२॥

थावरगसमुव्वलणे मणुदुगउच्चाण सहुमबद्धाण ।
एमेव समुव्वलणे तेउवाउसुवगयस्स ॥११३॥

अणुवसमित्ता मोहं सायस्स असायअंतिमे बंधे।
पणतीसा य सुभाणं अपुव्वकरणालिगा अंते ॥११४॥

तेवट्ठ उदहिसयं गेविज्जाणुत्तरे सऽबंधित्ता।
तिरिदुगउज्जोयाइं अहापवत्तस्स अंतंमि ॥११५॥

इगिविगलायवथावरचउक्कमबंधिऊण पणसीयं।
अयरसयं छट्ठीए बावीसयरं जहा पुव्वं ॥११६॥

दुसराइतिण्णि णीयऽसुभखगइ संघयण संठियपुमाणं।
सम्माजोग्गाणं सोलसण्हं सरिसं थिवेएणं ॥११७॥

समयाहिआवलीए आऊण जहण्णजोग बंधाणं।
उक्कोसाऊ अंते नरतिरिया उरलसत्तस्स ॥११८॥

पुसंजलणतिगाणं जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए।
सगचरिमसमयबद्धं जं छुभइ सगंतिमे समए ॥११६॥

□□

उद्‌वर्तना और अपवर्तना करण की मूल गाथाएँ

उदयावलिवज्झाण ठिईण उवट्टणा उ ठितिविसया।
सोक्कोसअबाहाओ जावावलि होई अइत्थवणा ॥१॥

इच्छियठितिठाणाओ आवलिग लघिउण तद्दलिय।
सव्वेसु वि निक्खिप्पइ ठितिठाणेसु उवरिमेसु ॥२॥

आवलिअसखभागाइ जाव कम्मट्ठितित्ति निक्खेवो।
समोयत्तरावलीए साबाहाए भवे ऊणो ॥३॥

अब्बाहोवरिठाणगदल पडुच्चेह परमनिक्खेवो।
चरिमुव्वट्टणगाण पडुच्च इह जायइ जहण्णो ॥४॥

उक्कोसगठितिबधे बधावलिया अबाहमेत्त च।
निक्खेव च जहण्ण मोत्तु उव्वट्टए सेस ॥५॥

निव्वाघाए एव वाघाओ सतकम्महिगबधो।
आवलिअसखभागो जावावलि तत्थ इत्थवणा ॥६॥

आवलिदोसखसा जइ वड्ढइ अहिणवो उठिइबधो।
उव्वट्टित तो चरिमा एव जावलि अइत्थवणा ॥७॥

अइत्थावणालियाए पुण्णाए वड्ढइत्ति निक्खेवो।
ठितिउव्वट्टणमेव एत्तो आव्वट्टण वोच्छ ॥८॥

ओव्वट्टन्तो य ठिति उदयावलिबाहिरा ठिईठाणा।
निक्खिवइ से तिभागे समयहिगे लघिउ सेस ॥९॥

उदयावलि उवरित्था एमेवोवट्टए ठिइट्ठाणा।
जावावलियतिभागो समयाहिगो सेसठितिण तु ॥१०॥

इच्छोवट्टणठिइठाणगाउ उल्लघिऊण आवलिय।
निक्खिवइ तद्दलिय अह ठितिठाणेसु सव्वेसु ॥११॥

उदयावलिउवरित्थ ठाण अहिकिच्च होइअइहीणो।
निक्खेवो सव्वोवरिठिइठाणवसा भवे परमो ॥१२॥

समयाहियइत्थवणा बंधावलिया य मोत्तु निक्खेवो ।
कम्मट्ठिइ बंधोदयआवलिया मोत्तु ओवट्टे ॥१३॥

निव्वाघाए एवं ठिइघातो एत्थ होइ वाघाओ ।
वाघाए समऊण कंडगमइत्थावणा होई ॥१४॥

उक्कोस डायट्ठिई किन्चूणा कंडगं जहण्ण तु ।
पल्लासखंस डायट्ठिई उ जत्तो परमबंधो ॥१५॥

चरिमं नोवट्टिज्जइ जाव अणताणि फड्डगाणि तओ ।
उस्सक्किय उव्वट्टइ उदया ओवट्टणा एवं ॥१६॥

अइत्थावणाइयाओ सण्णाओ दुसुवि पुव्ववुत्ताओ ।
किंतु अणतभिलावेण फड्डगा तासु वत्तव्वा ॥१७॥

थोवं पएसगुणहाणि अंतरे दुसु वि हीणनिक्खेवो ।
तुल्लो अणतगुणिओ दुसु वि अइत्थावणा चेव ॥१८॥

तत्तो वाघायणुभागकंडगं एक्कवग्गणाहीणं ।
उक्कोसो निक्खेवो तुल्लो सविसेस सत च ॥१९॥

आवंध उव्वट्टइ सव्वत्थोवट्टणा ठितिरसाणं ।
किट्टिवज्जे उभयं किट्टिसु ओवट्टणा एक्का ॥२०॥

□□

परिशिष्ट २

गाथा—अकारादि अनुक्रमणिका

प्रकृतिसंक्रम की अपेक्षा आयु व नामकर्म के अतिरिक्त ज्ञानावरणादि छह कर्मों के संक्रम स्थानों की साद्यादि प्ररूपणा

कर्मप्रकृति	संक्रमस्थान	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव
ज्ञानावरण	५ प्रकृतिक	उपशातमोह गुण से गिरने पर	भव्यापेक्षा	उपशातमोह गुण अप्राप्तापेक्षा	अभव्यापेक्षा
अन्तराय	५ प्रकृतिक	,,	,,	,,	,,
दर्शनावरण	९ प्रकृतिक	,,	,,	अत्यक्त मिथ्या-त्वापेक्षा	,,
	६ प्रकृतिक	कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×
असातावेदनीय	१ प्रकृतिक	परावर्तमान प्रकृति होने से	परावर्तमान प्रकृति होने से	×	×
सातावेदनीय	१ प्रकृतिक	,,	,,	×	×
मोहनीय	२७ प्रकृतिक	अमुककाल पर्यन्त होने से	अमुक काल पर्यन्त होने से	×	×
,,	२६ ,,	,,	,,	×	×

मोहनीय	२५ प्रकृतिक	सम्यक्त्व मिश्र मोह० की उद्वलना होने पर होने से कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×
”	२३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ प्रकृतिक				
उच्चगोत्र	१ प्रकृतिक	परावर्तमान बधी होने से	परावर्तमान बधी होने से	×	×
नीचगोत्र	१ प्रकृतिक	”	”	×	×

नोट—आयुकर्म मे परस्पर सक्रम नही होने से सक्रमस्थान नही होते है।
नामकर्म के सक्रमस्थानो की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप आगे देखिये।

छह कर्मों के संक्रम स्थानों की साद्यादि प्ररूपणा

कर्मप्रकृति	संक्रमस्थान	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव
ज्ञानावरण	५ प्रकृतिक	उपशातमोह गुण से गिरने पर	भव्यापेक्षा	उपशातमोह गुण अप्राप्तापेक्षा	अभव्यापेक्षा
अन्तराय	५ प्रकृतिक	,,	,,	,,	,,
दर्शनावरण	९ प्रकृतिक	,,	,,	अत्यक्त मिथ्यात्वापेक्षा	,,
	६ प्रकृतिक	कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×
असातावेदनीय	१ प्रकृतिक	परावर्तमान प्रकृति होने से	परावर्तमान प्रकृति होने से	×	×
सातावेदनीय	१ प्रकृतिक	,,	,,	×	×
मोहनीय	२७ प्रकृतिक	अमुककाल पर्यन्त होने से	अमुक काल पर्यन्त होने से	×	×
,,	२६ ,,	,,	,,	×	×

परिशिष्ट ४

प्रकृति सक्रम की अपेक्षा आयु और नामकर्म के अतिरिक्त ज्ञानावरणादि छह कर्मों के पतद्ग्रह स्थानो की साद्यादि प्ररूपणा

कर्मनाम	पतद्ग्रह स्थान	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव
ज्ञानावरण	५ प्रकृतिक	उपशातमोहगुण से गिरने पर	भव्यापेक्षा	उपशातमोहगुणस्थान अप्राप्तापेक्षा-अत्यक्तमिथ्यात्वी के	अभव्यापेक्षा
दर्शनावरण	९ प्रकृतिक	छह के बध सेनौ बधापेक्षा	,,		,,
,,	६ प्रकृतिक	कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×
,,	४ प्रकृतिक	,,	,,	×	×
सातावेदनीय	१ प्रकृतिक	अध्रुवबधित्वापेक्षा	अध्रुवबधित्वापेक्षा	×	×
असातावेदनीय	१ प्रकृतिक	,,	,,	×	×
मोहनीय	२२ प्रकृतिक	कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×

मोहनीय	२१ प्रकृतिक	मिश्र, सम्यक्त्व की उद्वलना करने वाले सादिमिथ्यात्वी की अपेक्षा	भव्यापेक्षा	अनादि मिथ्या-दृष्टि की अपेक्षा	अभव्या पेक्षा
	१९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ प्रकृतिक	कादाचित्क होने की अपेक्षा	कादाचित्क होने की अपेक्षा	×	×
उच्चगोत्र	१ प्रकृतिक	अध्रुवबंधि होने की अपेक्षा	अध्रुवबंधि होने की अपेक्षा	×	×
नीचगोत्र	१ प्रकृतिक	"	"	×	×
अंतराय	५ प्रकृतिक	उपशांतमोहगुण स्थान से गिरने वाले की अपेक्षा	भव्यापेक्षा	उपशांतमोहगुण-स्थान अप्राप्त की अपेक्षा	अभव्यापेक्षा

नोट—१ आयुकर्म में संक्रम और पतद्ग्रहत्व का अभाव है।

२ नामकर्म के पतद्ग्रह स्थानों की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप आगे देखिये।

प्रकृति संक्रमापेक्षा मोहनीयकर्म के संक्रमस्थानो मे पतद्ग्रह स्थान

संक्रम स्थान	पतद्ग्रह स्थान	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
२७ प्र	२२ प्र	२८ प्र	पल्यो० का असख्यातवाँ भाग	पहला	मिथ्यात्वी
	१९ ,,	,,	साधिक तेतीस सागर	चौथा	उपशम, क्षयोपशम सम्यक्त्वी
	१५ ,,	,,	देशोन पूर्व कोटि वर्ष	पाचवा	,, ,,
	११ ,,	,,	,,	छठा, सातवा	,, ,,
२६ प्र.	२२ ,,	२७ ,,	पल्यो० का अस० भाग	पहला	मिथ्यादृष्टि
	१९ ,,	२८ ,,	आवलिका	चौथा	उपशम सम्यक्त्वी प्रथमावलिका
	१५ ,,	,, ,,	,,	पाचवाँ	,, ,, ,,
	११ ,,	,, ,,	,,	छठा, सातवा	,, ,, ,,
२५ प्र	२१ ,,	२६ ,,	अनादि-अनन्त, अनादि-सात, सादि-सात	पहला	मिथ्यादृष्टि
		२८ ,,	छह आवलिका	दूसरा	सासादन सम्यक्त्वी
	१७ ,,	२७/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त	तीसरा	मिश्र दृष्टि
२३ प्र	२२ ,,	२८ ,,	आवलिका	पहला	अनन्तानुबधि की विसयोजना कर के आगत मिथ्यादृष्टि

परिशिष्ट ८ से आगे की सभी तालिकाएँ
अगले पृष्ठ से पढ़िए

प्रकृति सक्रमापेक्षा मोहनीय कर्म सम्बन्धी

(क) अश्रेणिगत पतद्ग्रह-

पतद्ग्रह थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	संक्रम प्रकृतियां
२२ प्रकृतिक	मिथ्यात्व, १६ कषाय, १ वेद, १ युगल, भय, जुगुप्सा	२७ प्रकृ.	मिथ्यात्व विना
		२६ ,,	मिथ्यात्व, सम्य मोह विना
		२३ ,,	मिथ्यात्व, अनतानुबधि विना
२१ प्रकृ.	मिथ्यात्व रहित पूर्वोक्त	२५ ,,	दर्शनत्रिक विना
		२५	,,
१९ प्रकृ.	१२ कषाय, पु वेद, भय, जुगुप्सा, एक युगल, सम्य मोह, मिश्रमोह.	२६	२५ कषाय, मिथ्यात्व
		२७	२५ कषाय मिश्र, मिथ्या
		२३	अन रहित २१ कषाय, मिश्र मोह, मिथ्यात्व
१८ प्रकृ.	१२ कषाय, पु वेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम्य	२२	२१ कषाय, मिश्र.
१७ प्रकृ	१२ कषाय, पु वेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल	२५	२५ कषाय
		२१	२१ कषाय (अन रहित)

पतद्ग्रहस्थानो मे सक्रमस्थान

स्थानो मे सक्रमस्थान

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	सक्रमकाल	स्वामी
२८	प्रथम	पल्योपमासख्येयभाग	त्रिपु जी मिथ्यादृष्टि
२७	,,	,,	उद्वलित सम्य मोह द्विपु जी
२८	,,	एक आवलिका	अनन्तानुबन्धी की प्रथम बधावलिका मे
२६	,,	अनादि अनन्तादि तीन भग	अनादि मिथ्यात्वी
२८	द्वितीय	६ आवलिका	सासादनी
२८	चतुर्थ	एक आवलिका	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका मे
२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका बाद
२४	,,	४थे गुणस्थान मे क्षयोपशम रहने तक	क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि
	,,	अन्तर्मुहूर्त	अनन्ता की विसयोजना बाद उपशम सम्यक्त्वी
		४थे गुणस्थान मे क्षयोपशम रहने तक	अनन्ता की विसयोजना बाद वेदक सम्यक्त्वी
२३	,,	अन्तर्मुहूर्त	क्षपित अन मिथ्यात्व, वेदक सम्यग्दृष्टि
२८/२७	तृतीय	अन्तर्मुहूर्त	मिश्रदृष्टि
२४	,,	,,	,,

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियां
		२१	२१ कषाय (अन रहित)
		२१	,,
१५ प्रकृ	८ कषाय, पु वेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम्य मिश्र.	२६	२५ कषाय, मिथ्यात्व
		२७	,, मिश्र मिथ्यात्व
		२३	२१ कषाय (अन रहित) मिथ्यात्व मिश्र
१४ प्रकृ.	८ कषाय, पु वेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम्य. मोह	२२	२१ कषाय (अन रहित) मिश्र मोह
१३ प्रकृ	सम्यक्त्व मोह. रहित पूर्वोक्त	२१	२१ कषाय (अन रहित)
११ प्रकृ	संज्वलन चतुष्क, पु वेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम्यक्त्व मिश्र मोह	२६	२५ कषाय, मिथ्यात्व
		२७	,, मिश्र मिथ्यात्व
		२३	२१ ,, ,,

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	संक्रमकाल	स्वामी
२२	चतुर्थ	अन्तर्मुहूर्त	क्षपित मिथ्या. अन मिश्रमो. वेदक सम्यग्दृष्टि
२१	,,	साधिक ३३ सागरोपम	क्षायिक सम्यक्त्वी
२८	पंचम	१ आवलिका	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका
२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका बाद
२८	,,	देशोन पूर्वकोटि वर्ष	क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी
२४	,,	अन्तर्मुहूर्त	विसयोजित अन उपशम सम्यक्त्वी
२७	,,	देशोन पूर्वकोटि वर्ष	विसयोजित अन. वेदक सम्यक्त्वी
२३	,,	अन्तर्मुहूर्त	क्षपित मिथ्यात्व वेदक सम्यक्त्वी
२२	,,	,,	क्षपित मिश्र मोह. वेदक सम्यक्त्वी
२१	,,	देशोन पूर्वकोटि वर्ष	क्षायिक सम्यक्त्वी
२८	६, ७	एक आवलिका	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका
२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	उपशम सम्यक्त्वी प्रथम आवलिका बाद
२४	,,	,,	क्षपित अन उपशम सम्यक्त्वी
२४	,,	,,	क्षपित अन वेदक सम्यक्त्वी

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियां
१० प्रकृ	सज्वलन चतुष्क, पु वेद भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम्य मोह	२२	२१ कषाय, मिश्र मोह.
९ प्रकृ	सम्यक्त्व मोहरहित पूर्वोक्त	२१	२१ कपाय
		२१	२१ कपाय

परिशिष्ट १० (ख) उपशम श्रेणिवर्ती

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियां
११ प्रकृ	संज्वलन चतुष्क, पु वेद भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, सम्य मोह मिश्र मोह	२३	२१ कपाय (अन रहित) मिथ्यात्व मिश्र मोह
७ प्रकृ.	सज्व. चतुष्क, पु वेद सम्य मिश्र मोह	२३	,,
		२२	सज्व लोभरहित पूर्वोक्त
		२१	नपु वेदरहित पूर्वोक्त
		२०	स्त्रीवेदरहित पूर्वोक्त
६ प्रकृ	सज्व चतुष्क सम्य मिश्र	२०	,,

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	संक्रमकाल	स्वामी
२३	६, ७	अन्तर्मुहूर्त	क्षपित मिथ्यात्व वेदक सम्यक्त्वी
२२	"	"	क्षपित मिश्र मोह वेदक, सम्यक्त्वी
२१	"	देशोन पूर्वकोटि	क्षायिक सम्यक्त्वी

उपशम सम्यग्दृष्टि

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	संक्रम काल	स्वामी
२४	अष्टम	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरण
२४	नवम	"	अन्तरकरण पूर्व
	"	"	अन्तरकरण मे
	"	"	अन्तरकरण पश्चात्
	"	"	"
	"	समयोन आवलिकाद्विक	"

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियां
६ प्रकृ	सज्व. चतुष्क सम्य मिश्र मोह	२०	स्त्रीवेदरहित पूर्वोक्त
		१४	हास्यषट्करहित पूर्वोक्त
		१३	पु वेद रहित पूर्वोक्त
५ प्रकृ	सज्व मान, माया, लोभ सम्य मिश्र मोह	१३	,,
		११	अप्र प्रत्या क्रोधरहित पूर्वोक्त
		१०	सज्व क्रोधरहित पूर्वोक्त
४ प्रकृ	सज्व माया, लोभ, सम्य मिश्र मोह.	१०	,,
		८	अप्र प्रत्या मानरहित ,,
		७	सज्व मानरहित ,,
३ प्रकृ.	सज्व लोभ, सम्य मिश्र मोह.	७	,,
		५	अप्र प्रत्या. लोभ सज्व. माया, मिश्र, मिथ्या मोह
		४	सज्व मायारहित पूर्वोक्त
२ प्रकृ	सम्य मोह मिश्र मोह	२	मिश्र मोह सम्य मोह

	१६ ,,	२४/२८ ,,	साधिक तेतीस सागर	चौथा	अनन्ता चतुष्क की विसयोजना करने वाला क्षायो० सम्यक्त्वी
	१५ ,,	२४/२८ ,,	देशोन पूर्व कोटि	पाचवा	,, ,, ,,
	११ ,,	२४/२८ ,,	,,	छठा, सातवा, आठवाँ	,, ,, ,,
	७ ,,	२४/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त	नौवा	उप० सम्य० उप० श्रेणि अन्तरकरण करने तक
२२ प्र	१८ ,,	२३ ,,	,,	चौथा	क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता क्षायो० सम्यक्त्वी
	१४ ,,	२३ ,,	,,	पाचवाँ	,, ,, ,,
	१० ,,	२३ ,,	,,	छठा, सातवाँ	,, ,, ,,
	७ ,,	२४/२८ ,,	,,	नौवा	उप० श्रेणि उप० सम्यक्त्वी अन्तरकरणवर्ती नपु० वेद का उपशमन होने तक
२१ प्र	१७ ,,	२२ ,,	,,	चौथा	वेदक सम्यक्त्वी
		२१ ,,	साधिक तेतीस सागर	,,	क्षायिक ,,
	१३ ,,	२२ ,,	अन्तर्मुहूर्त	पाचवा	वेदक ,,
		२१ ,,	देशोन पूर्व कोटि	,,	क्षायिक ,,

प्रकृति संक्रमापेक्षा मोहनीय कर्म के संक्रम स्थानो मे पतद्ग्रह स्थान

संक्रम स्थान	पतद्ग्रह स्थान	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
	६ ,,	२२ ,,	अन्तर्मुहूर्त	छठा, सातवा	वेदक सम्यक्त्वी
		२१ ,,	देशोन पूर्व कोटि	,, ,,	क्षायिक ,,
		२१ ,,	अन्तर्मुहूर्त	आठवा	क्षायिक ,,
	७ ,,	२४/२८ ,,	,,	नौवा	उप० श्रेणि, उप० सम्यक्त्वा नपु० वेद उपशात होने पर
	५ ,,	२१ ,,	,,	,,	उप श्रेणि क्षायिक सम्यक्त्वी अन्तरकरण न करने तक क्षपकश्रेणि कषायाष्टक का क्षय न होने तक
२० प्र	७ ,,	२४/२८ प्र	अन्तर्मुहूर्त	नौवा	उप श्रेणि उप सम्य स्त्रीवेद उपशात होने पर

	६ प्र	२४/२८ प्र	समयोन दो आवलिका	नौवा	,, ,, ,, ,,
	५ ,,	२१ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, क्षायिक सम्य अन्तरकरणवर्ती
१६ प्र	५ ,,	२१ ,,	,,	,,	उप श्रेणि क्षायिक सम्य नपुंसकवेद उपशात होने पर
१८ प्र	५ ,,	२१ ,,	,,	,,	,, ,, स्त्रीवेद उपशात होने पर
	४ ,,	२१ ,,	समयोन आवलिका द्विक	,,	,, ,, ,,
१४ प्र	६ ,,	२४/२८ ,,	,, ,,	,,	,, उप सम्यक्त्वी हास्यषटक उपशात होने पर
१३ प्र	६ ,,	२४/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, ,, पुरुषवेद उपशात होने पर
	५ ,,	२४/२८ ,,	समयोन आवलिका द्विक	,,	,, ,, ,,
	५ प्र	१३ प्र	अन्तर्मुहूर्त	नौवा	क्षपकश्रेणि कषायाष्टक क्षय होने पर
१२ प्र	५ ,,	१३ ,,	,,	,,	,, अन्तरकरण करने वाला
	४ ,,	२१ ,,	समयोन आवलिका द्विक		उप श्रेणि क्षायिक सम्यक्त्वी हास्यषट्क उपशात होने पर
११ प्र	५ ,,	२८/२४ प्र	समयोन आवलिका द्विक		उप श्रेणी, उप सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या क्रोध उपशात होने पर

	५ प्र	१२ प्र	अन्तर्मुहूर्त		क्षपकश्रेणि नपु वेद का क्षय होने पर
	४ ,,	२१ ,,	,,		उप श्रेणि क्षायिक सम्यक्त्वी पु वेद उपशात होने पर
	३ ,,	२१ ,,	समयोन आवलिका द्विक		,, ,, ,,
१० प्र	५ ,,	२८/२४ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, उप सम्यक्त्वी सज्व क्रोध उपशात होने पर
	५ ,,	११ ,,	,,	,,	क्षपक श्रेणि स्त्रीवेद के रहते
	४ ,,	११ ,,	समयोन आवलिका द्विक	,,	,, ,, ,,
९ प्र	३ प्र	२१ ,,	,,	,,	उप श्रेणि, क्षायिक सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या क्रोध उपशात होने पर
८ प्र	४ ,,	२८/२४ ,,	,,	,,	,, उप सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या मान उपशात होने पर
	३ ,,	२१ प्र	अन्तर्मुहूर्त	नौवा	,, उप० श्रेणी, क्षायिक सम्यक्त्वी सज्व क्रोध उपशात होने पर
	२ ,,	२१ ,,	समयोन आवलिका द्विक	,,	,, ,, ,,
७ प्र	४ ,,	२४/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, उप सम्यक्त्वी सज्व मान के रहते
	३ ,,	२४/२८ ,,	समयोन आवलिका द्विक	,,	,, ,, ,,

			द्विक		मान उपशात होने पर
५ प्र	३ ,,	२४/२८ ,,	,,	,,	,, उप सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या माया उपशात होने पर
	२ ,,	२४/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, क्षायिक सम्यक्त्वी सज्व मान उपशात होने पर
	१ ,,	२१ ,,	समयोन आवलिका	,,	,, ,, ,,
			द्विक	,,	क्षपक श्रेणि हास्यषट्क का क्षय होने पर
४ प्र	४ ,,	५ ,,	,,		उपशम श्रेणि उप सम्यक्त्वी सज्व माया के उपशात होने पर
	३ ,,	२४/२८ ,,	अन्तर्मुहूर्त		
३ प्र	३ प्र	४ प्र	अन्तर्मुहूर्त	,,	क्षपक श्रेणि पुरुषवेद का क्षय होने पर
	१ प्र	२१ प्र	समयोन आवलिका	नौवा	उप श्रेणि क्षायिक सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या माया उपशात होने पर
			द्विक		
२ प्र	२ प्र	३ प्र	अन्तर्मुहूर्त	,,	क्षपक श्रेणि सज्व क्रोधका क्षयहोने पर
	२ प्र	२८/२४ प्र	,,	नौवा	उप श्रेणि उप सम्यक्त्वी अप्र प्रत्या लोभ उपशात होने पर
				दसवा	
				ग्यारहवा	
	१ प्र	२१ प्र	,,	नौवा	उप श्रेणी क्षायिक सम्यक्त्वी सज्व माया उपशात होने पर
१ प्र	१ प्र	२ प्र	अन्तर्मुहूर्त	,,	क्षपक श्रेणि सज्वलन मान का क्षय होने पर

पतद्ग्रह प्रकृतिया	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव
६७ ध्रुवबधिनी प्रकृतिया	अपने बधविच्छेद के अनन्तर पुन बध होने पर	भव्यापेक्षा	बधविच्छेद स्थान को प्राप्त नही करने वालो की अपेक्षा	अभव्यापेक्षा
८४ अध्रुवबधिनी प्रकृतिया	अध्रुवबधिनी होने से	अध्रुवबधिनी होने से	×	×
मिथ्यात्वमोह	पतद्ग्रहत्व कादाचित्क होने से	पतद्ग्रहत्व कादाचित्क होने से	×	×
मिश्र सम्यक्त्व मोह	कादाचित्क होने से	कादाचित्क होने से	×	×

संक्रम्यमाण प्रकृति नाम	स्वामित्व
ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणनवक, नीचगोत्र, अन्तरायपंचक, असातावेदनीय तथा तीर्थंकर व यशःकीर्ति को छोड़कर शेष नामकर्म प्रकृति	सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त के जीव
सातावेदनीय	प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त के जीव
मिथ्यात्वमोहनीय	अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर उपशातमोह गुणस्थान-पर्यन्त के जीव
मिश्रमोहनीय	मिथ्यात्व एवं अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर उपशात मोह गुणस्थान पर्यन्त के जीव
सम्यक्त्वमोहनीय	मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव
अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क	अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव। आदि के दो गुणस्थानों में निश्चित, शेष में भजनीय
अप्रत्याख्यानावरण आदि शेष बारह कषाय, नवनोकषाय	अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान तक के जीव
यशःकीर्तिनाम	अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक के जीव
तीर्थंकर नाम	दूसरे और तीसरे को छोड़कर पहले और चौथे से इससे गुणस्थान तक के जीव
उच्चगोत्र	आदि के दो गुणस्थानवर्ती के जीव

सक्रम्य प्रकृतियां	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव
१२६ ध्रुवसत्ताका	पतद्ग्रह रूप प्रकृति के बधविच्छेद के अनन्तर पुन बध होने पर	भव्यापेक्षा	बधविच्छेद स्थान को प्राप्त नही करने वालो की अपेक्षा	अभव्यापेक्षा
२४ अध्रुवसत्ताका	अध्रुव सत्ता वाली होने से	अध्रुवसत्ता वाली होने से	×	×
वेदनीयद्विक, नीच गोत्र	परावर्तमान प्रकृति होने से	परावर्तमान प्रकृति होने से	×	×
मिथ्यात्व	विशुद्ध सम्यग्दृष्टि के सक्रम्यमाण होने से और सम्यग्दृष्टित्व कादाचित्क होने से	सादि होने से	×	×

नोट—आयुचतुष्क का परस्पर सक्रम नही होने से, उनमे साद्यादि भग नही होते है। इसलिये शेष १५४ प्रकृतियो मे साद्यादि भग सभव है।

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	संक्रमकाल	स्वामी
२४	नवम	समयोन आवलिकाद्विक	अन्तरकरण पश्चात्
"	"	"	"
"	"	अन्तर्मुहूर्त	"
"	"	समयोन आवलिकाद्विक	"
"	"	"	"
"	"	अन्तर्मुहूर्त	"
"	"	समयोन आवलिकाद्विक	"
"	"	"	"
"	"	अन्तर्मुहूर्त	"
"	"	समयोन आवलिकाद्विक	"
"	"	"	"
"	"	अन्तर्मुहूर्त	नौवें गुणस्थान की दो आवलिका रहने तक
"	६-१०-११	"	नौवें गुणस्थान की दो आवलिका १०-११ गुण

(ग) उपशम श्रेणिवर्ती

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियां	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियां
९ प्रकृ	संज्वलन चतुष्क, पु वेद हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	२१	१२ कषाय, नव नोकषाय
५ प्रकृ	पु वेद, सज्वलनचतुष्क,	२१	,,
		२०	सज्व लोभरहित पूर्वोक्त
		१९	११ कषाय, नपु वेदरहित ८ नोकषाय
		१८	११ कषाय, हास्यषट्क, पु वेद
४ प्रकृ	सज्वलन चतुष्क	१८	,,
		१२	११ कषाय, पुरुषवेद
		११	११ कषाय
३ प्रकृ.	सज्व मान, माया, लोभ	११	,,
		९	अप्र प्रत्या क्रोधरहित पूर्वोक्त
		८	सज्व क्रोधरहित पूर्वोक्त
२ प्रकृ	सज्व माया, लोभ	८	,,
		६	अप्र, प्रत्या मानरहित पूर्वोक्त
		५	सज्व मानरहित पूर्वोक्त
१ प्रकृ	सज्वलन लोभ	५	,,
		३	अप्र प्रत्या मायारहित पूर्वोक्त
		२	अप्र. प्रत्या लोभ

क्षायिक सम्यग्दृष्टि

प्रकृतिक सत्ता	गुणस्थान	संक्रम काल	स्वामी
२१	अष्टम	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरण गुणस्थान वाला
२१	नवम	,,	अन्तरकरण पूर्व
२१	,,	,,	अन्तरकरण मे
२१	,,	,,	अन्तरकरण पश्चात
२१	,,	,,	,,
२१	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
२१	,,	,,	,,
२१	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
२१	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
२१	,,	,,	,,
२१	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
२१	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
२१	,,	,,	,,
२१	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
२१	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
२१	,,	,,	,,
२१	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,

(घ) क्षपक

पतद्ग्रह स्थान	पतद्ग्रह प्रकृतियाँ	सक्रमस्थान	सक्रम प्रकृतियाँ
९ प्रकृ.	सज्व. चतुष्क, पु वेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	२१	१२ कषाय ९ नोकषाय
५ प्रकृ.	सज्व चतुष्क, पु वेद	२१	"
		१३	सज्व चतुष्क, ९ नोकषाय
		१२	सज्व क्रोधादि ३, ९ नोकषाय
		११	सज्व क्रोधादि ३, नपु वेदरहित आठ नोकषाय
		१०	सज्व क्रोधादि ३, स्त्री-वेदरहित ७ नोकषाय
४ प्रकृ	सज्वलन चतुष्क	१०	"
		४	सज्व क्रोधादि ३, पु वेद
३ प्रकृ.	सज्वलन मानादि ३	३	सज्व क्रोधादि ३
२ प्रकृ.	सज्वलन मायादि २	२	सज्व माया, लोभ
१ प्रकृ.	सज्वलन लोभ	१	सज्वलन माया

श्रेणि

सत्तास्थान	गुणस्थान	सत्रमकाल	स्वामी
२१	अष्टम	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती
२१	नवम	,,	नौवे गुणस्थान के दूसरे भाग पर्यन्त
१३	,,	,,	नौवें गुणस्थान के तीसरे भाग मे
१३	,,	,,	अन्तरकरण मे
१२	,,	,,	नौवें गुणस्थान के चौथे भाग मे
११	,,	,,	नौवें गुणस्थान के पाचवे भाग मे
११	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
५	,,	अन्तर्मुहूर्त	नौवें गुणस्थान के छठे भाग मे
४	,,	,,	नौवें गुणस्थान के सातवें भाग मे
३	,,	,,	नौवें गुणस्थान के आठवें भाग मे
२	,,	,,	नौवें गुणस्थान के नौवें भाग मे

प्रकृति सक्रम की अपेक्षा नामकर्म के पतद्ग्रह स्थानो मे सक्रमस्थान

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	सक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
२३ प्र	अपर्याप्त	१०२ प्र	१०२ प्र	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच मनुष्य
	बादर	९५ ,,	९५ ,,	,,	,,	,, ,,
	एकेन्द्रिय	९३ ,,	९३ ,,	,,	,,	,, ,,
		८४ ,,	८६ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,,	,, X
२५ प्र	पर्याप्त	१०२ प्र.	१०२ प्र	,,	,,	तिर्यंच, मनुष्य, देव
	बादर	९५ ,,	९५ ,,	,,	,,	,, ,, ,,
	एकेन्द्रिय	९३ ,,	९३ ,,	,,	,,	,, ,, ,,
		८४ ,,	८६ ,,	,,	,,	,, ,, X
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,,	,, X X
२५ प्र	अप विकले	१०२ प्र	१०२ प्र	,,	,,	तिर्यंच, मनुष्य
	,, तिर्यंच	९५ ,,	९५ ,,	,,	,,	,, ,,
	पचेन्द्रिय	९३ ,,	९३ ,,	,,	,,	,, ,,
		८४ ,,	८४ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,,	,, X

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	संक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
२५ प्र.	अपर्याप्त मनुष्य	१०२ प्र	१०२	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच, मनुष्य
		९५ ,,	९५	,,	,,	,, ,,
		९३ ,,	९३	,,	,,	,, ,,
		८४ ,,	८४	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८४	आवलिका	,,	,, ५
२६ प्र	पर्याप्त एकेन्द्रिय	१०२	१०२	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, ,, देव
		९५	९५	,,	,,	,, ,, ,,
		९३	९३	,,	,,	,, ,, ,,
		८४	८४	,,	,,	,, ,, ५
		८२	८२	,,	,,	,, ५ ५
२८ प्र	नारक	१०२	१०२	,,	,,	तिर्यंच, मनुष्य
		९६	९६	,,	,,	तीर्थंकर नाम की सत्ता वाला नरकाभिमुख मनुष्य, अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे
		९५	९५	,,	,,	तिर्यंच, मनुष्य
		९३	९५	आवलिका	,,	नरकद्विक की बंधावलिका मे वर्तमान तिर्यंच, मनुष्य

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	संक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
		९३	९३	अन्तर्मुहूर्त	पहला	नरकद्विक, वैक्रिय सप्तक की बंधावलिका बीतने के बाद मनुष्य, तिर्यंच
		८४	९३	आवलिका	,,	नरकद्विक, वैक्रिय सप्तक की बंधावलिका मे वर्तमान तिर्यंच, मनुष्य
२८ प्र	देव	१०२ प्र	१०२ प्र	पल्य का असं भाग	१ से ८/६ भाग	मनुष्य, तिर्यंच
		९५ ,,	९५ ,,	अन्तर न्यून पूर्व-कोटि का तीसरा भाग अधिक ३ पल्य	,,	,, ,,
		९३ ,,	९५ ,,	आवलिका	पहला	देवद्विक की बंधावलिका मे वर्तमान मनुष्य, तिर्यंच
		९३ ,,	९३ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	देवद्विक, वैक्रिय सप्तक की बंधावलिका बीतने के बाद
		८५ ,,	९३ ,,	आवलिका	,,	देवद्विक, वैक्रियसप्तक की बंधावलिका मे वर्तमान मनुष्य, तिर्यंच

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	संक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
२९ प्र.	देव	१०३ प्र	१०३ प्र	देशोन पूर्वकोटि	४ से ८/६ भाग	मनुष्य
		१०२ ,,	१०३ ,,	आवलिका	,,	मनुष्य तीर्थंकर नाम की बंधावलिका मे वर्तमान
		९६ ,,	९६ ,,	देशोन पूर्वकोटि	,,	मनुष्य
		९५ ,,	९६ ,,	आवलिका	,,	मनुष्य तीर्थंकर नाम की बंधावलिका मे वर्तमान
२९ प्र.	मनुष्य	१०२ प्र.	१०२ प्र	३३ सागर अथवा पल्य का असं भाग	१ से ४	चारो गति के जीव
		९६ ,,	९६ ,,	अन्तर्मुहूर्त	पहला	जिन नाम की सत्ता वाला नारक अपर्याप्तावस्था मे (सम्यक्त्व प्राप्त न करने तक)
		९५ ,,	९५ ,,	३३ सागर	१ से ४	चारो गति के जीव
		९३ ,,	९३ ,,	अन्तर्मुहूर्त	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
		८४ ,,	८४ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८४ ,,	आवलिका	,,	मनुष्यद्विक की बंधावलिका मे वर्तमान तिर्यंच

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	सक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
२९ प्र	विकलेन्द्रिय	१०२ प्र	१०२ प्र	अन्तर्मुहूर्त	पहला	मनुष्य तिर्यंच
		९५ ,,	९५ ,,	,,	,,	,, ,,
		९३ ,,	९३ ,,	,,	,,	,, ,,
		८४ ,,	८४ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,,	× ,,
२९ प्र	तिर्यंच	१०२ प्र	१०२ प्र	पल्यो अस भाग	१, २	मनुष्य, तिर्यंच, देव, नारक
		९५ ,,	९५ ,,	३३ सागर + अत.	१, २	मनुष्य, तिर्यंच ,, ,,
		९३ ,,	९३ ,,	अन्तर्मुहूर्त	१, २	,, ,,
		८४ ,,	८४ ,,	,,	१, २	,, ,,
		८२ ,,	८२ ,,	,,	१, २	तिर्यंच —
	देव	१०२ प्र.	१०२ प्र	,,	७ से ८/६ भाग	यति
			,,	आवलिका	,,	यति आहारक-सप्तक की वधावलिका मे
			१०३ ,,	३३ सागर अथवा पल्य का अस भाग	चौथा	देव
			६ ,,	३३ सागर	,,	देव, नारक

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	संक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
३० प्र.	विकलेन्द्रिय	१०२ प्र	१०२ प्र.	अन्तर्मुहूर्त	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
		९५ ,,	९५ ,,	,,	,,	,, ,,
		९३ ,,	९३ ,,	,,	,,	,, ,,
		८४ ,,	८४ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,,	x ,,
३० प्र.	पचे तिर्यंच	१०२ ,,	१०२ ,,	,,	१, २	तिर्यंच, मनुष्य, देव, नारक
		९५ ,,	९५ ,,	,,	,, ,,	,, ,, ,, ,,
		९३ ,,	९३ ,,	,,	,, ०	,, ,, ० ०
		८४ ,,	८४ ,,	,,	,, ०	,, ,, ० ०
		८२ ,,	८२ ,,	,,	,, ०	,, ० ० ०
३१ प्र.	देव	१०३ ,,	१०३ ,,	,,	७ से ८/६ भाग	यति, जिननाम, आहारक सप्तक की बधावलिका बीतने के बाद
		१०२ ,,	१०३ ,,	आवलिका	,,	यति, जिननाम की बधावलिका मे
		९६ ,,	१०३ ,,	,,	,,	यति आहारक सप्तक की बधावलिका मे

पतद्ग्रह	प्रायोग्य	संक्रम	सत्ता	काल	गुणस्थान	स्वामी
		९५ प्र	१०३ प्र	आवलिका	७ से ८/९ भाग	यति, जिननाम, आहारक सप्तक की बध्यावलिका मे
१ प्र.		१०२ ,,	१०३ ,,	अन्तर्मुहूर्त	उप श्रे ८/७ से १० | क्ष श्रे ८/७ से ९/१ भा	यति, उभय श्रेणिगत
		१०१ ,,	१०२ ,,	,,	,, | ,,	,, ,,
		९५ ,,	९६ ,,	,,	,, | ,,	,, ,,
		९४ ,,	९५ ,,	,,	,, | ,,	,, ,,
		८९ ,,	९० ,,	,,	क्षप श्रे ९/२ से १०	यति क्षपक श्रेणिगत
		८८ ,,	८९ ,,	,,	,,	,, ,,
		८२ ,,	८३ ,,	,,	,,	,, ,,
		८१ ,,	८२ ,,	,,	,,	,, ,,

प्रकृति संक्रमापेक्षा नामकर्म के संक्रमस्थानों में पतद्ग्रहस्थान

संक्रम	पतद्ग्रह	सत्ता	प्रायोग्य	काल	गुणस्थान	स्वामी
१०३ प्र.	२९ प्र.	१०३ प्र.	देव	देशोन पूर्वकोटि	४ से ८	मनुष्य
	३० प्र.	१०३ प्र.	मनुष्य	पल्य का असं. भाग	चौथा	देव
	३१ प्र.	१०३ प्र.	देव	अन्तर्मुहूर्त	७ से ८/६	मनुष्य (यति)
१०२ प्र.	२३ प्र.	१०२ प्र.	अप. एके.	"	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
	२५ प्र.	१०२ प्र.	पर्या. एके.	"	"	देव मनुष्य, तिर्यंच
	२५ प्र.	१०२ प्र.	अप. त्रस	"	"	मनुष्य, तिर्यंच
	२६ प्र.	१०२ प्र.	पर्या. एके.	"	"	" " देव
	२८ प्र.	१०२ प्र.	देव	पल्य का असं. भाग	१ से ८	" "
	२८ प्र.	१०२ प्र.	नारक	अन्तर्मुहूर्त	पहला	" "
	२९ प्र.	१०३ प्र.	देव	आवलिका	४ से ८/६	मनुष्य
	२९ प्र.	१०२ प्र.	मनुष्य	पल्य का असं. भाग	१ से ४	देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच
	२९, ३० प्र.	१०२ प्र.	विकलेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच, मनुष्य
	२९, ३० प्र.	१०२ प्र.	पंचे. तिर्यंच	"	१, २	देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच
	३० प्र	१०२	देव	"	७, ८	मनुष्य
	३१ प्र.	१०३	देव	आवलिका	७ से ८/६	"
	१ प्र.	१०३	अप्रायोग्य	अन्तर्मुहूर्त	८/७ से १०	उपशम श्रेणि वाला यति

संक्रम	पतद्ग्रह	सत्ता	प्रायोग्य	काल	गुणस्थान	स्वामी
१०१ प्र	१ प्र	१०२	अप्रायोग्य	अन्तर्मुहूर्त	८/७ से १०	उभय श्रेणि वाला यति
९६ प्र	२८ प्र	९६	नारक	,,	पहला	मनुष्य
	२९ प्र	९६	देव	देशोन पूर्वकोटि	४ से ८	,,
	२९ प्र	९६	मनुष्य	अन्तर्मुहूर्त	पहला	अपर्याप्त नारक
	३० प्र	९६	,,	३३ सागर	चौथा	देव, नारक
	३१ प्र	१०३	देव	आवलिका	७ से ८/६	मनुष्य (यति)
९५ प्र	२३	९५	अप एके	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच, मनुष्य
	२५	९५	अप त्रस	,,	,,	,, ,,
	२५	९५	पर्या एके	,,	,,	,, ,, देव
	२६	९५	,,	,,	,,	,, ,, ,,
	२८	९५	देव	अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटि का तीसरा भाग अधिक तीन पल्योपम	१ से ८/६	मनुष्य, तिर्यंच
	२८ प्र	९५ प्र	नारक	अन्तर्मुहूर्त	पहला	,, ,,
	२९ प्र.	९६ प्र	देव	आवलिका	४ से ८/६ भाग	मनुष्य

संक्रम	पतद्ग्रह	सत्ता	प्रायोग्य	काल	गुणस्थान	स्वामी
६५ प.	२९ प्र	६५ प्र	मनुष्य	३३ सागर	१ से ४	चारों गति के जीव
	२९ प	६५ प्र	पर्या. विकले	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच, मनुष्य
	२९ प्र	६५ प्र.	पर्या. तिर्यंच	,,	१, २	चारों गति के जीव
	३० प्र	१०२ प	देव	आवलिका	७ से ८/६ भाग	यति (मनुष्य)
	३० प्र	६५ प.	प. विकले	अन्तर्मुहूर्त	पहला	तिर्यंच, मनुष्य
	३० प	६५ प	प. पंचे. ति.	,,	१, २	चारों गति के जीव
	३१ प	१०३ प	देव	आवलिका	७ से ८/६ भाग	मनुष्य (यति)
	१ प.	९६	अप्रायोग्य	अन्तर्मुहूर्त	८/७ से १०	उभय श्रेणि वाले यति
६४ प्र	१ प.	६५	,,	,,	,,	,,
६३ प्र	२३ प.	६३	अप. एके.	,,	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
	२५ प्र.	६३	अप. त्रस	,,	पहला	,, ,,
	२५ प्र	६३	पर्या. एके	,,	पहला	,, ,,
	२६ प्र.	६३	,,	,,	पहला	,, ,,
	२८ प्र.	६५	देव	आवलिका	पहला	,, ,,
	२८ प.	६३	,,	अन्तर्मुहूर्त	पहला	,, ,,
	२८ प.	६५	नारक	आवलिका	पहला	,, ,,

सक्रम	पतद्ग्रह	सत्ता	प्रायोग्य	काल	गुणस्थान	स्वामी
	२८ प्र	६३	नारक	अन्तर्मुहूर्त	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
	२९ ,,	६३	मनुष्य	,,	,,	,, ,,
	२९ ,,	६३	पर्या पचे ति	,,	,,	,, ,,
	२९ ,,	६३	पर्या विकले	,,	,,	,, ,,
	३० ,,	६३	पर्या पचे ति	,,	,,	,, ,,
	३० ,,	६३	पर्या विकले	,,	,,	,, ,,
८९ प्र	१ ,,	९०	अप्रायोग्य	,,	९/२ से १०	क्षपक श्रेणि वाला
८८ प्र.	१	८९	,,	,,	,,	,,
८४ प्र	२३	८४	अप एके.	,,	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
	२५	८४	अप त्रस	,,	,,	,, ,,
	२५	८४	पर्या एके	,,	,,	,, ,,
	२६	८४	,,	,,	,,	,, ,,
	२८	९३	देव	आवलिका	,,	,, ,,
	२८	९३	नारक	,,	,,	,, ,,
	२९	८४	मनुष्य	अन्तर्मुहूर्त	,,	,, ,,

संक्रम	पतद्ग्रह	सत्ता	प्रायोग्य	काल	गुणस्थान	स्वामी
८४ प्र.	२९ प.	८४	प. पंचे ति	अन्तर्मुहूर्त	पहला	मनुष्य, तिर्यंच
	२९ ,,	८४	प विकले.	,,	,,	,, ,,
	३०	८४	प. पचे ति	,,	,,	,, ,,
	३० ,,	८४	प. विकले.	,,	,,	,, ,,
८२ प्र.	२३	८२	अप. एके.	,,	,,	तिर्यंच
	२५	८४	अप मनुष्य	आवलिका	,,	,,
	२५	८२	अप त्रस	अन्तर्मुहूर्त	,,	,,
	२५	८२	पर्या एके	,,	,,	,,
	२६	८२	,,	,,	,,	,,
	२९	८४	मनुष्य	आवलिका	,,	,,
	२९	८२	प. पचे ति	अन्तर्मुहूर्त	,,	,,
	२९	८२	प विकले.	,,	,,	,,
	३०	८२	प. पचे ति	,,	,,	,,
	३१	८२	प. विकले.	,,	,,	,,
	१	८३	अप्रायोग्य	,,	९/२ से १०	क्षपक श्रेणि वाला
८१ प्र.	१	८२	,,	,,	,,	,,

स्थिति खडो की उत्कीरणा विधि का प्रारूप

7

	संक्रम स्वामित्व			
	...श दसवे गुण-...चरम समय मे ...रण का अवधि-...र शेष आवरण ...क सहित	...चरम समय मे ...गुणस्थान	...शमिक सम्यक्त्व ...र क्षपक यथा-...के चरम समय ...गुणस्थान यथा-...के चरम समय ...ह क्षपक असाता ...समय मे	...सम्यक्त्व का ...क्षपक यथा-...के चरम समय ...सम्यक्त्व का ...द्विचरम स्थिति-...समय मिथ्या.
विहायोगति, सुभगत्रिक			सयोगिकेवली तक के जीव	
अन्तिम संस्थान पंचक व संहनन पंचक, अशुभ वर्णादि नवक	"	"	युगलिक और आनतादि देव बिना चतुर्गति के जीव	"
शुभ वर्णादि एकादश	"	"	क्षपक स्वबंध विच्छेद से सयोगिकेवली तक के जीव	"
अशुभ विहायोगति	"	"	युगलिक और आनतादिक देवो वर्जित शेष चतुर्गति के जीव	"
आतप	द्विस्थान और सर्वघाति	"	सम्यक्त्वी, मिथ्यात्वी चतुर्गति के जीव	"
उद्योत नाम	चतु स्थान और सर्वघाति	"	"	"

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनुभाग संक्रम प्रमाण	जघन्य अनुभाग संक्रम प्रमाण	उत्कृष्ट अनुभाग संक्रम स्वामित्व	जघन्य अनुभाग संक्रम स्वामित्व
वैक्रिय सप्तक	चतु स्थान और सर्वघाति	द्विस्थान और सर्वघाति	क्षपक स्वबंध विच्छेद से सयोगिकेवली तक के जीव	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जघन्य अनुभाग बंध आवलिका के बाद
आहारक सप्तक	"	"	"	अप्रमत्त यति जघन्य अनुभाग बंध आवलिका के बाद
तैजस-कार्मण सप्तक, अगुरुलघु, निर्माण	"	"	"	हतप्रभूत अनुभाग सत्ता वाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि
प्रथम संहनन	"	"	सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि चतुर्गति के जीव	"
प्रथम संस्थान, शुभ	"	"	क्षपक स्वबंध विच्छेद से	"

प्रदेश संक्रम स्वामित्व दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश संक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश संक्रम स्वामित्व
ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, अन्तरायपंचक	गुणित कर्मांश सप्तम नरक से निकल पंचे. तिर्यंच मे प्रथम आव. के चरम समय मे	क्षपित कर्मांश दसवे गुणस्थान के चरम समय मे अवधिद्विकावरण का अवधिद्विकरहित और शेष आवरण का अवधिद्विक सहित
निद्राद्विक	क्षपक सूक्ष्म संपराय चरम समय	स्वबंधविच्छेद चरम समय मे क्षपक आठवें गुणस्थान
स्त्यानर्द्धित्रिक	क्षपक नौवा गुणस्थान	१३२ सागरोपम सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
असातावेदनीय	क्षपक सूक्ष्मसंपराय चरम समय	क्षपक अप्रमत्तगुणस्थान यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
सातावेदनीय	दीर्घकालीन साता का बंध कर असाता की बंधावलिका के चरम समय	अनुपशांत मोह क्षपक असाता के चरम बंध समय मे
मिथ्यात्वमोहनीय	स्वक्षय के चरम प्रक्षेप के समय ४ से ७ गुणस्थानवर्ती	१३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर स्व-क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
मिश्रमोहनीय	"	१३२ सागरो. सम्यक्त्व का पालन कर द्विचरम स्थितिखंड के चरम समय मिथ्या.

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रवेश सक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व
सम्यक्त्वमोहनीय	दीर्घकाल उप. सम्यक्त्व पालन कर मिथ्या. के प्रथम समय सातवी पृ. का नारक	१३२ सागरो सम्यक्त्व का पालन कर द्विचरम स्थिति-खड के चरम समय मिथ्या
अनन्ता चतुष्क	अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर स्व चरम प्रक्षेप समय सातवी न रक	अल्पकाल बाध १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर स्व-क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय मे
मध्यम कषायाष्टक	स्व चरम प्रक्षेप के समय नौवें गुणस्थान मे क्षपक	दीर्घ क्षपक अप्रमत्त यथा-प्रवृत्तकरण चरम समय मे
सज्वलन क्रोध, मान, माया	"	जघन्य योग से स्वबध विच्छेद समय बधे हुए के चरम सक्रम के समय क्षपक नौवा गुण-स्थानवर्ती
सज्वलन लोभ	स्व सक्रम के अन्त मे क्षपक नौवें गुणस्थान वाला	अनुपशात मोह क्षपक अपूर्व-करण प्रथम आवलिका के चरम समय
हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	"	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद के समय
अरति, शोक	"	क्षपक अप्रमत्त गुणस्थान मे यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
पुरुषवेद	स्व चरम प्रक्षेप के समय क्षपक नवम गुणस्थानवर्ती	सज्वलन क्रोधवत् क्षपक नवम गुणस्थानवर्ती

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश संक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व
स्त्रीवेद	स्व चरम प्रक्षेप के समय क्षपक नवम गुणस्थानवर्ती	१३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक यथाप्रवृत्त-करण के चरम समय
नपु सकवेद	,,	स्त्रीवेदवत् किन्तु तीन पल्य युगलिक मनुष्य भव अधिक
आयुचतुष्क	,,	जघन्य योग से बाधे, अपने भव मे समयाधिक आवलिका शेष हो तब स्वसक्रम की अपेक्षा
देवद्विक	पूर्वकोटि पृथक्त्व बध से पूरित कर क्षपक आठवें गुण-स्थान स्वविच्छेद से आव-लिका के अन्त मे	अल्पकाल बधकर ७वी नरक मे जाकर, वहा से निकल विना बाधे द्विचरम स्थिति खड के उद्वलना के चरम समय मे
मनुष्यद्विक	अन्तर्मुहूर्तद्विक न्यून ३३ सागर ७वी नरक मे पूरित कर तिर्यंच गति के प्रथम समय	सूक्ष्म निगोद मे अल्पकाल बाधकर सातवी नरक पृथ्वी से निकल बिना बाधे चिरो-द्वलना के चरम समय
तिर्यंचद्विक	स्वचरम प्रक्षेप के समय क्षपक नवम गुणस्थान मे	चार पल्य अधिक १६३ सागर विना बाधे क्षपक यथा-प्रवृत्तकरण के चरम समय
नरकद्विक	पूर्वकोटिपृथक्त्व पर्यंन्त बध से पूरित कर स्वचरम प्रक्षेप समय क्षपक नवम गुणस्थान मे	देवद्विकवत् उद्वलना के द्विचरम स्थितिखड के चरम समय

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश सक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व
एकेन्द्रियादिजाति चतुष्क	स्वचरम प्रक्षेप के समय क्षपक नौवें गुणस्थान मे	साधिक १८५ सागर नही वाधकर क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
पचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क, पराघात, उच्छ्वास	१३२ सागर सम्यक्त्व के काल मे पूरित कर क्षपक स्वबध विच्छेद से आवलिका वाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अन्त समय
औदारिक सप्तक	सातवी नरक से निकल पर्याप्त तिर्यंच मे प्रथम आवलिका के अन्त मे	सर्वाल्प प्रदेश सत्ता वाला तीन पल्य की आयु वाला युगलिक के अन्त मे
वैक्रिय सप्तक	पूर्वकोटिपृथक्त्व पर्यन्त बध से पूरित कर क्षपक आठवें गुणस्थान मे स्व-विच्छेद से आवलिका के बाद	देवद्विकवत् एकेन्द्रिय उद्वलना के द्विचरम स्थितिखड के चरम समय
आहारक सप्तक	क्षपक अपूर्व स्वबध विच्छेद से आवलिका के बाद	अल्पकाल बाधकर अविरत-उद्वलना के द्विचरम स्थिति-खड के चरम समय मे
तैजस-कार्मण सप्तक, अगुरुलघु, निर्माण	"	अनुपशात मोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अत्य समय
प्रथम सहनन	उत्कृष्ट [illegible] सम पूरित कर मनु[illegible] [illegible]लिका [illegible]	"

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश सक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश संक्रम स्वामित्व
प्रथम सस्थान, शुभ विहायोगति, सुभगत्रिक	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद से आवलिका के बाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकग्ण प्रथम आवलिका के अल्प समय
अन्तिम पाच सस्थान, सहनन	क्षपक सूक्ष्म चरम समय मे	युगलिक मे प्रथम तीन पल्य नही बाध, १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक, यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
अशुभ वर्णनवक, उपघात	,,	क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
शुभ वर्णादि एकादश	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद से आवलिका के बाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अन्त मे क्षपक
अशुभ विहायोगति	क्षपक सूक्ष्म चरम समय मे	युगलिक मे प्रथम तीन पल्य न बाध, १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
आतप	स्व-चरम प्रक्षेप के समय क्षपक नौवे गुणस्थान मे	साधिक १८५ सागर नही बाधकर क्षपक अप्रमत्त यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
उद्योत	,,	साधिक १६३ सागर नही बाध क्षपक अप्रमत्त यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश सक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व
एकेन्द्रियादिजाति चतुष्क	स्वचरम प्रक्षेप के समय क्षपक नौवें गुणस्थान मे	साधिक १८५ सागर नही बाधकर क्षपक यथाप्रवृत्त-करण के चरम समय
पचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क, परा-घात, उच्छ्वास	१३२ सागर सम्यक्त्व के काल मे पूरित कर क्षपक स्वबध विच्छेद से आवलिका बाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अन्त समय
औदारिक सप्तक	सातवी नरक से निकल पर्याप्त तिर्यंच में प्रथम आवलिका के अन्त मे	सर्वाल्प प्रदेश सत्ता वाला तीन पल्य की आयु वाला युगलिक के अन्त मे
वैक्रिय सप्तक	पूर्वकोटिपृथकत्व पर्यन्त बध मे पूरित कर क्षपक आठवें गुणस्थान मे स्व-विच्छेद से आवलिका के बाद	देवद्विकवत् एकेन्द्रिय उद्व-लना के द्विचरम स्थितिखड के चरम समय
आहारक सप्तक	क्षपक अपूर्व स्वबध विच्छेद से आवलिका के बाद	अल्पकाल बाधकर अविरत-उद्वलना के द्विचरम स्थिति-खड के चरम समय मे
तैजस-कार्मण सप्तक, अगुरुलघु, निर्माण	"	अनुपशात मोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अत्य समय
प्रथम सहनन	उत्कृष्ट बधकाल तक पूरित कर मनुष्यभव मे प्रथम आव-लिका के बाद	"

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश संक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश संक्रम स्वामित्व
प्रथम मस्थान, शुभ विहायोगति, सुभगत्रिक	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद मे आवलिका के बाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अल्प ममय
अन्तिम पाच सस्थान, महनन	क्षपक सूक्ष्म. चरम समय मे	युगलिक मे प्रथम तीन पल्य नही बाध, १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक, यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
अशुभ वर्णनवक, उपघात	"	क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय
शुभ वर्णादि एकादश	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद मे आवलिका के बाद	अनुपशातमोह क्षपित कर्मांश अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अन्त मे क्षपक
अशुभ विहायोगति	क्षपक सूक्ष्म चरम समय मे	युगलिक मे प्रथम तीन पल्य न बाध, १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
आतप	स्व-चरम प्रक्षेप के समय क्षपक नौवें गुणस्थान मे	साधिक १८५ सागर नही बाधकर क्षपक अप्रमत्त यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
उद्योत	"	साधिक १६३ सागर नही बाध क्षपक अप्रमत्त यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट प्रदेश सक्रम स्वामित्व	जघन्य प्रदेश सक्रम स्वामित्व
तीर्थंकर नाम	देशोन पूर्वकोटिद्विक अधिक ३३ सागर बाध स्वबंध विच्छेद से आवलिका के बाद	जघन्य योग से बांधे जिननाम की बंधावलिका के बाद के प्रथम समय
स्थिरद्विक	क्षपक अपूर्वकरण स्वबध विच्छेद के बाद	अनुपशांत मोह क्षपित कर्मांश क्षपक अपूर्वकरण प्रथम आवलिका के अन्त में
यश कीर्ति	क्षपक अपूर्वकरण छठे भाग के चरम समय मे	"
स्थावर, सूक्ष्म, साधारण	स्वचरम प्रक्षेप के समय क्षपक नौवें गुणस्थान में	साधिक १८५ सागर न बाध क्षपक अप्रमत्त यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
अपर्याप्त	क्षपक सूक्ष्म चरम समय मे	"
अस्थिरद्विक, अयश कीर्ति	"	क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय में
दुर्भगत्रिक, नीच गोत्र	"	युगलिक मे तीन पल्य न बाध १३२ सागर सम्यक्त्व का पालन कर क्षपक यथाप्रवृत्तकरण के अन्त मे
उच्च गोत्र	बार बार मोह का उपशम किये क्षपित कर्मांश क्षपक नीच गोत्र के चरम बंध के चरम समय मे	सूक्ष्म निगोद मे अल्पकाल बाध मानवी पृथ्वी में स[illegible] निकल बिना बाधे सूक्ष्म त्रस में उद्वलना के द्विचरम स्थिति खंड के चरम समय

विध्यात आदि पच प्रदेश सक्रमो मे सकलित प्रकृतियो की सूची

अनुक्रम	प्रकृतियाँ	विध्यात	उद्वलना	यथा प्रवृत्त	गुण स	सर्व स	कुल
१	मतिज्ञानावरणीय	०	०	१	०	०	१
२	श्रुतज्ञानावरणीय	०	०	१	०	०	१
३	अवधिज्ञानावरणीय	०	०	१	०	०	१
४	मन पर्यवज्ञानावरणीय	०	०	१	०	०	१
५	केवलज्ञानावरणीय	०	०	१	०	०	१
६	चक्षुदर्शनावरणीय	०	०	१	०	०	१
७	अचक्षुदर्शनावरणीय	०	०	१	०	०	१
८	अवधिदर्शनावरणीय	०	०	१	०	०	१
९	केवलदर्शनावरणीय	०	०	१	०	०	१
१०	निद्रा	०	०	१	१	०	२
११	निद्रा निद्रा	१	१	१	१	१	५
१२	प्रचला	०	०	१	१	०	२
१३	प्रचला-प्रचला	१	१	१	१	१	५
१४	स्त्यानर्द्धि	१	१	१	१	१	५
१५	सातावेदनीय	०	०	१	०	०	१
१६	असातावेदनीय	१	०	१	१	०	३
१७	सम्यक्त्वमोहनीय	०	१	१	१	१	३
१८	मिश्रमोहनीय	१	१	१	१	१	५
१९	मिथ्यात्वमोहनीय	१	१	०	१	१	४
२०	अनन्तानुबधी क्रोध	१	१	१	१	१	५
२१	,, मान	१	१	१	१	१	५
२२	,, माया	१	१	१	१	१	५
२३	,, लोभ	१	१	१	१	१	५
२४	अप्रत्याख्यानीय क्रोध	१	१	१	१	१	५
२५	,, मान	१	१	१	१	१	५
२६	,, माया	१	१	१	१	१	

अनुक्रम	प्रकृतियाँ	विध्यात	उद्वलना	यथा-प्रवृत्त	गुण स	सर्व स	कुल
२७	अप्रत्याख्यानीय लोभ	१	१	१	१	१	५
२८	प्रत्याख्यानीय क्रोध	१	१	१	१	१	५
२९	,, मान	१	१	१	१	१	५
३०	,, माया	१	१	१	१	१	५
३१	,, लोभ	१	१	१	१	१	५
३२	संज्वलन क्रोध	०	१	१	१/०	१	४/३
३३	,, मान	०	१	१	१/०	१	४/३
३४	,, माया	०	१	१	१/०	१	४/३
३५	,, लोभ	०	०	१	०	०	१
३६	हास्य नोकषाय	०	१	१	१	१	४
३७	रति ,,	०	१	१	१	१	४
३८	अरति ,,	१	१	१	१	१	५
३९	शोक ,,	१	१	१	१	१	५
४०	भय ,,	०	१	१	१	१	४
४१	जुगुप्सा ,,	०	१	१	१	१	४
४२	पुरुषवेद	०	१	१	१/०	१	४/३
४३	स्त्रीवेद	१	१	१	१	१	५
४४	नपुंसकवेद	१	१	१	१	१	५
४५	देवायु	०	०	०	०	०	०
४६	मनुष्यायु	०	०	०	०	०	०
४७	तिर्यंचायु	०	०	०		०	०
४८	नरकायु	०	०	०	०	०	०
४९	देवगति	१	१	१	०	१	४
५०	मनुष्यगति	१	१	१	०	१	४
५१	तिर्यंचगति	१	१	१	१	१	५
५२	नरकगति	१	१	१	१	१	५
५३	एकेन्द्रिय	१	१	१	१	१	५
५४	द्वीन्द्रिय	१	१	१	१	१	५
५५	त्रीन्द्रिय	१	१	१	१	१	५

अनुक्रम	प्रकृतियाँ	विध्यात	उद्वलना	यथा-प्रवृत्त	गुण स	सर्व स	कुल
५६	चतुरिन्द्रिय	१	१	१	१	१	५
५७	पचेन्द्रिय	१	०	१	०	०	२
५८	औदारिक शरीर	१	०	१	०	०	२
५९	वैक्रिय शरीर	१	१	१	०	१	४
६०	आहारक शरीर	१	१	१	०	१	४
६१	तैजस शरीर	१	०	१	०	०	२
६२	कार्मण शरीर	१	०	१	०	०	२
६३	औदारिक अगोपाग	१	०	१	०	०	२
६४	वैक्रिय ,,	१	१	१	०	१	४
६५	आहारक ,,	१	१	१	०	१	४
६६	वज्रऋषभनाराच संहनन	१	०	१	०	०	२
६७	ऋषभनाराच ,,	१	०	१	१	०	३
६८	नाराच ,,	१	०	१	१	०	३
६९	अर्ध-नाराच ,,	१	०	१	१	०	३
७०	कीलिका ,,	१	०	१	१	०	३
७१	सेवार्त ,,	१	०	१	१	०	३
७२	समचतुरस्र सस्थान	१	०	१	०	०	२
७३	न्यग्रोध परिमडल सस्थान	१	०	१	१	०	३
७४	सादि सस्थान	१	०	१	१	०	३
७५	वामन ,,	१	०	१	१	०	३
७६	कुब्ज ,,	१	०	१	१	०	३
७७	हुण्डक ,,	१	०	१	१	०	३
७८	वर्ण	१	०	१	१	०	३
७९	गध	१	०	१	१	०	३
८०	रस	१	०	१	१	०	३
८१	स्पर्श	१	०	१	१	०	३
८२	देवानुपूर्वी	१	१	१	०	१	
८३	मनुष्यानुपूर्वी	१	१	१	०	१	
८४	तिर्यंचानुपूर्वी	१	१	१	१	१	

अनुक्रम	प्रकृतियाँ	विध्यात	उद्वलना	यथा प्रवृत्त	गुण स	सर्व स	कुल
८५	नरकानुपूर्वी	१	१	१	१	१	५
८६	शुभविहायोगति	(१)	०	१	०	०	२
८७	अशुभविहायोगति	१	०	१	१	०	३
८८	पराघात	(१)	०	१	०	०	२
८९	उच्छ्वास	(१)	०	१	०	०	२
९०	आतप	१	१	१	०	१	४
९१	उद्योत	१	१	१	०	१	४
९२	अगुरुलघु	(१)	०	१	०	०	२
९३	तीर्थंकरनाम	१	०	१	०	०	२
९४	निर्माण	(१)	०	१	०	०	२
९५	उपघात	०	०	१	१	०	२
९६	त्रस	(१)	०	१	०	०	२
९७	बादर	(१)	०	१	०	०	२
९८	पर्याप्त	(१)	०	१	०	०	२
९९	प्रत्येक	(१)	०	१	०	०	२
१००	स्थिर	१	०	१	०	०	२
१०१	शुभ	१	०	१	०	०	२
१०२	सौभाग्य	१	०	१	०	०	२
१०३	सुस्वर	१	०	१	०	०	२
१०४	आदेय	१	०	१	०	०	२
१०५	यशःकीर्ति	०	०	१	०	०	१
१०६	स्थावर	१	१	१	१	१	५
१०७	सूक्ष्म	१	१	१	१	१	५
१०८	अपर्याप्त	१	०	१	१	०	३
१०९	साधारण	१	१	१	१	१	५
११०	अस्थिर	१	०	१	१	०	३
१११	अशुभ	१	०	१	१	०	३
११२	दुर्भाग्य	१	०	१	१	०	३
११३	दुःस्वर	१	०	१	१	०	३

अनुक्रम	प्रकृतियाँ	विध्यात	उद्वलना	यथा-प्रवृत्त	गुण स	सर्व स	कुल
११४	अनादेय	१	०	१	१	०	३
११५	अयश कीर्ति	१	०	१	१	०	३
११६	उच्च गोत्र	१	१	१	०	१	४
११७	नीच गोत्र	१	०	१	१	०	३
११८	दानान्तराय	०	०	१	०	०	१
११९	लाभान्तराय	०	०	१	०	०	१
१२०	भोगान्तराय	०	०	१	०	०	१
१२१	उपभोगान्तराय	०	०	१	०	०	१
१२२	वीर्यान्तराय	०	०	१	०	०	१
कुल		67 ६९	५२	११७	६७/६३	५२	—